मूल्य : 250 रूपये
ISBN 81-7312-041-2

श्री नटराज प्रकाशन
ए-507/12, करतार नगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग
साउथ गोविंदी एक्स्टेंशन, दिल्ली-110 053
फोन : 011.22941694

व्यथ-व्यथा

प्रो. हरिकृष्ण कौल

व्यथ-व्यथा

प्रो. हरिकृष्ण कौल

हरिकृष्ण कौल के नये उपन्यास 'व्यथ-व्यथा' में आदमी के नए जीवन की तलाश की मर्मस्पर्शी कहानी प्रस्तुत की गई है। कश्मीर की त्रासदी और घर से बेघर होने की वेदना के जीवन्त दस्तावेज, इस उपन्यास में अकालात वीभत्सता और अमानवीयता के तांडव का दर्दनाक मंज़र परत-दर-परत खुलता है।

मानवीय प्रकृति और जीवन को प्रतिरूपित करती अपनी कहानियों की तरह ही वे इस उपन्यास मे व्यक्ति की लाचारगी का एहसास दिलाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के लेखक हरिकृष्ण कौल (जन्म 1934, श्रीनगर) ने कश्मीर विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिन्दी) तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एम.फिल. की उपाधियां प्राप्त कीं। वे कश्मीर विश्वविद्यालय में व्याख्याता और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर कार्य कर चुके हैं। उनके हिन्दी में तीन कहानी संग्रह 'टोकरी भर धूप', 'इस हमाम में' तथा 'अर्थी' प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त समालोचनात्मक निबंधों का एक संकलन 'गद्य गरिमा' तथा तीन कश्मीर कहानी संकलन प्रकाशित हैं। आपको साहित्य एकादेमी पुरस्कार, जम्मू एण्ड कश्मीर अकादेमी तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय के पुरस्कारों सहित सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

व्यथ-व्यथा

प्रो. हरिकृष्ण कौल

श्री नटराज प्रकाशन
ए-507/12, साउथ गांवड़ी एक्सटेंशन
दिल्ली-110053

श्री नटराज प्रकाशन
ए-507/12, साउथ गांवड़ी एक्सटेंशन, दिल्ल्ली-110053

प्रकाशक
श्री नटराज प्रकाशन
ए-507/12, करतार नगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग
साउथ गांवड़ी एक्सटेंशन, दिल्ली-110053
दूरभाष : 2294 1694

ISBN : 81-7312-041-2
© लेखक

प्रथम संस्करण : 2005
मूल्य : 250.00 रुपये

शब्द संयोजक : योगेश ग्राफिक्स, दिल्ली-53
मुद्रक : **सलमान ऑफसैट प्रैस**

भारत में मुद्रित : Vyath Vyatha by Prof. Harikrishn Kaul

श्री नटराज प्रकाशन, ए-507/12, करतार नगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग, साउथ गांवड़ी एक्सटेंशन, दिल्ली-110053, से टी.एस. राघव द्वारा प्रकाशित, योगेश ग्राफिक्स द्वारा शब्द संयोजन एवं दीप न्यू डिजाईन एजेन्सी द्वारा आवरण सज्जा, सलमान ऑफसेट द्वारा मुद्रित।

भूमिका

व्यथा व्यथा - इन दो साथ-साथ शब्दों के एक साथ शब्दार्थ को समझना आज जनता के लिए असंभव ही हो सकता है। अतः हम सीधी भाषा में साफ कहेंगे कि व्यथ कश्मीरी भाषा में कश्मीर की ही वितस्ता नदी का नाम है। क्या जानें? हो सकता है कि इस व्यथ नामक कश्मीरी नदी ने ही हम ग़ैर-इस्लामी कश्मीरियों को अनासीन जान कर अपने से दूर हटा दिया हो। रही व्यथा ? वह शायद हमारे शरीर और हृदय में बस गई होगी। बहुत सारे कश्मीरी पंडित विस्थापित होकर भी हिन्दी नहीं, उर्दू या अंग्रेजी ही समझते हैं। उनके आगे झुक कर मैं उनसे साफ कहूंगा कि व्यथा का अर्थ-क्षमा कीजिये मैं साफ कहूंगा कि व्यथा का मतलब या माने या meaning, anguis या agony होता है।

खैर, अपनी बात जारी रखते हुए मैं यही कहूंगा कि हमारी अंतरंग आत्मीय **व्यथ** ने हमें अपने से दूर रखा और इसके विपरीत **व्यथा** हमारे बहुत निकट आई। व्यथ व्यथा उपन्यास की कथा पाठकों को उपन्यास से ही प्राप्त होगी। फिर भी मैं उपन्यास की उत्पत्ति के विषय में दो बातें पाठकों के सामने रखना चाहता हूं जो केवल कथा का कारण ही नहीं, अपितु एक प्रकार से इस कारण की यह दो बातें भी कथा-रूप धारण कर सकती हैं।

कथा या कहानी मैं अपनी ख्वाबी नवाबी से नहीं, अपनी नाचारी-लाचारी और नौकरी के नून नमक की खटाई से शुरू करूंगा। मैं एक साधारण कश्मीरी पंडित घर का लड़का था और अपने घरेलू-वातावरण में पहले स्कूल और फिर कॉलेज और युनिवर्सिटी की कृपा से सरकारी नौकरी में कॉलेज और युनिवर्सिटी टीचर का काम करता रहा। स्कूल बच्चे से लेकर कॉलेज टीचर तक मुझे कथा कहानी और साहित्य में रुचि रही। वास्तव में मेरा कथा साहित्य में रुचि लेना कश्मीर कहानीकार और मेरे हमदर्द जन्नती अखतर महीउद्दीन की दोस्ती के कारण था। हमारे स्कूली दिनों में जो छात्र साइन्स नहीं अपनाते थे उन्हें उर्दू फारसी या फिर हिन्दी संस्कृत लेना पड़ता था। मेरी साइअन्स में न काबिलियत और न ही दिलचस्पी थी। अतः मुझे साइन्स के स्थान पर भाषा साहित्य का ही सहारा लेना पड़ा। लेकिन मैं अखतर महीउद्दीन, रहमान राही, दीनानाथ नादिम, अमीन कामिल आदि कथाकारों कवियों की राह में चलकर उर्दू लिपि में कश्मीरी कहानियां लिखने लगा, जिन्हें मेरी कोशिश और कुछ लेखकों की हमदर्दी से मुझे भी अच्छा कश्मीरी

अफसाना नवीस समझा जाने लगा। मैं साइन्स के स्थान पर हिन्दी संस्कृत या उर्दू फारसी नहीं अपितु उर्दू और संस्कृत-एक दूसरे से दूर कार्यक्षेत्र अपनाए। स्कूल से निकल कर कॉलेज में आकर मैंने उर्दू की जगह हिन्दी अपनाई और एम.ए. पास करके मैं एक कश्मीरी कॉलेज में हिन्दी प्रोफेसर हो गया।

मुझे और मेरे जैसे कई कश्मीरी पंडितों को हिन्दी भाषा के कारण ही परेशान होना पड़ा। श्रीनगर के एस.पी. कॉलेज से जब मैं अमरसिंह कॉलेज भेजा गया तो मुझे अच्छा नहीं लगा। लेकिन कुछ समय पश्चात जब कॉलेज का प्रिंसिपल बदल गया तो मैं प्रसन्न हुआ। नया साहब कश्मीरी पंडित हीं नहीं, मेरा दूर का रिश्तेदार भी था। एक दो दिन बाद उसने मुझे अपने कमरे में बुलाया और इधर उधर की बातों के बाद मुझे हमदर्दी दिखाई और अफसरी ज़बान से हुक्म भी दिया कि कॉलेज बन्द होने के बाद उनके साथ उनके घर जाकर, जो कॉलेज के बहुत निकट हैं, चाय नाश्ते के साथ प्यारी प्यारी आपसी बातें करें। उनकी बातों का अर्थ यह था कि मैं कॉलेज के कुछ टीचरों और क्लार्क आदमियों की बातों से यह मालूम करूं कि वे उसके बारे में क्या सोचते हैं ? उनका इरादा बुरा नहीं था लेकिन मेरी अपनी मजबूरी थी। दो तीन दिन के बाद जो उन्होंने मुझे फिर अपने कमरे में बुलाया मैंने उन्हें झूठमूठ कहा कि मैं अपनी गरीबी की मजबूरी से हर दिन चार पांच ट्यूशन करता हूं। उसने कुछ नहीं कहा। शायद उसने मेरा झूठापन पकड़ लिया था। इसके बाद उसने मुझे कभी अपने कमरे में नहीं बुलाया। लेकिन अगले सप्ताह मेरे नाम श्रीनगर कॉलेज से सोपोर कॉलेज जाने का हुक्म दिया गया और अगले दिन ही मुझे शहर से हटाकर गांव भेजा गया जहां मुझे पहले भी सुबह सवेरे घर से निकलकर अन्धेरी रात को वापस घर आना होता था। एक महीने के बाद जब एस.पी. कॉलेज के जाने माने अरबी ज़बान और लिटरेचर के प्रोफेसर जनाब महीउद्दीन हाजिनी ने, जो मेरे साथ—एक कश्मीरी अफसाना नवीस हिन्दी प्रोफेसर के साथ—मुहब्बत और हमदर्दी रखता था, मेरे घर से बेघर होने की खबर सुनी तो वह अगले दिन ही एज्युकेशन डिपार्टमेंट के पास गया और उसे दो टूक कहा कि अगर पाकिस्तानी पंडित हरीकृषिनकोल को अपने घर सिरीनगर नहीं लाया गया तो मैं कश्मीर में ही नहीं, सारे हिन्दुस्तान में इन्कलाब पैदा करूंगा। हाजिनी साहब का हुक्म मानकर सरकारी अफसरों ने मुझे सोपोर से हटाकर वापस सिरीनगर (-श्रीनगर) तबादला किया। श्रीनगर के ए.एस. कॉलेज के हेड ऑफिसर को दुखी न करने के लिए मुझे श्रीनगर के अंतिम कोने के बामिना कॉलेज में घसीटा गया। इस कॉलेज में मुझे एक अपरिचित प्रोफेसर की बातों के मजाक से आनन्द प्राप्त हुआ। कुछ दिन पूर्व मैंने पत्रिका पढ़ते पाया कि मेरा यह मित्र प्रोफेसर अब्दुल

धनी भट अब All Party Hurriyat Conference के Executive member हैं। मेरा वह मित्र मुझे अपने साथ कॉलेज के एक कोने में लेकर एक अजीब बात कहने लगा था "तुम मेरे दिल के दोस्त हो इसलिए मैं तुम्हारी जिंदगी के लिए तुम्हें कश्मीर छोड़कर कहीं और जाने का मश्वरा ही नहीं हुक्म दे रहा हूं। मुझे उसके इस मज़ाक पर हंसी आई। लेकिन अब मैं सोचता हूं कि जिस बात को मैंने मज़ाक समझा वह मेरे लिए दर्द और हमदर्दी की पीड़ा थी। दो तीन महीनों के बाद ही मुझे, मेरे परिवार और रिश्तेदारों को कश्मीर छोड़कर जम्मू, दिल्ली या कश्मीर के बाहर भारत के किसी कोने में अपनी जान और इज़्ज़त बचाने के लिए रहना पड़ा। फिर भी मेरे कुछ मुस्लमान दोस्तों की मेरे साथ हमदर्दी रहीं जैसे—

... कश्मीर युनिवर्सिटी के कश्मीरी डिपार्टमेंट ने अनेक बार मुझे अपने पास आमन्त्रित किया। पिछले वर्ष जब बार-बार बुलाए जाने वाले कश्मीरी कहानीकार अर्थात मुझे बुलाया गया तब युनिवर्सिटी के एक रेसटॅरन्ट में मेरे खाने का इन्तिज़ाम किया गया और इन्चार्ज से कहा गया कि यह साधू पंडित जी स्टिकट व्यजिटेरियन हैं। अजीब बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ परन्तु मैं खामोश रहा। उस रात मैंने अच्छी दाल सब्जी खायी। अगले दिन हेड ऑफ कश्मीरी डिपार्टमेंट जनाब शफीशौक साहब ने अजीब तरह से मुस्कुराते हुए मुझे अपने कमरे में चिकन और बकरे का मज़ेदार मांस खिलाया। मैं हैरान हुआ लेकिन जल्द ही अपने हमदर्द शफीशौक की बुद्धि देखकर गदगद हो गया।

ऐसी ही एक घटना तब हुई जब मैं दिल्ली निवासी विस्थापित कश्मीरी एक बार फिर श्रीनगर कश्मीर में आमन्त्रित किया गया और डल झील के निकट एक होटल में रहने का इन्तिजाम किया गया। उन दिनों मेरा एक पंडित रिश्तेदार श्रीनगर में ही रहता था। अपने जीवनस्थान और जीवलोक में एक बार फिर आकर मुझे दुर्गाधाम तुलमुला के दर्शन की बेताबी हुई। मेरे फोन और अनुरोध तथा अपने आने-जाने का खरचा देने की मंजूरी पर वह अगले दिन किराए की गाड़ी लेकर मेरे होटल में आया और मुझे तुलामुला ले गया। धर्म स्थान के बाहर दुकानें थीं। मेरा साथी घर से लाया छोटा सा बरतन और साथ में मुझे लेकर दूधवाले की दुकान पर गया और उससे देवी मन्दिर के गिर्द छोठी झील में अर्पित करने के लिए दूध मांगा और मुझे जेब-सेब से पैसे निकालने को कहा। मैंने कुछ रुपये निकाले लेकिन दुकानदार ने अजीब सी दुखी आवाज में कहा कि दूध उसके पास है लेकिन वह दे नहीं सकता। मैंने हैरान होकर गुस्से से कहा क्यों ? उसने उसी प्रकार दुखी अंदाज से कहा कि दूध उबाला गया है, पूजा में नहीं चलेगा। मेरे रिश्तेदार ने दो टूक आवाज में कहा, 'आजकल के हालात में सब कुछ चलेगा।' लेकिन दुकानदार

ने कुछ दुख से कहा 'ठीक है मैं मुस्लमान हूं लेकिन मेरा खून हिन्दू मां बाप का होगा जो मेरे बुजर्ग रहें होंगे।' इतना कहकर वह जाने कहां चला गया, लेकिन दो तीन मिनट के बाद वापस आकर वह बोला कि दो चार गज़ दूरी पर 'गूर' की दुकान है जहां हिन्दू को अपने धर्म का दूध मिलेगा। हम उस 'गूर' की दुकान पर गये जहां एक बूढ़ी मुस्लमान औरत हमारा इन्तिज़ार कर रही थी। उसने हम दो और हमारे एक बरतन को प्रसन्नता से देखकर और हमारे बरतन में दूध और अपने डिब्बे में हमारे पैसे डालकर वह आंसू बहाते कहती रही कि पंडितों के या मुस्लमानों को छोड़ दूसरे इन्सानों के यहां आने से ही हमारी ज़ख्मी जिन्दगी फिर ठीक होती है।

ख़ैर जो हुआ जैसे हुआ— मैं, मेरा परिवार और रिश्तेदार जिस प्रकार बेघर और बेक़रार हुए उसे भूलकर हम देश और दुनिया में गुजारा कर रहे हैं। व्यथ वितस्ता नदी की ठंडक और ठाठबाट से हमारे हटाए जाने पर हमारा जीवन और जमाना शायद विरह व्यथा में बदल गया है जिसका कुछ हिस्सा आपको इस उपन्यास में मिल सकता है।

मैं प्रस्तुत उपन्यास के त्वरित प्रकाशन के लिए 'श्री नटराज प्रकाशन' के श्री टी.एस. राघव जी को व श्री गौरी शंकर रैणा जिन्हें मैं अपना छात्र, अपना पात्र ही नहीं अपना मित्र भी मानता हूं वे मित्र जो मेरे सामने सुपुत्र समान हैं का अभारी हूं।

—हरिकृष्ण कौल

अशोक ने किताब बंद और खिड़की से बाहर देखने लगा।

बचपन में उसने दादी से सुना था कि कार्तिक की पूर्णिमा चमकती तरल चांदी बरसाकर केसर की क्यारियों को रात भर जगमगाती हैं। इस जगमगाहट पर केसर की क्यारियों से पहले अपना हक़शफ़ा जताने के लिए दुनिया एक पखवाड़ा पहले ही कार्तिक अमावस्या को घर-घर दीप जलाकर दीवाली मनाती है। मगर कश्मीरी भी इतने सीधे नहीं है, जितने दिखाई देते हैं। दुनिया डाल-डाल तो वे पात-पात। वे दीवाली से भी बहुत पहले भाद्रपद त्रयोदशी की रात को सैकड़ों दीए बहाकर अपनी मां व्यथ अर्थात् वितस्ता के आंचल को जगमग सजाते हैं।

लेकिन आज न तो कार्तिक की पूर्णिमा है और न ही दीवाली की अमावस। भादों की कौन-सी तिथि है, अशोक यह भी नहीं जानता। वितस्ता त्रयोदशी में जाने अभी कितने दिन होंगे या कौन जाने, वह पीछे छूट गई हो। दादी के समय से भी बहुत पीछे। वह सिर्फ इतना जानता है कि अभी रात है जो काली और डरावनी है। लगभग एक सदी पूर्व बने उसके पुश्तैनी मकान के सामने ही वितस्ता नदी, अपने स्थानीय नाम ''व्यथ'' को चरितार्थ करती हुई, जाने कब से अंधेरी डरावनी रातों में इसी तरह चुप-चाप बहती आ रही है। आज फिर भी दोनों किनारों पर बस्तियां हैं, एक दूसरे से सटे नए पुराने मकानों के गुंजान आबाद मुहल्ले हैं और सबसे बढ़कर बिजली की रोशनी है। अंधेरा आज भी है लेकिन आज से पहले का अंधेरा कई गुना अधिक भयानक रहा होगा। शायद उसी अंधेरे को याद करके नदी की छाती पर उस पार के घरों से पड़ने वाली रोशनियों के झिलमिल प्रतिबिंब इस समय भी थर-थर कांप रहे हैं।

अशोक ने सिर झंझोड़ा और भटकते मन की लगाम खींच ली। उसके पास मुश्किल से एक डेढ़ महीना है। नवंबर से पहले ही दिल्ली लौटकर उसे एक सेमिनार पेपर और दो टर्म पेपर ''सब्मिट'' करने हैं। टर्म पेपर लिखने में कोई दिक्कत नहीं थी लेकिन जाने उस पर कौन-सी सनक सवार हो गई थी कि उसने सेमिनार पेपर के लिए खुद ही अजीब-सा टॉपिक चुना था— ''ए केस एगेंस्ट क्रोनालॉजी इन दे स्टडी ऑफ हिस्टॉरी,'' जिसे लेकर दुश्मन हो नहीं, दोस्त भी उसकी खूब खिचाई करेंगे। असल में यह ऊट-पटांग विषय चुनते समय उसके अवचेतन में दबी बचपन की किसी ग्रंथि ने सिर निकाला होगा। स्कूल में उसे

तिथियों के सिवा लगभग सब कुछ ठीक-ठाक याद रहता था। किस घटना के पीछे क्या-क्या कारण थे और उसके कौन-से परिणाम निकले? किस शासक ने क्या-क्या किया और क्या-क्या नहीं किया? अशोक परीक्षा पत्रों में इन प्रश्नों के उत्तर अपनी समझ के अनुसार ठीक ही देता था। लेकिन घटना कब घटी थी या शासक कब पैदा हुआ था, कब सिंहासन पर बैठा था और कब मरा था– उस विषय में वह अपने पर्चों में चुप ही रहता था। उसकी बुआ दुलारी जिगरी का बेटा और उसका सहपाठी संजय अपने पर्चे में ठीक जवाब देता था या नहीं पर सभी तिथियां सही-सही लिखता था और हर परीक्षा में अशोक से ज्यादा नंबर लाता था। शायद पर्चे जांचने वालों के लिए भी तिथि नाम आदि तथ्य ही महत्त्वपूर्ण थे, वास्तविक घटना और उससे अद्‌भूत सत्य नहीं। रफीकी साहब जैसे टीचर के लिए भी जो अक्सर कहा करता था कि तारीख अपने को दोहराती है–हिस्ट्री रिपीट्स इटसेल्फ।

अरे यह क्या वह फिर भटकने लगा! अशोक ने सिर को एक बार फिर झंझोड़ा और फिर से किताब खोलकर पढ़ने लगा। तभी पिछले दो-ढाई महीनों से आंख-मिचौनी खेलने वाले उसके कमरे के बल्ब ने एक बार फिर आंखें मींच लीं। अशोक ने खिड़की से बाहर झांका। वितस्ता के आर-पार पूरे शहर में अंधेरा छा गया था। वह समझ गया कि मेजर ब्रेक डाउन है। उसने किताब बंद की और अपने कमरे से निकल कर पहले तल्ले के बड़े कमरे में आ गया, जहां उसका बाप मोहनकृष्ण भान, मां शांता और छोटी बहिन नीरजा बीच में एक बड़ी मोमबत्ती जलाकर आपस में बतिया रहे थे। मोहनकृष्ण पत्नी और पुत्री को कुछ समझा रहा था मगर अशोक को देखते ही वह चुप हो गया। असल में वह उम्र के उस पड़ाव पर पहुंच गया था, जहां आदमी दूसरों को समझाना अपना फर्ज समझता है। उसकी बातें दूसरों की समझ में आती थी या नहीं, मगर अशोक की समझ में बिल्कुल नहीं आती थीं। मोहनकृष्ण यह जानता था और इसीलिए वह अशोक के सामने बहुत कम बोलता था।

"पिंकी, जरा जाकर भैया के लिए एक प्याली कहवा बना। दिन-रात किताबों के साथ सिर खपाता रहता है।"

मां की बात सुनकर नीरजा उठी और किचन में चली गई।

"कहवा गैस पर नहीं, समावार में बनाना। इस बार पांच-छः महीनों के बाद कश्मीर आया है।" शांता ने अपनी जगह बैठे-बैठे ही नीरजा को आवाज दी।

लेकिन नीरजा किचन से उलटे पांव वापस आई–"पापाजी, व्यथ के उस पार फिर से लाइट आ गई है। हमारे साथ ही चली गई थी। जाने इस पार अभी भी अंधेरा क्यों है?"

"इस पार भट्टों, पंडितों के मुहल्ले हैं ना! सब को देने के बाद अगर कुछ बिजली बचेगी तो हमें भी देंगे।" शांता ने बेटी की शंका का समाधान किया।

मोहनकृष्ण पत्नी की बात सुनकर चिढ़-सा गया। "कौन कहता है कि इस पार भट्टों के ही मुहल्ले हैं! हो सकता है कि पहले कभी रहे हों। अब तो भट्टों के लगभग दो तिहाई मकान मुसलमानों ने खरीद लिए हैं।"

उसने खिड़की से बाहर सिर निकाला और उचककर दांए-बाएं दृष्टि डाली। उसे जैसे अपने पक्ष में कोई प्रमाण मिल गया। वह संतुष्ट होकर अपनी जगह बैठ गया और मुस्कराकर पत्नी से बोला– "इस पार भी दूसरे मुहल्लों में लाइट है। सिर्फ हमारे मुहल्ले में ही अंधेरा है।"

"शायद मुहल्ले के ट्रांस फार्मर में ही कोई खराबी है।" नीरजा ने अपनी राय प्रकट की। अशोक असली बात जानने के लिए घर से निकल कर बाहर गली में आया।

गली मे जितने आदमी जमा थे सबकी यही राय थी कि या तो ट्रांसफार्मर में खराबी है नहीं तो नए लाइटमैन महीउद्‌दीन की कोई शरारत है। सहसा टेरीकॉट का ढीला-ढाला खान सूट पहने लंबे-चौड़े शरीर वाला कादिर कबाड़ी भी अपने घर से निकल कर गली में आया और आते ही वहां जमा लोगों पर बरस पड़ा–"अब्बे ओर जुनखे मुहल्ले के बेगैरतो। आसमान के टिमटिमाते तारों और उस पार के झिलमिलाते लैंपों को हसरत भरी नज़रों से क्या देखते हो रसूल करीम के वास्ते मेरे साथ चलकर ट्रांसफार्मर के मामे बने बिजली घर के कारिंदों से कहो कि अपने भतीजे के कलपुर्जो को कस दें।"

"चलो! चलो!"

गली में जमा मुहल्ले वाले दल बनाकर ट्रांसफार्मर की ओर चलने लगे। एक बुजुर्ग की नज़र अशोक पर पड़ी और उसने उसे अंधेरे में भी पहचान लिया।

"बरखुर्दार, तुम भी आओ।"

कौन है यह ? कादिर ने बुजुर्ग से इशारे में पूछा।

"सामने वाले मकान में मोहन जी रहते हैं ना अरे वही मास्टर जी! उसी का बेटा है। दिल्ली में ऊंची तालीम पा रहा है।" बुजुर्ग ने कादिर कबाड़ी का ही नहीं, सबको अशोक का परिचय दिया।

ट्रांसफार्मर के साथ बने लकड़ी के खोखे में बैठा लाइनमैन निश्चिंत होकर हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। अपनी ओर आते लोगों को देखकर वह मंद-मंद मुस्कराने लगा।

"महीउद्‌दीन! तू कुल्ली से लैन मैन क्या बन गया कि अपने को बख्शी

गुलाम मुहम्मद समझने लगा। कान खोलकर सुन। अगर ट्रांसफार्मर को फौरन ठीक नहीं किया, तो मैं तुझे ही फौरन से बेशतर ठीक करूगां। इन सब लोगों के सामने।" लाइनमैन के हाथ से नली छीनकर वह खुद हुक्के के कश लेने लगा।

"जब तक साहब नहीं आएगा, मैं कुछ नहीं कर सकता।" लाइनमैन ने कठोर मुद्रा बनाकर कहा और फिर अपने भिंचे होठों के बीच मुस्कुराहट की एक पतली-सी रेखा खींच कर मुद्रा की कठोरता को खुद ही झुठला दिया।

"साहब साले को भी अब तक आ जाना चाहिए था। जाने कहां मर गया है?"

"हो सकता है कि उसके घर में लाइट हो।" एक लड़के ने कहा।

कादिर ने लाइनमैन को छोड़ साहब और उसका पक्ष लेने वाले इस लड़के को अब अपने क्रोध का निशाना बनाया—"क्यों? उसके घर में कोई स्पेशल कनेक्शन उसकी बहिन की ससुराल से आता है या तेरी मां की..."

"मैं जाकर उसे ले आता हूं। "लड़के ने कादिर को गाली पूरी करने का मौका ही नहीं दिया और साहब के घर की ओर दौड़ा।

अशोक हैरान था। यदि ट्रांसफार्मर में कोई "फाल्ट" आ गया है, तो क्या यह लाइनमैन उसे खुद ठीक नहीं कर सकता है क्या इस छोटे काम के लिए भी साहब का आना ज़रूरी है मालूम नहीं यह साहब जे.ई. है या ए.ई.। खैर जो भी हो, इंजीनियर तो बस राय या हुक्म देते हैं। काम लाइनमैन, मेकैनिक, फिटर या इलेक्ट्रीशिन को ही करना होता है। यहां भी इसी लाइन मैन या किसी और छोटे मुलाज़िम को ही ट्रांसफार्मर का नुक्स निकालना होगा। हो सकता है कि इंजीनियर या किसी दूसरे साहब का मौका मुलहाज़ा भी ज़रूरी हो।

"यह लो। आ गया साहब।" किसी ने कहा और लोगों के चेहरों पर चमक आ गई, जो अंधेरे में भी साफ दिखाई दे रही थी। अशोक ने भी यह चमक देखी लेकिन साहब उसे कहीं नज़र नहीं आया। हां, जो लड़का कुछ देर पहले यहां से गया था उसके साथ उसी की उम्र का एक और लड़का भी था, जिसका मुंह बंदर की तरह लाल था और उसके पांव नंगे थे।

"काली कुतिया के सफेद पिल्ले, कहां मर गया था? "कादिर ने इसी लड़के से जवाब तलब किया।

तो यही बेचारा "ऐलबीनो" इनका साहब है! अशोक मन ही मन मुस्कुराया।

साहब ने कादिर की बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह खाना बीच में छोड़कर आया था और अभी तक मुंह के आखिरी कौर को दांतों से चबा रहा था। कौर पूरी तरह चबाने के बाद बीच सड़क में आकर छाती पीटते और ऊंची आवाज में गाते हुए स्यापा करने लगा।

दिल्ली से आई आंधी
फूट पड़ी इंदिरा गांधी।
इंदिरा गांधी ने चलाया तीर
नाचने लगा शेरे कश्मीर।
कश्मीर में हुआ अंधेरा
दीया फट जाए इंदिरा तेरा।

और फिर नर्सरी राइम और स्यापे का आवरण हट गया और इंदिरा गांधी के नाम भारी-भरकम गालियों की ताबड़-तोड़ बौछार होने लगी। मुहल्ले में बिजली नहीं, इंदिरा गांधी की ऐसी। नलों में पानी नहीं, इंदिरा गांधी की तैसी। साहब के मुंह से गालियों की बौछार हो रही थी और सुनने वालों के मुंह से हंसी के फव्वारें फूट रहे थे।

"महीउद्दीन अब बहुत हो चुका।" बुजुर्ग आदमी ने दाहिने हाथ से अपनी ठुड्डी पकड़कर लाइन मैन से कहा। उसका लिहाज करते हुए लाइन मैन मंद-मंद मुस्कुराता हुआ उठा और उठकर धीरे-धीरे ट्रांसफार्मर के पास चला गया। उसने स्विच "आन" किया और सारा मुहल्ला फिर से रोशन हो गया। घरों से निकल कर गलियों में आए बच्चे सीटियां बजाने लगे। ट्रांसफार्मर के पास खड़े लोग जेबों से पांच-पांच, दस-दस पैसे के सिक्के निकाल कर उछालने लगे और साहब सबको सलाम बजाता हुआ सिक्के समेटकर अपनी जेबों में भरने लगा।

बुजुर्ग अशोक के निकट आकर उससे कहने लगा—" पिछले सत्रह-अठारह सालों से लोगों ने मन बहलाने का यह अच्छा बहाना खोज लिया है। जब लाइट चली जाती है, पानी चला जाता है, मिट्टी के तेल की किल्लत हो जाती है या राशन डिपों पर गीली चीनी और सड़ा-गला अनाज मिलता है तो असद का यही सफेद बाल-खाल वाला छोकरा इसी तरह सड़क पर आकर लोगों का दिल बहलाता है और कुछ लोग ज़कात समझकर उसे कुछ पैसे भी देते हैं। पहले यह काम रहमान रेड़ा करता था। अब बैंक से कर्जा लेकर उसने आटो खरीदा है और मुहल्ले वालों की दिलजोई का काम इस छोकरे का सौंप है।"

अशोक ने बिजली की रोशनी में बुजुर्ग को पहचान लिया। वह कोई और नहीं गली में ही दूध दही बचेने वाला रहमज़ान जू या रमज़ान गुजर (ग्वाला) था।

वापस घर आकर अशोक ने देखा कि बिजली आने से घर वालों में भी बिजली सी शक्ति आ गई थी। पापाजी अपने और उसके शर्ट-पैंटों को प्रेस कर चुके थे। मम्मी ने प्लास्टिक शीट बिछाकर उस पर थालियां रखी थी और पास ही छोटे तख्ते पर सब्जी के डोने और भात से भरा प्रेशर कुकर लाकर रख दिया

था। बाकी बर्तनों को पिंकी मांज-धोकर रैकों पर सजा चुकी थी। तीनों बेसब्री से अशोक की प्रतीक्षा कर रह थे। वह आता तो सब खाना खाकर अपने-अपने बिस्तरों में घुस जाते। बिजली का क्या भरोसा आकर किसी भी क्षण फिर से चली जाएगी।

खाना खाने के बाद अशोक भी अपने कमरे में जाकर बिस्तर में घुस गया। उसने किताब उठाकर खोली। लेकिन कुछ पढ़ने के बजाए वह अभी-अभी घटी घटना के बारे में सोचने लगा। बिजली लाइनमैन महीउद्दीन बंद करता है और गालियां इंदिरा गांधी को दी जाती हैं। चौबीस घंटों में सिर्फ पांच छः घंटे बिजली रहती है लेकिन इसके कसूरवार बिजली महकमें के बड़े-बड़े इंजीनियर और हाकिम या छोटे कारिंदे नहीं, सिर्फ दस बीस रुपये महीने फीस देकर हीटरों बॉयलरों का इस्तेमाल करके पांच-'छः सौ रुपये की बिजली खर्च करने वाले आम लोग नहीं, बिना कोई फीस दिए छोटी-बड़ी मशीनें चलाने वाले कारखानेदार नहीं, कैपेसिटी से बहुत कम पावर जेनेरटि करने वाले पावर हाउस और इन्हें चलाने वाली रियासती सरकार भी नहीं, बस एक इंदिरा गांधी है। लोग शायद जानते हैं कि कसूर इंदिरा गांधी का नहीं है। इसीलिए इस सारी नारेबाजी से रोष का नहीं, विनोद का भाव प्रकट हो रहा था। रमज़ान जू का कहना है कि यह सिलसिला सत्रह अठारह बरस पहले 1970-71 का समय था जब युद्ध में पाकिस्तान हार गया था और उसके दो टुकड़े हो गए थे। मुस्लिम मुल्क को तोड़ने वाली औरत के खिलाफ इन मर्द मोमिनों के क्रोध को समझा जा सकता है। लेकिन आज इंदिरा गांधी जिंदा कहां है? उसकी मृत्यु आज से पांच वर्ष पूर्व हुई थी। या हो सकता है कि उसके मरने के बाद भी लोगों का उसके खिलाफ गुस्सा ठंडा नहीं हुआ हो। डेढ़ हजार साल पहले मारे गए व्यक्तियों के लिए आज भी छाती पीटने और पथरीली सड़क से टकरा कर सिर फोड़ने वालों के जुलूस अशोक अपनी आंखों से देख चुका है। उसके दोस्त शौकत हुसैन ने एक दिन उसे बताया था कि करबला महज एक तारीख वाका नहीं, एक अबदी सच्चाई है। इमाम हुसैन की शहादत के बावजूद यज़ीद, कूफा के हाकिम उबैदुल्लाह और उसकी सत्तर हज़ार की फौज के साथ जंग अभी भी जारी है। पाकिस्तान के टूटने पर सदर याहिया खान ने कहा था कि जंग अभी जारी है। अगर जंग जारी है तो दुश्मन भी जिंदा है। यज़ीद लानत की मौत करने के बाद भी जिंदा है। इंदिरा गांधी बेअंत और सतवंत की गोलियों से छलनी होने के बावजूद जिंदा है। जो भूत है, वहीं वर्तमान भी है और शायद भविष्य भी वही होगा। ए केस एगेंस्ट क्रानोलॉजी इन द स्टडी ऑफ हिस्ट्री।

अपने इस विचार पर अशोक स्वयं चमत्कृत हुआ। उसने किताब नीचे रखी

और सेमिनार पेपर के लिए बनाई नोट बुक को उठाकर उसमें कुछ लिखने लगा। अशोक ने अभी तीन-चार पंक्तियां ही लिखी थीं कि लाइट अचानक चली गई। नहीं, अचानक नहीं। जो बिजली दिन रात लुका-छिपी खेलती रहती हो उसका गुम होना अचानक चला जाना नहीं कहा जा सकता है। उसने देखा था कि जिस प्रकार काले बादलों से घिरे आकाश में क्षण भर के लिए बिजली कौंधती है। उसी प्रकार यहां की अंधेरी रातों में बिजली का प्रकाश भी अस्थिर, अस्थायी होता है उसकी दादी कहा करती थी कि जो कुछ भी अस्थिर, अस्थायी और क्षणभंगुर है, वह सत्य नहीं हो सकता है। प्रकाश सत्य नहीं, सत्य अंधेरा है और इस अंधेरे का सामना करने के लिए उसने भी पहले से ही तैयारी कर रखी थी। पहले से ही कमरे में टार्च, मोमबत्ती, माचिस का इंतजाम कर रखा था। मगर कौन चीज कहां रखी है, वह उसे याद नहीं थी। ऐसा अक्सर होता था। उनके घर में वही चीज ऐन वक़्त पर नहीं मिलती थी जिसे मां ने कहीं संभाल कर रखा होता था। अशोक पास ही कहीं रखी टार्च टटोलने लगा। टार्च तो नहीं मिली मगर पास ही रखे पानी भरे गिलास ने लुढ़क कर उसकी किताबों कागजों को गीला कर दिया। अंधेरे में ही सारे कागजों, किताबों को समेट कर उसने इन्हें अपने बिस्तर पर सुखाने के लिए बिछा दिया और खुद खिड़की से बाहर नजरें दौड़ा कर जाने क्या खोजने लगा।

बाहर भी हर ओर अंधेरा और सन्नाटा था। हां, वितस्ता के पार घरों, मंदिरों, मस्जिदों से परे शंकराचार्य पहाड़ी पर बने ऊंचे टीवी टावर की फुनगी पर लाल बत्ती दहक रहीं थी। अशोक को लगा कि अथाह और असीम अंधरे में कांपती यह लाल रोशनी आशा की नहीं, चेतावनी की सूचक है और इसके संकेत उस रोशनी की किरण के संदेश से भिन्न ही होंगे जो सन् सैंतालीस के अंधेरे में महात्मा गांधी को नजर आई थी। लेकिन क्या रात में रोशनी की आशा और आरजू पागलपन नहीं है? उसके सिवा शायद सभी यह सत्य जानते हैं और रात या अंधकार का सदुपयोग करते हुए चैन से सो रहे हैं। वितस्ता भी शायद अपने नये पुराने सारे दुख दर्द भूलकर इस समय गहरी नींद में डूबी है। इस समय उसकी छाती पर रोशनियों के झिलमिल प्रतिबिम्बों की कोई थरथराहट नजर नहीं आती है। वह भी सो सकता है। बल्कि उसे सोना ही चाहिए। लाइट न होने के कारण कोई पढाई-लिखाई भी नहीं हो सकती है। रात सोने के लिए होती है या उन कामों के लिए होती है जो रात के अंधेरे में ही किए जा सकते हैं। असल में यह अंधेरा नहीं, अंधेरे का एहसास है जो उसे कौंच रहा है। एहसास के खंजर को निकाल कर फेंक देने से सारी पीड़ा, परेशानी दूर हो सकती है। मगर क्या यह इतना आसान है जितना प्रतीत होता है ? अशोक को होली, ईद मिलने के अवसर पर ओल्ड कैम्पस

की क्लब बिल्डिंग में गोकुल पाण्डेय की गायी कबीर वाणी की दो पंक्तियां अनायास याद आई

सुखिया सब संसार है खाए और सोए ।
दुखिया दास कबीर है जागे और रोए ।।

जाने उसे भी कब तक जागते रहना होगा ? कब लाइट आएगी और वह फिर से लिखने-पढ़ने में जुट जाएगा ? या कब नींद चुपके से आकर उसे लिखने-पढ़ने सोचने के चक्कर से निकाल कर अपनी शांत गोद में ले के उसकी अलसायी देह को ममता भरे हाथों से थपथपाएगी ?

(2)

श्रीनगर में वितस्ता के "दूसरे पुल" (जो अब दूसरा नहीं रहा था) हब्बा कदल के इलाके के एक मुहल्ले में रमज़ान जू की दुकान सुबह साढ़े पांच बजे खुलती थी और रात के साढ़े दस बजे बंद होती थी। लेकिन असली दुकानदारी सुबह छः बजे से साढ़े सात बजे तक, कुल डेढ़ घंटे चलती थी जब उसकी दुकान के आगे अपने ही नहीं, दूसरे मुहल्लों से आकर दूध खरीदने वालों की भीड़ जुटती थी। साढ़े सात के बाद उसकी दुकान से दूध मिलना लगभग ना मुमकिन था। हां दोपहर तक दही और उसके बाद पनीर का मिलना कोई मुश्किल नहीं था। सारा दही पनीर बिक चुकने के बाद भी दुकान देर रात तक खुली रहती थी और वहां बारी-बारी से रमज़ान जू, उसकी बीबी जून काकनी और उनके बेटे बशीर और फारूक बैठते थे।

आज भी साढ़े पांच बजे बशीर ने आकर दुकान खोली। अंदर की कोठरी से तांबे का चौड़े मुंह वाला एक बड़ा सा पतीला और पीतल की बड़ी सी बाल्टी निकाली जिन पर चढ़ाई गई कलई आधी से ज्यादा उतर चुकी थी। दोनों बरतनों को नल के पानी से एक बार फिर खंगालकर दुकान में रमज़ान जू के लिए बने आसन के बिल्कुल सामने रख दिया। तभी नौकर लस्सा ठेले पर दूध के पांच-सात कैन लेकर आया। बशीर ने एक कैन का दूध पतीले और बाल्टी में उड़ेला और बाकी कैन लस्सा से अंदर कोठरी में रखवाए। पांच-दस मिनट बाद रमज़ान जू मस्जिद से हाथ मुंह धोकर और नमाज़ पढ़कर सीधे दुकान पर आया। तब तक बीस पच्चीस ग्राहक भी आ जुटे थे और रमज़ान जू आसन पर बैठकर उनके लोटों-डोलों में आधा लिटर और एक सौ मिली लिटर के पैमाने से दूध डालने लगा। लोग खाली बर्तन लेकर आते थे और दूध लेकर चले जाते थे। बाल्टी और पतीले का दूध खत्म होने पर लस्सा कोठरी से एक के बाद एक कैन निकाल कर उन्हें भरता जाता था। बाप के आने पर बशीर वापस घर चला गया था।

मोहनकृष्ण सात बजे के बाद जब दुकान के सामने खड़ा हो गया तब तक पांच कैनों का दूध बिक चुका था और दुकान के सामने लोगों की भीड़ वैसी की वैसी थी। मोहनकृष्ण निश्चय नहीं कर पाया कि उसे दूध मिलेगा भी या नहीं। लेकिन उसे देखकर जब रमज़ान जू ने कहा - "मास्टर जी, तुमने अच्छा किया जो खुद आ गए" तो वह आश्वस्त हो गया कि उसे दूध ज़रूर मिलेगा।

लस्सा ने कोठरी से नया कैन निकाल कर पतीले और बाल्टी में दूध उड़ेला। दूध के साथ कुछ मक्खियां भी गिर कर पतीले और बाल्टी की सतह पर तैरने लगी।

"दूध के ऊपर मलाई के बदले मक्खियां ।" एक लड़का हैरान होकर हंसने लगा।

"कौन बेवकूफ कहता है कि ये मक्खियां हैं ? उंगली से बरतनों में से मक्खियां निकालते हुए रमज़ान जू ने कहा- "ये शंकर बुलबुल की मधुमक्खियां हैं।"

"शंकर बुलबुल ?" मोहनकृष्ण ने भी यह नाम पहली बार सुना था।

"पंडित होकर भी क्या तुमने बर्फीली चोटियों की गोद में वह वादी नहीं देखी है जहां से दूध गंगा निकलती है ?"

"तो तुम उसी दूध गंगा का दूध बेचते हो ?" मोहनकृष्ण ने व्यंग्य किया।

"अरे मास्टर जी, दूध गंगा से भले ही कभी दूध बहता हो, अब उसमें पानी भी नहीं है। मुझे वाटर वर्क्स के नलों से आने वाले पानी को ही इस्तेमाल करना पड़ता है।" रमज़ान जू ज़बान और हाथों को साथ-साथ चला रहा था। बोलता भी जाता था और खरीदारों के डोलों-लोटों को दूध से भरता भी जाता था। जब पतीले और बाल्टी में दूध की मात्रा कम होने लगी और लस्सा ने अंदर से कोई नया कैन नहीं निकाला तो रमज़ान जू राशनिंग लागू करके एक किलो मांगने वाले को आधा लिटर और आधा किलो मांगने वाले को दो सौ मिली लिटर दूध देकर सब्र और संतोष की नसीहत से दूध की कमी को पूरा करने लगा। मोहनकृष्ण को छोड़ सभी ग्राहक दूध से आधे पूरे भरे बरतन लेकर चले गए। थोड़ी देर में ही बाल्टी और पतीला दोनों खाली हो गए और लस्सा ने उन्हें खंगाल कर अंदर कोठरी में रखा। इसके बाद खाली कैन उठाकर ठेले पर धर दिए और उन्हें उसी ओर ठेलने लगा जहां से ले आया था।

मोहनकृष्ण सोच ही रहा था कि कहीं पंडित होने के कारण ही उसे दूध से वंचित तो नहीं होना पड़ा जब रमज़ान जू ने उसके हाथ से डोल लिया और उठकर अंदर की कोठरी में चला गया। मोहनकृष्ण ने अब ध्यान से देखा कि कोठरी में दूध के लिए रखे गए कुछ और खाली बरतन भी थे। रमज़ान जू को याद था कि कौन सा बरतन किसका है और उसमें कितना दूध डालता है। उसे यह भी मालूम

था कि मोहनकृष्ण के घर वाले रोज एक लिटर दूध ले जाते हैं। दूध का एक कैन उसने अलग बचा कर रखा था और उसी में से मोहनकृष्ण के डोले के साथ ही दूसरे "खास" लोगों के बरतन भी भरने लगा। कोठरी से बाहर आकर उसने डोल मोहनकृष्ण के हाथ में देकर पूछा– "साहबज़ादा कब आया है ?"

"कौन अशोक? वह पिछली इतवार को आया। एकाध महीना रहकर वापस चला जाएगा ?"

"तो आखिर कश्मीर से बाहर सीट मिल ही गई। डाक्टरी की या इंजीनियरी की ?"

"डाक्टरी इंजीनियरी के ख्वाब देखना उसने दो साल पहले ही छोड़ दिया था। यहीं से हिस्ट्री में एम.ए. किया और वहां एम.फिल. कर रहा है।"

"मगर वह तो मेडिकल पढ़ता था और बारहवीं में ढेर सारे नम्बर लाया था।"

"हां छिहत्तर फीसदी नम्बर लाया था। मगर मेडिकल सीट नहीं मिली। फिर अलग से हिसाब का इम्तिहान दिया और परसेंटेज को बयासी तक बढ़ाया। लेकिन इंजीनियरिंग में भी यहां दाखिला नहीं मिला। बाहर भेजने के लिए मेरे पास पैसे कहां थे ? इसलिए यहीं आर्टस में बी.ए., एम.ए. किया। तुम मुझसे यही जानना चाहते थे और इसीलिए मुझे यहीं रोके रखा ? मोहनकृष्ण ने झुंझला कर कहा।

"नहीं। तुमसे दूसरी ही एक ज़रूरी बात करनी थी। मगर वह बात करने से पहले साहिबजादे का हाल पूछना भी ज़रूरी था। कल शाम को ही उसे देखा जब बिजली चली गई थी। क्या कहता था ?"

"किस बारे में ?"

"यही कि बिजली कैसे चली गई थी और फिर कैसे आ गई ?"

"उसने इस बारे में मुझे कुछ नहीं बताया।"

"यह भी नहीं बताया कि असद नजार के लौंडे ने कैसी भद्दी गालियां दीं।"

"नहीं तो। उसने कुछ नहीं बताया।" मोहनकृष्ण चलने लगा। लेकिन अचानक पलट कर उसने रमज़ान जू से धीरे से पूछा– "असद नजार के लौंडे ने गालियां दी थीं। किसे ?"

"आंजहानी इंदिरा गांधी को और किसे ?"

"सीधे कहो इंदिरा गांधी को। यह आंजहानी क्या होता है।"

"आंजहानी मतलब दूसरे जहां का या दूसरे जहां की। जिस तरह तुम स्वर्गवासी कहते हो।"

"मगर तुम तो ऐसे शख़्स के लिए मरहूम या मरहूमा का लफ्ज़ इस्तेमाल करते थे।"

"करते थे और गलत करते थे। मरे हुए शख़्स के नाम के आगे मरहूम लफ्ज़ जोड़ने का मतलब है कि हम उसके लिए अल्लाह से रहमत की दुआ करते हैं और अल्लाह की रहमत का हकदार सिर्फ एक मुसलमान हो सकता है।"

"लेकिन मुझे याद है जब गांधी मरा था तो शेख अब्दुल्लाह से लेकर मौलाना सईद तक सभी ने उसे मरहूम गांधी जी कहकर ही खिराजे अकीदत पेश किया।"

रमज़ान जू इतनी जल्दी हथियार डालने वाला नहीं था। बोला–"गांधी जी ही क्यों, हमने पटेल को भी मरहूम ही कहा। यहां तक कि हमने उस जनसंघी को मरहूम कहा जो यहां आकर दफा तीन सौ सत्तर तो तोड़ नहीं सका, लेकिन यहां पर जिसने अपना दम तोड़ दिया। क्या मूरख जी नाम था उसका ?"

"मूरख जी नहीं, श्यामा प्रसाद मुखर्जी।"

"हां वही। उसके ताबूत पर कश्मीरी शाल डालते हुए हमारे शेरे कश्मीर ने उसे भी मरहूम कहा था। लेकिन उसी शेर के जिगरी दोस्त नेहरू के मरने पर न किसी शेरे कश्मीर और न ही किसी बकरे ने उसे मरहूम कहा। सबने उसे आंजहानी कहा। तुमने दीन- धर्म न मानने वाले अपने उस लीडर को स्वर्गवासी यानी जन्नती कहा। लेकिन हम कैसे कह सकते थे। जन्नत तो सिर्फ सच्चे मुसलमान को नसीब होती है। हमने उसे आंजहानी कहा। मतलब दूसरे जहान का।"

"मतलब जहन्नुमी। क्यों ? तुम्हारे हिसाब से जिसे जन्नत नसीब नहीं होगा उस जहन्तुम यानी दोज़ख की आग में ही जलना होगा। यह फतवा भी पाकिस्तान से ही आया है ?" मोहनकृष्ण ने शरारत से मुस्कुराते हुए पूछा।

रमज़ान जू ने भोलेपन से कहा–"फतवा कहां से आया वह मैं नहीं जानता। लेकिन मैं पिछले पच्चीस वर्षों में ऑल इंडिया रेडियो की उर्दू सर्विस और रेडियो कश्मीर से खबरें पढ़ने वालों को पंडित नेहरू को आंजहानी जवाहरलाल नेहरू कहते ही सुनता आ रहा हूं। ये दोनों पाकिस्तान के नहीं, भारत सरकार के इदारे हैं।"

"तुम से कौन जीत सकता है।" मोहनकृष्ण ने मुस्कुराकर अपनी हार मान ली और चलने लगा। लेकिन रमज़ान जू ने उसे रोका–"मैंने तुमसे एक ज़रूरी बात कहनी है।"

इस बार मोहनकृष्ण से रहा नहीं गया। वह रमज़ान जू पर बरस पड़ा –"बात कहनी है, बात कहनी है, मगर कहते कुछ नहीं हो। मुझ जैसे गरीब आदमी को बीसों काम करने होते हैं। उसका वक़्त इतना सस्ता नहीं होता है। वह वाटर वक्स के पानी में दूधिया रंग डालकर उसे मंहगे दामों नहीं बेचता है।"

रमज़ान जू ने बिना उत्तेजित हुए शांत भाव से कहा–"मकान बेचोगे ?"

मोहनकृष्ण रमज़ान जू की इस बेतुकी बात को समझने के लिए उसके चेहरे के भावों को पढ़ने की कोशिश करने लगा। मगर रमज़ान का चेहरा भाव शून्य था। उसने फिर कहा—"बेच दो। अच्छी कीमत मिलेगी।"

"यह क्यों नहीं कहते कि तेरी नज़र मेरे मकान पर पड़ी है। शायद इसलिए कि मकान व्यथ के घाट पर खड़ा है और तू सुबह शाम खिड़की पर बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाते हुए नीचे नदी में नहाती औरतों के नंगें जिस्म देखना चाहता है। मगर साले, वे तेरी ही जात बिरादरी की होती हैं। हमारी औरतें घर पर नहाती हैं नदी में नहीं।"

"यह लो ! अपना तजुर्बा बयान करके तूने मेरे सामने गुनाह कबूल कर लिया कि इस उर्म में भी तू बंद खिड़की के शिगाफों—छेदों से झांक कर अपनी बहू-बेटियों के नंगे तन-बदनों का नजारा लेता आ रहा है। अब राम नाम... चिता पर चढ़ने का वक़्त भी अपने भगवान के आगे अपना पाप कबूल कर लेना।"

दोनों हंसने लगे। लेकिन कुछ क्षण बाद रमज़ान जू ने फिर से गम्भीर होकर कहा—"मुझे तेरा मकान खरीद कर क्या करना है ? मेरी नज़र में एक तगड़ी असामी है।"

"लेकिन मैं खुद कहां रहूंगा ?" मोहनकृष्ण ने आर्तस्वर में कहा। उसके चेहरे पर तत्काल उदासी छा गई जैसे किसी ने उसे तुरंत घर छोड़ कर चले जाने का हुक्म दिया हो।

"क्यों ? तुम भी वहीं रहोगे जहां तुम्हारा बेटा रहेगा। अल्लाह उसे सलामत रखे, दिल्ली में आला तालीम पा रहा है। जल्द ही वहीं आला ओहदा भी हासिल करेगा। बेटी है, वह अपने घर चली जाएगी।"

मोहनकृष्ण को सुनकर आश्चर्य हुआ कि अपने जिस भविष्य के विषय में वह स्वयं अनिश्चित है रमज़ान जू ने उसके बारे में सब कुछ सोच रखा है। कुछ देर पहले मायूसी से मुरझाया हुआ उसका चेहरा क्रोध से तमतमाने लगा। वह गरजा "कान खोल कर सुनो रमज़ान। मेरा बेटा दिल्ली, बम्बई ही क्यों, इंग्लैंड अमरीका भी चला जाए, मैं अपने कश्मीर को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा। यहीं जन्मा हूं, यहीं मरूंगा।"

रमज़ान जू से दो टूक बात कहकर मोहनकृष्ण घर लौटने के लिए पहला पग उठाने वाले ही थे कि अचानक ज़ोर का धमाका हुआ। बिजली के तारों पर चहकती चिड़ियां तुरंत फुर्र हो गई। खंभों पर बैठे चोंचों से शरीर खुजलाने वाले कौवों के पंजे सहसा उखड़ गए और वे एक छत से दूसरी छत तक फड़फड़ाते हुए ऊंचे स्वर में कांव-कांव करने लगे। राह चलते लोगों के पांव ठिठक गए और उनमें

से कुछ डर के मारे गलियों घरों में छिप गए।

रमज़ान जू ने उठकर अपनी दुकान का शटर नीचे गिराया और मोहनकृष्ण से फुसफुसाया - "यह लो। कर्ण नगर में डी.आई.जी. वटाली या जज गंजू के घर में फिर कोई बम फटा होगा।"

मोहनकृष्ण ने मामला समझने के लिए कर्ण नगर की दिशा में नजर उठाई ही थी कि भगदड़ मच जाने के कारण वहां से लोगों का रेला पुलिया के इस पार आया। नया खान ड्रेस पहने कादिर कबाड़ी अचानक जाने कहां से कूद पड़ा और बीच सड़क पर खड़े होकर भागते लोगों का रास्ता रोक कर उन्हें फटकारने लगा -- "ज़नखो। बेग़ैरतो! भाग कर मां की गोद में छिपने जा रहे हो ? लानत है तुम पर।"

भागते हुए लोग रुक गए। कादिर खुश हुआ कि लोग अब उसे भी कुछ समझने लगे हैं। उसने उत्साह से ललकारा—"नारा-ए-तकबीर।"

"अल्लाह -अकबर" लोगों ने भी उत्साह से उसके नारे का जवाब दिया। दूसरी बार यही नारा दोहराने के बाद कादिर अटकल लगाकर स्थिति को समझन और उसके अनुकूल कोई नया नारा लगाने की सोच ही रहा था कि पुलिया के पार से एक ओर रेला भागता हुआ आया।

"पुलिस ! पुलिस" कोई चिल्लाया और कादिर के नारों का जवाब देने वाले लोगों में फिर भगदड़ मच गई। इस बार वे कादिर के रोके भी नहीं रुके।

डरा-डरा सा मोहनकृष्ण यह सब चुपचाप देख रहा था। मगर उसकी आंखों में भय से अधिक उत्सुकता ही झलकती थी। वह मन में अनुमान ही लगा रहा था कि स्थिति कौन-सा मोड़ लेगी कि भागता हुआ एक आदमी उससे टकराया। मोहनकृष्ण के हाथ से दूध का डोल छूट गया और सारा दूध उसके कपड़ों को गीला करता हुआ सड़क पर गिर कर बिखर गया। मोहनकृष्ण झुक कर खाली डोल उठाने ही लगा था कि उसके साथ टकराने वाले ने उसकी फिरन का गला पकड़ कर उसे उठाया और अपने नंगे गंजे सिर से उसके सिर को टक्कर मारी। मोहनकृष्ण की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। फिर तनिक संभल कर उसने अपना गला छुड़ाया और खाली डोले से उस गंजे मुस्टंडे के सिर पर चोट की । अब के मोहनकृष्ण के फिरन का नहीं, उसका ही गला दबाकर वह आदमी गुर्राया—"अब्बे ओ भट्ट दल्ले ! तुझे मुझ पर हाथ उठाने की हिम्मत कैसे हुई ?"

"तुमने टक्कर क्यों मारी ? मोहनकृष्ण की घिग्घी बंध गई थी।"

"तुने मेरा रास्ता क्यों रोका, दालिया भट्टे ? तुम ससुरों ने हमेशा हमारा रास्ता रोका है। मगर अब तुम्हारी दाल नहीं गलेगी। देखते जाओ । तुम दिल्ली

के पिल्लों की सारी अकड़फू पीछे से निकल कर तुम्हारी इज़ारों को गीला और गंदा करेगी..''

वह जाने और क्या - क्या कहता मगर कादिर ने आकर उसे रोका—''क्या बक-बक कर रहा है, गधे की औलाद ? मुंह से बोलता नहीं, हगता है।

फिर उसने पास खड़े रमज़ान जू को हुक्म दिया— ''रमज़ान चाचा, दुकान में कुछ दूध बचा हो तो इन पंडित जी का डोल भी भर दो।''

रमज़ान जू ने मोहनकृष्ण के हाथ से डोल लिया और उसके कान में धीरे से कहा—''बुत बने क्यों खड़े हो, मास्टर जी ? बोलो, बेचोगे अपना मकान ?''

मोहनकृष्ण जैसे सचमुच बुत बन गया था। उसने न जुबान खोली और न ''हां'' या ''नहीं'' में सिर हिलाया।

(3)

श्रीनगर और घाटी के अन्य नगरों में स्कूल कॉलेज जाने वाले लड़के-लड़कियों का- और अध्यापक - अध्यापिकाओं का भी दिन भर का प्रोग्राम सुबह साढ़े नौ बजे रेडियो कश्मीर से स्थानीय समाचारों का बुलेटिन सुनने के बाद ही बनता है। आज यह बुलेटिन सुनने के लिए विशेष कारण भी था। दूर कर्ण नगर इलाके से बम फटने की और पास की गलियों में लोगों के भागने-दौड़ने की आवाज़ आई थी। इस समय सवा नौ बजे थे और नीरजा नहा-धोकर और कपड़े बदलकर पर्स में पेन, पैसे, रूमाल आदि रख रही थी। उसकी आंखें दीवार पर लटकती घड़ी और कान शेल्फ पर रखे ट्रांजिस्टर की ओर लगे थे। शांता भी हाथ में कड़छी लेकर किचन में तैयार बैठी थी। यदि रेडियो वह सरकारी ऐलान सुनाता जिसके अब सब लोग आदी हो गए हैं तो ठीक ही रहता। वह पिंकी को ''पन''का नैवेध ''रोट'' लेकर उसकी बुआ के घर राजबाग भेजेगी और अगर रेडियो इस बारे में चुप रहा तो कड़छी से उसकी थाली में भात परोसकर उसे तुरंत कॉलेज रवाना करेगीं।

शांता इस समय कमर में कुछ ज्यादा ही दर्द अनुभव कर रही थी। उसके सौभाग्य और बीबी धर्म भाई की कृपा से रात के भी दो बजे ही बिजली आ गई थी और वह उसी समय बिस्तर छोड़कर उठी थी। नल में भी पानी था और वह नहा-धोकर ''पन'' के लिए आटा छानने, गूंदने और फिर उसके पेड़े बनाने में लग गई थी। अकेली औरत के लिए पांच किलो आटे के रोट बनाना मज़ाक नहीं था। वह आधे से ज्यादा पेड़े बना चुकी थीं कि नीरजा भी जाग गई। तब तक नल का पानी चला गया था। उसने बाथरूम में पहले से भरी बाल्टी से कुछ लोटे पानी शरीर पर डाला और पड़ोसियों से मांगकर लाए गए चरखे पर थोड़ा-सा ''पन'' (सूत) काता। फिर नारियल को बारीक कुतरने और ''बूढ़ी'' इलाचियों से काले

दाने निकालने के बाद वही पेड़े बनाने लगी और शांता ने कड़ाही में ''डालकर उसे चूल्हे पर चढाया। अशोक और उसका बाप आज भी छः बजे तक सोते रहे थे।

शांता थकावट से अधिक क्रोध के कारण उद्विग्न थी। घर में उसके सिवा किसी को भी ''पन'' के इस पवित्र पर्व पर काई श्रद्धा नहीं थी। हां, मीठे गर्म-गर्म रोट खाना सबको अच्छा लगता था। लेकिन दोष बच्चों का नहीं, उनके मां-बाप का है। बाप ही ''बकवास'' कहकर जिस कथा की खिल्ली उड़ाए बच्चे उसे सुनते-सुनते हंसेंगे नहीं तो क्या करेंगे ? लेकिन आज सभी ने हाथों में दूब अर्घ लिए शांता के मुख से बीबी धर्मभाई की कहानी ध्यान से न सही, पर खामोशी से ज़रूर सुनी थी। मास्टर जी शायद पत्नी के गुस्से से बचना चाहता था और बच्चे मां को दुखी नहीं देखना चाहते थे।

बीबी धर्मभाई की कथा सुनाते समय शांता का गला भर आता था और आंखें स्वतः आंसुओं से भर जाती थीं। उससे पहले उसकी सास भाद्रपद मास में मनाए जाने वाले ''पन'' पर्व पर यही कथा सुनाती थी। शांता ने कभी भी अपनी सास से नहीं पूछा कि जिस रानी की कहानी वह, सुनाती है उसे बीबी क्यों कहती है? जब वह नई-नई ही दुल्हन बनकर इस घर में आई थी, तो मास्टर जी ने ही एक दिन उसे बताया था कि कहानी असल में किसी रानी की ही है। लेकिन पठान राज में उनके डर से बेचारी रानी को रानी न कहकर बीबी कहा जाने लगा था। आज कान में ''पन'' सूत कहकर कथा सुनाते समय शांता को लगा था कि वह किसी रानी या बीबी की नहीं, स्वयं अपनी ही कहानी सुना रही है.....

''जब बेटी देर तक घर नहीं लौटी तो उसकी छाती जोर से धड़कने लगी। जाने कैसे-कैसे बुरे विचार मन को विचलित करने लगे। जवान, सुंदर और असहाय गरीब लड़की और हर ओर घूमते खूंखार भेड़िए! लेकिन तभी बेटी घर पहुंची और मां ने उसे गले लगाकर रोते हुए पूछा—''बेटी इतनी देर कहां लगाई? कहीं भेड़ियों से आतंकित होकर तेरा पांव तो नहीं फिसला है और तू कीचड़ से लथपथ अपना दामन लेकर तो नहीं लौटी है?'' यह सुनकर बेटी का चेहरा तमतमा उठा और उसने दृढ़ स्वर में कहा—''मां, आतंक का काला कीचड़ हो या प्रलोभन का चिकना संगमरमर—पांव फिसल जाने से पहले तुम्हारी बेटी का सिर धड़ से अलग हो जाएगा। असल में मैं जिस घर में काम करने गई थी वहां पूजा हो रही थी। मालकिन कानों में नया काता सूत पहनकर भक्तिभाव से जाने किस देवी-देवता के ध्यान में मग्न थी। धूप-दीप, अगरू और गेंदे की गंध मुझे भी भा गई। सफाई-धुलाई और झाड़-बुहार का काम पूरा होने के बाद भी मैं वहीं रुक गई। पूजा संपन्न होने पर मालकिन ने मुझे प्रसाद में यह 'रोट' दिया जिसे मैं तुम्हारे

लिए लाई हूं।" रोट हाथ में लेकर मां और भी जोर से रोने लगी और फिर आंसू पोंछ कर बोली—"बेटी हम भी बड़ी श्रद्धा से "पन" का पर्व मनाते थे। एक दिन जाने किसके उकसाने से तेरे पिता की मत मारी गई और उसने अकारण क्रोध में आकर सारा अनुष्ठान अशुद्ध कर दिया। उसी दिन से हमारी यह दशा हो गई। राजा से रंक हो गए।" बेटी की आंखें छलकने लगीं। उसने अधीर होकर मां से कहा—"मां, क्यों न हम दूर्दिन के इतने लंबे अंतराल के बाद आज फिर से यह पर्व मनाएं।" लेकिन मनाते कैसे ? दूध, घी, शक्कर आटा कहां से आता ? मगर मां ने अद्‌भुत सूझ से काम लिया। अपने और बेटी के आंसू पोंछकर वह शाही घुड़शाला में पड़ी लीद उठा लाई और उसे धोया। उसमें से अनाज के अधपचे कण बीन कर उन्हें सुखाया और फिर पीसा। उसी आटे में मिठास तो नहीं, शक्कर के रंग का आभास देने के लिए चिकनी मिट्‌टी मिलाई। उसके ऊपर घी तेल के अभाव में तीन रोट सूखे ही सेंक दिए। कहीं से थोड़ी-सी रूई ले आई और उसे हाथों उंगलियों से ही कातकर कानों में "पन" का पवित्र धागा पहना। तब मां-बेटी ने रो-रोकर पूजा की और पूजा पूरी होने पर हाथों में धरे श्रद्धा के फूल—दूब घास के तिनके सामने रखे मिट्‌टी के जल से भरे कुंभ को अर्पित किए। बेटी कुंभ उठाकर चल दी और मां ने रोटों के ऊपर एक टूटी-फूटी टोकरी औंधी करके रख दी। थोड़ी देर बाद बेटी कुंभ के जल को व्यथ वितस्ता के जल में बहाकर लौटी। टूटी टोकरी के छेदों से जब उसकी नज़र रोटों पर पड़ी तो वह ज़ोर से चिल्लाई— मां! "मां दौड़कर बेटी के पास गई और रोटों के ऊपर रखी गई टोकरी को हटा दिया। तीनों रोट सोने के रोटों में बदल गए थे। मां शारिका की अनुकंपा का चमत्कार देखकर मां-बेटी परस्पर गले लगकर जोर-जोर से रोने लगीं। उधर गृह-स्वामी राजा पर लगा अभियोग झूठा सिद्ध हुआ और काशी नरेश ने उसका कश्मीर राज्य उसे लौटा दिया। मां शारिका की दया से जैसे उनके दिन फिरे, वैसे ही हम सबके फिरें ....

"सबके दिन फिर गए। जाने मेरे कब फिरेंगे।" सुबह सुनाई कहानी याद आने पर शांता के मुंह से उसांस के साथ अनायास निकल पड़ा कि नीरजा ने उसे टोका—

"मम्मी, चुप रहो। खबरें सुनने दो।"

शांता का ध्यान भी ट्रांजिस्टर की ओर गया। कश्मीरी बुलेटिन जाने कब खत्म हुआ था और अब उर्दू बुलेटिन चल रहा था—

... "कल कुलगाम में ब्लॉक प्रेज़िडेंट जनाब गुलाम मुहम्मद परे की सदारत में कांग्रेस के कारकुनों की एक मीटिंग हुई जिसमें श्री राजीव गांधी की कयादत पर मुकम्मल ऐतमाद का इजिहार किया गया। मीटिंग में रियासती हुकूमत से अपील

की गई कि हानंद चोवलगाम के आतिशजदगान के हक में रिलीफ की रकम फौरन वागुजार की जाए। .:. कश्मीर के डिविजनल कमिश्नर के एक हुक्म के मुताबिक वादी में आज सभी तालीमी इदारे बंद रहेंगे। ... खबरें खत्म हुई।

नीरजा ने तालिया बजाई। शांता ने कड़छी और थाली वापस रैक पर रखकर उससे कहा—"चलो छुट्‌टी का ऐलान तो हो गया। तूने कपड़े तो पहन ही लिए हैं। यह रोट का प्रसाद राजबाग बुआ के यहां पहुंचा दे। खाना वहां से लौट कर खा लेना। अगर वे "ज़ोर" करें तो वहीं खा लेना।"

"मैं कहीं नहीं जाऊंगी। मुझे लेसन तैयार करना है।" नीरजा पर्स पेन उठाकर ऊपर अपने कमरे में चली गई।

शांता को बेटी का इस प्रकार सिर झटका कर कमर मटकाकर मां की बात मानने से इन्कार करना अच्छा नहीं लगा। अब कोई छोटी बच्ची भी तो नहीं रही है। अगले महीने ही तेईस पूरे करेगी। जब वह उसकी उर्म की थी, तो अशोक को जन्म दे चुकी थी। मगर इसका भीं कोई दोष नहीं है। जिसका दोष है, वह वहां कोने में चुपचाप बैठा अखबार में जाने क्या खोज रहा है। साढ़े छः बजे दूध लाने निकला था और साढ़े आठ बजे लौटा। दूध भी पूरा नहीं ले आया लेकिन फिरन का गला पूरे का पूरा फाड़कर आया। बाहर जुलूस निकालने वालों, बम फोड़ने वालों को आज़ादी मिले या न मिले, उसके घर में सबको आज़ादी है। भाड़ में जाए ऐसी आज़द ख्याली जिसने उसकी सारी गृहस्थी को चौपट कर दिया।

शांता ने खिड़की के पास बिछी चटाई पर फिरन पहन कर आराम से बैठे मोहनकृष्ण की ओर आंखे तरेर कर देखा जो चार पन्ने के उर्दू अखबार को बार-बार पढ़ रहा था। शांता ने निःश्वास लेकर अपने भाग्य को कोसा। उसकी कई सहेलियों के भाग्य में बड़े ऑफिसर थे और बहुतों के भाग्य में मामूली क्लर्क। मगर सभी अफसरों क्लर्कों की दूतियां अपने घर ओर अपने बाल बच्चों तक ही सीमित है और उसका घर वाला! वह अपने घरबार से बेखबर दुनिया जहान की खबरों में डूबा रहता है। बख्शी, सादिक, कासिम तीनों से जान पहचान होते हुए भी अपने लिए कोई सरकारी नोकरी हासिल नहीं कर पाया। स्कूल मास्टर बनकर किताबों के साथ सिर खपाने के बावजूद कभी भी बी.एड. ट्रेनिंग पास करने का ख्याल नहीं आया। इस समय भी मीर साहब का इतना बड़ा पब्लिक स्कूल असल में वही चला रहा है। शमीमा जी तो बस नाम की प्रिंसिपल हैं। क्या इसी स्कूल में वह पिंकी को टीचर नहीं लगा सकता था? बी.एड तो नौकरी लगने के बाद भी हो सकता था। बेटी को ब्याहना भी है। उसके बारे में भी कुछ नहीं सोचता है। नौकरी लगती तो बेचारी खुद अपने दिए दहेज जूटाती। अखबार में उलझा यह

बंदा कहां से इतने सारे रूपयों का इंतजाम करेगा?

मोहनकृष्ण ने अखबार से नज़र उठाकर देखा कि शांता उसे घूर रही है। उसने राज़दारी के अंदाज में उससे कहा—"शांता, अगर हम अपना मकान बेच दे तो कैसा रहेगा?"

पति के इन शब्दों ने शांता के भीतर छिपे बम के लिए डिटोनेटर का काम किया। वह फट पड़ी— "तो तुम्हारी नज़र इसी मकान पर है। अपना घर बेचकर बेटी को पराए घर भेज दोगे और खुद सड़क पर पड़े रहोगे। पचास पार करके जीवन में पहला शुभ कार्य करोगे। वह भी अपनी कमाई से नहीं, बल्कि पुरखों की अस्थियां बेचकर। धिक्कार है। नहीं तुम पर नहीं, धिक्कार है मेरे अपने भाग्य पर।

मोहनकृष्ण ने उत्तर में कुछ नहीं कहा। शांता ही क्यों? अक्सर लोग उसकी बातों को सही संदर्भ में न लेकर उससे झगड़ते हैं ...। आज फिर सारे स्कूल कॉलेज बंद कर दिए गए। कारण रेडियो ने नहीं बताया। लेकिन सुबह का सिरीनगर टाइम्ज़ पढ़कर कारण साफ नज़र आता है। कल देर रात नौहट्टा चौक के पास लोगों को एक नामालूम शख्स की लाश मिली। कयास किया जाता है कि मरा पड़ा नौजवान शफी शोदा था जो शोदा गली अमीरा कदल का रहने वाला था और सत्तासी के असेम्बली चुनावों में "मफ" (मुस्लिम यूनाइटिड फ्रंट) का पोलिंग एजेंट रहा था। पुलिस के मौके पर पहुंचने से पहले ही लोगों ने लाश को अपने कब्जे में ले लिया और उसके कत्ल का इलजाम सी.आर.पी. पर लगाया।

समाचार पढ़कर मोहनकृष्ण सोच में पड़ गया था कि लाश की पूरी शिनाख्त नहीं हुई, जिस्म पर गोली का कोई निशान भी नहीं था, पास्ट-मार्टम भी नहीं करने दिया गया लेकिन फिर भी लोगों का गुस्सा भड़क उठा और हालात को काबू में रखने के लिए प्रशासन को सारे स्कूल-कॉलेज बंद करने पड़े। इसके विपरीत एकाध महीने पहले ही नेशनल कान्फ्रेंस के सरगरम कार्कुन मुहम्मद यूसुफ हलवाई को दिन दहाड़े कुछ बंदूकधारी लड़कों ने उसकी ही दुकान से नीचे घसीटकर सरे आम गोली मारकर सिर्फ इसलिए मार डाला कि उसने न चौदह अगस्त को पाकिस्तान डे पर कोई चिरागां किया था और न ही पंद्रह अगस्त को ही ब्लैक-आउट किया था। उसके कत्ल के बाद कहीं कुछ नहीं हुआ था। किसी ने जफ़ा से तौबा ही की थी और न किसी ने आंसू ही बहाए थे। न कोई जुलूस ही निकला था और न कहीं हड़ताल ही हुई थी। स्कूल-कॉलेज, दुकाने दफतर, बसें-मैटाडोर आम दिनों की तरह ही चलते रहे थे और वह यूसुफ हलवाई उसी नेशनल कान्फ्रेंस का हल्का प्रेज़िडेंट था जो सैंतालीस से आज तक कश्मीर पर

बराबर हुकूमत करती आ रही है। बीच में जो कांग्रेसी चीफ मिनिस्टर बने थे वे भी पुराने नेशनल कान्फ्रेंसी ही थे। मजदूरों, ड्राईवरों, हाजियों, दुकानदारों, ताजरों की लगभग सभी अंजुमनों पर भी नेशनल कान्फ्रेंस का ही कण्ट्रोल था। छियालीस में डोगरा राज के खिलाफ "यह मुल्क हमारा है, इसकी हुकूमत हम करेंगे" का नारा लगाकर "कश्मीर छोड़ दो" आंदोलन छेड़ने वाली पार्टी भी नेशनल कान्फ्रेंसी ही थी और सैंतालीस-अड़तालीस में पाकिस्तानी कबाइलों के खिलाफ "हमला आवर ख़बरदार, हम कश्मीरी हैं तैयार" तथा "यह मुल्क हमारा है, इसकी हिफाज़त हम करेंगे" के नारे लगाने वाले भी नेशनल कान्फ्रेंसी ही थे।

इन्हीं नेशनल कान्फ्रेंसियों ने रियासत की पहली असेम्बली के लिए सारे मेम्बर विरोधी उम्मीदवारों के कागज़ रद्द करके अपनी पार्टी से ही "बिला मुकाबला" विजयी घोषित किए थे। छः सात साल पहले कांग्रेस के ख़िलाफ चुनाव लड़ते हुए नेशनल कान्फ्रेंसी खड़पंचों ने ही एक भी कांग्रेस समर्थक कश्मीरी पंडित को वोट डालने नहीं दिया और दो साल पहले नेशनल कान्फ्रेंस के ही कारकुनों ने बहादुरी दिखाते हुए मुस्लिम युनाइटेड फ्रंट की पेटियों में पड़े वोट अपनी पार्टी की पेटियों में डाले। जाने वे नेशनल कान्फ्रेंसी बहादुर कहां गए जिन्होंने पाकिस्तान में भुट्टों को फांसी दिए जाने पर ज़िया-उल्-हक के पुतले और जमात-ए-इस्लामी वालों के गांव के गांव जलाए थे। इस एकाध दशक में ही क्या वह सारा जुनून सूख गया और सारी जुर्रत खोखली सिद्ध हो गई? नहीं, जुनून का दरिया सूख नहीं गया है, उसकी दिशा ज़रूर बदल गई है। रमज़ान जू ने शायद यह बदलाव भांप लिया है और इसीलिए एक हितचिंतक के नाते उसे मकान बेचने की सलाह दी। एक वह है और एक उसकी अपनी पत्नी है जो समझती है कि उसका निकम्मा पति बेटी की शादी के लिए धन जुटाने में नाकाम होकर पुरखों का मकान बेचना चाहता है।

हालात में बदलाव के इशारे मोहनकृष्ण को भी कई बार मिले थे। लेकिन अपनी "बुद्धिमत्ता" के मद में उसने इन इशारों की उपेक्षा की थी। उस की आंखों के सामने ही जो साफ-साफ दिखता था, उसने भ्रमवश या किसी अज्ञात मोहवश उसे अनदेखा किया था। उसे लगभग दस साल पहले का वह दिन, नहीं वह रात याद आई जब वह बुछवारा में मीर साहब के साथ एक पब्लिक स्कूल खोलने की योजना पर विचार करने के बाद देर रात को घर लौट रहा था। जिस समय उसकी बस डल गेट से लाल चौक पहुंची उसी समय प्लैडियम सिनेमा का आख़िरी शो खत्म होने पर पनवाड़ी से सिगरेट का एक पैकेट खरीदा। तभी सिनेमा देखकर हाल से निकले दो मुसलमान लड़के भी चौरसिया की दुकान पर सिगरेट लेने आए। दुकान में ट्रांजिस्टर पर जाने किस स्टेशन से खबरों का

आखिरी बुलेटिन चल रहा था। खास खबर यह थी कि पाकिस्तान के सदर जनरल ज़िया-उल-हक ने जुल्फेखार अली भुट्टो की रहम की दरखास्त रद्द कर दी। खबर सुनकर दोनों लड़कों की हालत अजीब हो गई थी और वे ज़ोर-ज़ोर से सिगरेट के कश लेने लगे थे। उन्हें भी शायद शहर के निचले हिस्से में जाना था। मोहनकृष्ण बीच में गज़ दो गज़ का फासला रख कर उनके पीछे-पीछे चलने लगा था। तनाव, क्रोध या जाने किस कारण दोनों लड़के तेज़ खटाखट कदमों से चुपचाप चल रहे थे। गऊ कदल को पार करने पर एक लड़के ने चुप्पी तोड़कर अपने साथी से पूछा– "अब क्या होगा?"

"भुट्टो को फांसी दी जाएगी।"

"कुरान की कसम?" पूछने वाला लड़का शायद यह सुनने के लिए तैयार नहीं था।

"हां, कलाम अल्लाह की कसम। सदर के फैसले के खिलाफ कोई अपील नहीं हो सकती।"

दोनों फिर से ख़ामोश हो गए। यह खमोशी तब टूटी जब वे दोनों और उनके पीछे-पीछे चलने वाला मोहनकृष्ण पंडितों के मुहल्ले गणपतयार के बीच पहुंचे। पहला लड़का बाजार के दोनों किनारों पर एक दूसरे से सटे सीधे टेढ़े घरों पर नजर डालकर गरजा- "सुन ले साले। अगर वहां किसी ने भुट्टो को हाथ भी लगाया यहां एक भी पंडित साले को जिन्दा नहीं छोड़ेंगे।"

यह अटपटा अल्टीमेटम सुनकर मोहनकृष्ण न आतंकित हुआ था और न क्रुद्ध। उसे उनकी बेवकूफी पर दया ही आई थी। वह दो चार कदम तेज-तेज चलकर उनके निकट पहुंच गया था और मुस्कुराकर बोला था– "मेरे अज़ीज़ो , यह सही है कि तुम दोनों मुसलमान हो और भुट्टो साहब भी मुसलमान हैं। मगर वहां उसकी रहम की दरखास्त रद्द करने वाला जिया-उल-हक भी मुसलमान है। जिस जज ने भुट्टो को मौत की सजा सुनाई वह भी मुसलमान ही था। भुट्टो साहब ने जिसका कत्ल करवाया था या जिसके कत्ल का झूठा इलजाम उस पर लगाया गया वह भी मुसलमान था। साजिश में शामिल और लोग या उनके खिलाफ गवाही देने वाले दूसरे लोग सब के सब भी वहां के मुसलमान थे। उन सब का बदला तुम यहां के कश्मीरी हिन्दुओं से क्यों लेना चाहते हो?"

शांता की तरह ही उन लड़कों ने भी उसकी बात को सही संदर्भ में नहीं लिया था। एक बोला था–"अपनी गली में बाहर निकलो। हम तेरी दाल निकालकर उसमें तेरी ही चरबी का बघार डाल देंगे।"

मोहनकृष्ण डर गया। उसे लगा कि उसे इस प्रकार अपनी पंडिताई नहीं बघारनी

चाहिए थी। सहसा उसकी नजर मन्दिर घाट के साथ लगे एक शिकारे पर पड़ी। उसने अंधेरे में भी शिकारे वाले को पहचान लिया। वह कोई और नहीं, मल्लाह सुबहाना था। मोहनकृष्ण की जान में जान आई कि अब उसे सिरफिरे लड़कों के साथ हब्बाकदल पुल तक नहीं चलना होगा। वह दौड़कर घाट की सीढ़ियां उतरा और सुबहाना के शिकारे में बैठ उसने निशंक व्यथ को पार किया था।

"अरी बसंती।"

शांता की आवाज सुनकर मोहनकृष्ण के विचारों को झटका लगा और वह अतीत से वर्तमान में आ गया। उसने देखा कि सामने पिंकी की सहेली खड़ी है जो उसी के साथ गांधी मेमोरियल कॉलेज में बी.एड कर रही है। हल्के पीले रंग की शिलवार के ऊपर बैंगनी कमीज, कंधों से लटकती शिलवार के ही रंग की चुनरी और माथे पर शृंगार की बिंदी नहीं, पूजा का सिंदूरी तिलक जो मोहनकृष्ण को बहुत भला लगा।

"नमस्कार अंकल।"

"कहो बेटी कैसी हो? जानकीनाथ जी का क्या हाल है?"

अब पहले से बहुत ठीक हैं। पिछले सोमवार से फिर से ऑफिस जाने लगे हैं।"

"तुम्हारे यहां भी आज ही "पन" था?" शांता ने उसके माथे के तिलक को देखकर पूछा।

बंसती ने मुस्कुराते हुए सिर हिलाकर हां कर दी और फिर बोली– "मुझे कॉलेज पहुंचकर पता चला कि आज छुट्टी है।"

"तुम घर से कॉलेज और कॉलेज से यहां कैसे आई? रास्ते में सब ठीक था?" मोहनकृष्ण ने पूछा।

"हां, ठीक ही था। सिर्फ नौहट्टा चौक के पास लोगों की छोटी-छोटी टोलियां आपस में खुसुर-फुसुर कर रहीं थीं। लेकिन मुझसे किसी ने कुछ नहीं कहा। कॉलेज से उल्टे पांव चलकर मैटाडोर में बैठी और ठीक-ठाक यहां पहुंच गई। नीरजा यही है ना?"

शांता ने इशारे से बताया कि ऊपर अपने कमरे में पढ़ रही है। बसंती सीढ़ियां चढ़ने लगी।

शांता मन ही मन जल रही थी। मान लिया कि आज सुबह रैनावारी इलाके में बिजली नहीं रही होगी। मगर आजकल किस घर में ट्रांजिस्टर नहीं होता है? स्कूल कॉलेज बंद होने का ऐलान उसने भी सुना होगा। लेकिन अनजान बनकर कॉलेज जाने के बहाने पिंकी से मिलने यहां चली आई। पिंकी से मिलना भी

बहाना है। जब से अशोक आया है तब से पिंकी के साथ यहां आती ही रहती है। शांता को बसंती की मां पर गुस्सा आया। खुद अनपढ़ गंवई गाय तो है ही, बेटी को भी बन छागरी की तरह यहां वहां घूमने के लिए खुला छोड़ दिया है।

शांता बसंती की मां से जुड़ी अनेक बातें याद कर रही थी कि नीरजा आकर सीधे किचन में चली गई। शांता के पूछने पर उसने सिर्फ इतना बताया कि वह भैया, बसंती और अपने लिए चाय बनाएगी। भैया की तरह ही बसंती को भी ताज़े रोठ चाय के साथ बहुत मज़ेदार लगते हैं।

तो अशोक और बसंती दोनों ऊपर एक साथ बिना किसी तीसरे की उपस्थिति के बैठे हैं। पिंकी को नीचे चाय बनाने के लिए भेज दिया। बस हो गया पूरा उसका रिसर्च और मिल गई उसे लेक्चरी। उसे फिर मोहनकृष्ण पर क्रोध आया। बेटे के कैरियर की, उसके भले-बुरे की परेशानी तो बाप को होनी चाहिए। लेकिन जाने किस के शाप से बाप इन सारी परेशानियों से मुक्त होकर अख़बार पढ़ने में ही सुख पाता है। वह पति को खरी खोटी सुनाने के लिए कोई बहाना ढूंढ ही रही थी कि मोहनकृष्ण ने अखबार को तह करके ताकचे पर रखा और शांता से कहा-- "शुक्र है कि नया गैस सिलंडर कल ही आया है। पांच दस लिटर मिट्टी का तेल भी घर में होगा ही। हालात का क्या भरोसा? जाने कब कौन-सी करवट लें?"

अंधा क्या चाहे दो आंखें। शांता मोहनकृष्ण पर बरस पड़ी--"गैस पर पकाने के लिए सब्जी दाल होनी चाहिए और सब्जी दाल में भी मिट्टी के तेल का बघार नहीं डाला जा सकता। उठो और सरसों का तेल, डालडा, बिस्कुट और तीन चार दिनों के लिए सब्जी और दालें ले आओ। अगर कहीं सिविल या पुलिस कर्फ्यू लगा तो घर में गैस होकर भी चूल्हा ठंडा रहेगा।"

"मम्मी, इतने ज़ोर से मत बोलो। ऊपर बसंती बैठी है।"

शांता दांत पीसकर रह गई। अब उसे बसंती से भी डरना होगा! पढ़ी-लिखी एफ.ए. पास होकर भी उसे इन कॉलेज की छोकरियों से दबकर रहना होगा? उसने मोहनकृष्ण की ओर देखा। मोहनकृष्ण बिना उससे नजर मिलाए उठा और झोला लेकर सब्जी लेने चला गया। नीरजा ट्रे में रोठ, चाय की केतली और कप लेकर सीढ़ियां चढ़ने लगीं।

जिस समय नीरजा ने चाय लेकर कमरे में प्रवेश किया, अशोक और बसंती में गरमागरम बहस चल रही थी। पता नहीं अशोक ने क्या कहा था जिसे सुनकर बसंती आवेश में आ गई थी--"ठीक है यहां गुलमर्ग है, पहलगाम है, डल झील और चश्माशाही है। लेकिन हम जैसे लोग वहां कब जाते हैं? हमारा कश्मीर हमारे

Author Copy
लेखक की प्रति

गंदे मुहल्ले उनके गड्ढ़ों-खड्डों वाले बाजार और कीचड़ भरी गलियां हैं।"

"जैसा भी है हमारा घर है और अपना घर सारी दुनियां से प्यारा होता है।" अशोक ने शांत भाव से कहा।

नीरजा ने दोनों के आगे चाय की प्याली रखकर पूछा-- "बहस का "इशू" क्या है?"

"तुम्हारे भैया कहते हैं कि दिल्ली में पढ़ाई पूरी करके श्रीमान जी वापस कश्मीर आएंगे और रोज़ी-रोटी का कोई इंतजाम करके पूरी जिंदगी यहां गुजारेंगे।"

"यहां रोज़ी-रोटी का इंतज़ाम हो सकता है?" नीरजा ने प्रश्न किया।

"पूछा लो श्रीमान जी से?" बसंती ने कहा।

"सरकारी कॉलेजों से प्राइवेट स्कूलों तक कहीं न कहीं मास्टरी मिल ही जाएगी।" अशोक ने मुस्कुराकर कहा और फिर गम्भीर होकर दोनों को अपनी बात समझाने लगा-- पैसा, पद, स्टेट्स पाने वाले सचमुच बड़े आदमी होते हैं। लेकिन अपनो के बीच जिंदगी गुजारने वाले सुखी जन होते हैं।

"आप मर्द हैं। शायद इसीलिए ऐसा कहते हैं। लेकिन मैं उन "अपनो" को क्या कहूं जो सड़कों पर मुझे, नीरजा, ऊषा, रजनी या दूसरी लड़कियों को देखकर सीटियां बजाते हैं, गलियों में गालियां देकर गंदे इशारे करते हैं, मैटाडोरों में सटकर जिस्म से जिस्म रगड़ते हैं, बसों में बॉटम पिचिंग ही नहीं और भी बहुत कुछ करते हैं और शायद इसलिए करते हैं कि हम पंडित लड़कियां हैं।"

बसंती की बात सुनकर और उसका तमतमाता चेहरा देखकर अशोक को उसका प्रतिवाद करने का साहस नहीं हुआ। उसने एक भुक्तभोगी लड़की के अद्‌भुत सत्य को झुठलाना भी नहीं चाहा। फिर भी उसकी समझ में इस के मूल में कश्मीरी पंडित जाति के विरूद्ध किसी प्रकार का कोई दुराभाव नहीं बल्कि सदियों से हाथ की पंहुच से परे समझी जाने वाली दुर्लभ वस्तु को हथियाने की इन्सानी कमजोरी हो सकती है। वातावरण की गम्भीरता को कुछ कम करने के लिए उसने मुस्कुराकर बंसती से पूछा--"आप कहिए कि आप चाहती क्या हैं?"

"मैं चाहती हूं कि जहां रहूं अपनी मर्जी की मालिक बनकर रहूं। अपनी मर्जी की ड्रेस पहनुं, अपनी मर्जी का मेकअप करूं। अपने साथी के स्कूटर के पीछे बैठी जहां चाहुं घूमूं फिरूं। लोग मुझे देखें लेकिन कोई घूरे नहीं। कोई सीटी नहीं बजाए, फबती नहीं कसे, भद्दी गाली नहीं दे, मेरे साथी को डरा-धमकाकर मेरे साथ बदतमीजी न करे। क्या यहां यह सम्भव है? तुम यहीं रहकर सारी जिन्दगी गुजारना चाहते हो। मेरा बस चले तो मैं यहां एक पल के लिए भी नहीं रहूं। कहे देती हूं।"

बसंती शायद खुद भी नहीं जानती थी कि वह क्या कह रही है। मगर कह

चुकने के बाद उसे लगा कि उसे यह सब नहीं कहना चाहिए था। "आप" से शुरू की हुई तान को "तुम" पर नहीं तोड़ना चाहिए था और बात के अन्त पर "कहे देती हूं" नहीं कहना चाहिए था। उसका अशोक पर कौन-सा अधिकार है? या हो सकता है कि कोई न कोई अधिकार हो जिसे न वह स्वंय जानती है और न ही अशोक जानता है...

बसंती का क्रोध से तना चेहरा लज्जा से पिघल गया था। उसने कंधों से सरकी चुनरी को सम्भालकर कंधों के साथ-साथ वक्षस्थल को भी फिर से ढक लिया और आंखें झुका ली। अशोक बसंती की स्लीव लेस कमीज़ से बाहर निकली गोरी बाहों और गुदगुदे कंधों में आंखें गड़ाए जाने वहां पहुंच गया था कुछ वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि छरहरे बदन वाली छुई-मुई सी लड़की की बाहें और कंधे इस प्रकार सुडौल, मांसल और भरे-भरे होंगे। लेकिन फिर भी किसी लता की तरह सुकुमार और लचीले। अशोक को अचानक सचिनदेव बर्मन का गया एक पुराना गीत याद आयाः

होता तू पीपल मैं होती अमरलता तेरी,
तेरे गले माला बनकर पड़ी मुस्काती रे।
सुन मेरे साथी रे। सुनो मेरे बंधु रे ए ए...

क्या वह अमरबेल जैसी इन बाहों के लिए पीपल जैसा सहारा बन सकता है? शायद नहीं। पीपल कश्मीर से बाहर ही उगता और बढ़ता है। कश्मीर से बाहर रहते अब उसे इतना समय हो गया। लेकिन अब भी उसके लिए वहां उगने वाले अधिकतर पेड़ अनचिन्हे ही हैं। हां बड़ और पीपल के बारे में उसने यहां कश्मीर में पहले ही बहुत कुछ पढ़ा सुना था। वह समझ बैठा था कि ये दोनों नाम उसी एक पेड़ के होंगे, जिसका धार्मिक महत्त्व भी है। जड़ों के साथ जुड़ी जटाओं वाले वृक्ष को वह कभी बड़ कहता था और कभी पीपल। लेकिन दिल्ली में तीन चार महीने रहने के बाद ही उसे पता चला कि ये दोनों वृक्ष अलग-अलग हैं। जटाएं बड़ की पहचान है और हिलते-कांपते पत्ते पीपल की। उसने घुटन भरे मौसम में, जब कहीं से हवा का एक झोंका तक नहीं आता है, पीपल के पत्तों को हौले-हौले हिलते देखा है। मानों वे टहनियों पर धागें से लटक रहे हों। अशोक को गंगा होटल में गोकुल पाण्डेय का गाया कबीर का एक पद अनायास याद आयाः

पीपल पात सारिख मन डोला

अमरलता बसंती के लिए पीपल बन जाना उसका सौभाग्य ही होगा। मगर क्या यह हो सकता है? उसका मन पीपल के पत्ते की तरह कांप रहा है।

बसंती कब की उठकर नीरजा के साथ कमरे से बाहर चली गई थी।

शांता आंगन में खड़ी तीसरी मंजिल की खिड़कियों से लटकती बैंगन, हरे मिर्चों और लाल मिर्चों की मालाओं को ध्यान से देख रही थी। अगर सात आठ दिन और ऐसे ही धूप रही तो मिर्च और बैंगन लौकी की फांक पूरी तरह पक कर जाड़े में इस्तेमाल के काबिल बन जाएंगी। वैसे भी लौकी की फांकों के दो फांकें पहले ही पक गई है और अगर मोहनकृष्ण को बाज़ार से सब्जी न भी मिले तो भी एक दो दिन गुजारा चल सकता है। अचानक उसे दूर से अजीब-सी आवाजें सुनाई दी। कुछ देर बाद घबराया हुआ मोहनकृष्ण झोले में किलो भर गांठगोभी और कमल ककड़ी की एक छोटी सी गट्ठी लेकर लौटा। आंगन में दाखिल होते ही उसने बाहर के दरवाज़े की सांकल चढ़ा ली।

"क्या बात है?" शांता ने पूछा।

"एक बहुत बड़ा जुलूस टंकीपूरा की ओर से आ रहा है। दुकानदारों ने पहले ही दुकानें बंद करनी शुरू की थी। मुश्किल से यह गली सड़ी सब्जी मिली।" मोहनकृष्ण ने झोला शांता को थमाते हुए कहा।

अस्पष्ट आवाज़ें शोर में बदलने लगीं। जुलूस धीरे-धीरे नज़दीक आने लगा। गला फाड़ कर निकले नारों के शोर और ज़ोर से सारा मुहल्ला कांपने लगा। जैसे भूकम्प आया हो, अशोक, नीरजा और बसंती दौड़कर सीढ़ियां उतरे हतप्रभ से आंगन में खड़े हो गए। शांता की छाती धक-धक करने लगी। बसंती अवाक् होकर भयातुर दृष्टि से कभी नीरज़ा कभी शांता और कभी अशोक की ओर देखने लगी। अशोक अपनी आंखों से जुलूस देखने के लिए गली की ओर लपका। मोहनकृष्ण ने उसे रोका और खुद बंद दरवाज़े की ओट से जुलूस में लगाए जाने वाले नारों की आवाज़ गौर से सुनने लगा। नारे कुल चार थे। दो नारे "नारा-ए-तकबी : अल्लाह अकबर "के साथ दो नए थे– "खून का बदला खून से लेंगे और "ला शर्किया ला गर्बिया : इसलामिया इसलामिया"।

मोहनकृष्ण अरबी भाषा का अलफ़ बे भी नहीं जानता था फिर भी देशकाल के प्रभाव से उसे आखिरी नारे के अर्थ का अनुमान लगाने में कोई कठिनाई नहीं हुई, न ही पूर्वी न ही पश्चिमी, केवल इसलामी केवल इसलामी-तालीम, तहज़ीव, रिवायत, सियासत, हुकूमत सब कुछ।

जुलूस अभी गली के सामने से गुज़र ही रहा था कि उनके और पड़ोसी राज़दानों के घरों पर पथराव होने लगा। छोटी बड़ी ईंटें और पत्थर ठनाके के साथ टीन की छतों से टकराने लगे और फिर ठनठन आवाज़ से लुढ़क कर आंगन में बरसने लगे।

बसंती रोने लगी–"मैं घर वापस कैसे जाऊंगी।"

"मै। साथ चलूंगा।" अशोक ने कहा—"नाव में व्यथ पार करके बरबरशाह और खैयाम सिनेमा का रास्ता लेंगे।"

"नहीं, बसंती बेटी यहीं रहोगी।" शांता ने अशोक की बात को बीच में ही काटकर थरथर्राती सुबुकती लड़की को गले से लगाया और उसे ढ़ाढ़स बंधाया—"बेटी, यह भी तुम्हारा ही घर है। इसे पराया मत समझो।"

"वहां प्यारी और पापा परेशान हो जाएंगे।"

"तू उसकी फिक्र मत कर। तेरे पड़ोस में किसी के घर में फोन है?" मोहनकृष्ण ने बसंती की समस्या का समाधान सोच रखा था।

"हां। मुहम्मद अशरफ वानी के घर में है जो फॉरेस्ट डिपार्टमेंट में रेंज ऑफिसर है।"

"किसी हिन्दू के घर में नहीं?" शांता ने पूछा। बसंती ने इन्कार में सिर हिलाया।

"कोई बात नहीं। जुलूस को गुज़र जाने दो। मैं सड़क पार कर के डॉक्टर के यहां से वानी साहब के घर फोन कर के जानकीनाथ जी को खबर कर दूंगा कि वांचू तुम यहां ठिक-ठाक हो।"

जाने कहां से उछाला गया एक और पत्थर टीन की छत से टकराया। पांचो व्यक्ति घर के भीतर चले गए।

पन्द्रह बीस मिनट में सारा जुलूस गुज़र गया। शोर थम गया मगर साथ ही एक ऐसा सन्नाटा छा गया जो शोर से कहीं अधिक भयावह था। मोहनकृष्ण ने बसंती से मुहम्मद अशरफ़ वानी का फोन नम्बर लिया और धीरे से आंगन का दरवाज़ा खोलकर गली में आया। गली के मुहाने पर पहुंच कर उसने देखा कि बंद दुकानों के सामने जहां-तहां टोलियों में खड़े लोग आपस में फुसफुसा रहे हैं। तेज़ कदमों से बाजार लांघकर वह दूसरी ओर की गलियां पार करता हुआ डॉक्टर वांचू के घर पहुंच गया।

रैनवारी फोन करके जब मोहनकृष्ण घर लौटा तो तीन बज गए थे। इस बीच शांता खाना बना चुकी थी। शहर में गड़बड़ी के कारण मीट पनीर कहां से आता? फिर भी शांता ने बसंती के लिए खासतौर पर गांठ गोभी का रोगन जोश बनाया था और कमल ककड़ी की चुरमुरी कतलियां तली थी। खाना खाने के बाद अशोक को छोड़ बाकी सभी नमकीन गुलाबी शीर चाय पी ही रहे थे कि बिजली चली गई। नीरजा ने घड़ी पर नजर डाली। चार बज गए थे। उसे याद आया कि आज बुधवार है। अर्थात् इस इलाके की "बारी" है और अब बिजली बारह घंटे के बाद कल सुबह चार बजे ही आएगी।

"इसीलिए तो मैं टी.वी. नहीं लाता।" मोहनकृष्ण ने नीरजा से कहा जिसने कई बार उससे टी.वी. खरीदने का आग्रह किया था।

नीरजा चुप रही। बसंती बोली—"हमारे पास छोटा ब्लैक एंड व्हाइट टी.वी. है। बिजली चली जाती है तो वह बैटरी से चलता है।"

"हमारी बुआजी के यहां बड़ा कलर टी.वी. है। बिजली चली जाने की सूरत में सिर्फ वह टी.वी. ही नहीं, उनके पंखे और प्रिफज भी चलते हैं और दो कमरों में ट्यूब लाइट भी जलती है। उनके पास इन्वर्टर जो है।" नीरजा ने कहा।

"महाराजा हरिसिंह के पास अपना हवाई जहाज भी था।" कहने को तो मोहनकृष्ण ने जलभुन कर ये शब्द कह ही डाले। लेकिन भीतर ही भीतर वह तर्क युद्ध में इन दो लड़कियों के आगे अपने हथियार डाल चुका था। उसकी मत मारी गई थी जो व्यर्थ में टी.वी. की बात छेड़ कर खुद ही अपने को दूसरों से कमतर साबित किया था। अपनी झेंप मिटाने के लिए वह पड़ोसी हीरालाल के घर उसके साथ "हालात-ए-हाजिरा" पर तबस्सरा करने के लिए चला गया।

शांता भी उठकर रसोई में चली गई। उसने बरतनों के ढक्कन उठाकर देखा। दोपहर का बना भात इतना बच गया था कि रात के खाने के लिए मोहनकृष्ण और बसंती के लिए ही डेढ़ दो कप चावलों से पीच निकालनी पड़ती। नई सब्जी बनाने की तो कोई ज़रूरत ही नहीं थी। शांता ने बचे भात के दो एक दानों को अंगूठे और उंगली के बीच मसलकर देखा। भात अब भी रूई की तरह नर्म था। उसने उसे गर्म रखने के लिए ऊन की एक पुरानी लोई से ढक लिया।

मोहनकृष्ण जब घर लौटा तो घुप्प अंधेरा छा गया था। घर वाले रसोई के साथ वाले कमरे में ही बीच में मोमबत्ती जलाए बैठे थे। शांता बसंती से उसके अनेक रिश्तेदारों के बारे में पूछ रही थी। नीरजा मां की इन बिना मतलब की बातों से चिढ़ रही थी। वह जानती थी कि बसंती और अशोक दोनों मां की बातों का बुरा मान रहे होंगे। मगर बसंती शांता की बातें ध्यान और चाव से सुन रही थी और मुस्कुरा कर उसके सवालों का जवाब दे रही थी। अशोक शायद कुछ नहीं सुन रहा था। वह मोमबत्ती की रोशनी से कमरे में मौजूद व्यक्तियों और वस्तुओं की दीवारों पर बनी छाया आकृतियों को गौर से देख रहा था। सर्वव्यापी अंधकार के मध्य क्षीण कांपती रोशनी से प्रसूत थे आकृतियां डरावने रूप से हिलकर आतंक का अजीब समां बांध रही थीं। वह सोच रहा था कि प्रकाश का काम ही अंधकार का नाश है। लेकिन जब वह खुद ही कांप रहा हो तो निरंकुश छायाओं का आतंक-तांडव अनहोनी या आश्चर्य की बात नहीं है। थोड़ी देर बाद अशोक दीवारों पर ऊधम मचाती छायाओं से नजरे हटाकर

क्षीण रोशनी में भी दमकते बसंती के "प्रोफाइल" और शांता की बातों का जवाब देते समय उसके थिरकते होठों को एक टक देख ही रहा था कि अचानक कड़कती चटकती आवाज के साथ कांच के टुकड़े कमरे में इधर-उधर छितरा गए। किसी ने खिड़की के शीशे को चकनाचूर कर दिया था। कुछ समय तक हक्का-बक्का होकर एक-दूसरे की ओर देखने के बाद जब घर वाले संभले, तो उन्होंने बसंती को हाथों से अपनी दाहिनी पिंडली दबाते हुए पाया। कांच के टुकड़े ने उसके मांस को चीर डाला था और वहां से खून बह रहा था। कुछ क्षण तक सभी हतबुद्धि होकर मौन बैठे रहे। अशोक उठकर ऊपर वाली मंजिल में चला गया और दो तीन मिनट के बाद ही डेटॉल की बोतल, एंटी सेप्टिक पाउडर का ट्यूब और कॉटन वूल लेकर लौटा। उसने बसंती के घाव को पहले डेटॉल से साफ किया। फिर उस पर पाउडर छिड़क कर रूई से ढका और अंत में घाव पर अजीब-सी सिरहन महसूस की। वह नहीं समझ सका कि इस सिरहन का कारण घाव से बहते खून का वीभत्स दृश्य था या यह जवान लड़की की नंगी पिंडली और जांघ के स्पर्श का पहला अनुभव था।

मोहनकृष्ण कुछ देर परेशानी से बसंती के घाव को देखता रहा। जब उसे पूरा विश्वास हुआ कि खून का आना बंद हो गया है तो उसने शांता से कहा-- "अब कोई डर नहीं है। फिर भी कल सुबह डॉक्टर वांचू से चॅकअप कराएंगे। वही एंटी टेटनेस इंजेक्शन भी लगाएगा और भगवान न करें, अगर उससे पहले ही कोई प्राबिलम हो गई तो उसी वक्त उसी के पास ले जाएंगे। क्यों, तुम्हारी क्या राय है?"

लेकिन शांता ने शायद उसका एक शब्द भी नहीं सुना था। वह सोच रही थी कि अशोक को इस अंधेरे में भी इतनी जल्दी डेटॉल की बोतल, घाव पर छिड़कने की दवाई और डॉक्टरी रूई कैसे मिली?

(4)

लाउड स्पीकर पर मुल्ला की बांग सुनते ही रमज़ान जू ने बिस्तर छोड़ा। रजाई के नीचे चित लेटकर या बीच-बीच में करवट बदल कर वह असल में सारी रात जागता ही रहा था। मोज़िन के अज़ान ने जैसे उसे बिस्तर में पड़े-पड़े तड़पने के अजाब से नजात दिलाई। बिस्तर से बाहर आकर उसने देखा कि जून, जिसकी तीखी बातों की चोटों से उसका सिर अभी तक भन्ना रहा था, बिना किसी परेशानी या गुस्से के मस्त सोई पड़ी है।

लाउड स्पीकर से अज़ान की आवाज़ आने का साफ मतलब था कि इलाके में इस वक्त बिजली है। मगर रमज़ान ने लाइट का स्विच दबाना ज़रूरी नहीं

समझा। वह चुपचाप कमरे से निकल कर नीचे बैतुल्खुल्ला में गया और हाजत रफ होकर वापस अपने कमरे में आया। उसने इज़ार बदला लेकिन रात को पहनी कमीज के ऊपर ही फिरन डाला और मस्जिद की ओर चल पड़ा।

कल का दिन रमज़ान जू के लिए बहुत ही मनहूस रहा था। दिन भर सड़कों गलियों में जो हंगामा रहा था उससे कहीं बड़ा हंगामा जून ने घर में ही खड़ा किया था। फारूक पूरे दिन जाने कहां-कहां घूमकर देर रात को घर लौटा तो रमज़ान ने उससे सिर्फ इतना कहा था कि अगर इसी तरह दर-बदर घूमते रहे तो तीसरी बार भी बारहवीं में फेल हो जाओगे। न कोई पढ़ाई करते हो और न ही कभी दुकान पर बैठते हो। फारूक खामोश रहा था। लेकिन जून की बात लग गई थी और पागल कुत्तिया की तरह सारी रात भौंकती रही थी। क्यों बैठेगा मेरा बेटा तेरी दुकान पर? तेरी दुकान बशीर की' तेरी दौलत बशीर की। यह बदनसीब मां का बेटा क्यों मुफ्त में फालिज ज़द आदमी की तरह दुकान की दो फुट जगह में दिन भर सिमटा सिकुड़ा बैठा रहेगा? रमज़ान जू झोंटा पकड़ कर और दो चार तगड़े झापड़ जमा कर जून को सीधा कर सकता था। मगर उसने ऐसा नहीं किया। उसने पागल कुत्तिया को लात मारने से ज्यादा बेहतर उससे बचकर रहना ही समझा था। रमज़ान हैरान था कि जून अच्छे घर की थी। बशीर की मां सुंदरी की तरह कमीने कमज़ात मां-बाप की बेटी नहीं थी और उसके ही पड़ोसी उस लस्सा गुजरी से दिल खोलकर हंसी मज़ाक करते और आंखें लड़ाते रहते थे जो बस नाम का गुजरी था और काम हमाल का करके दिन भर घाट से लोगों के घरों तक चावल और धान की बोरियां ढोकर चार पैसे कमाता था। सुंदरी की बदमिज़ाज़ी, बदतमीज़ी और बेवफाई को देखते हुए रमज़ान उसे जूते देकर घर से निकाल सकता था और उसे ताशवान के किसी कोठे पर बिठा सकता था। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। बल्कि शरीयत की हद में रहकर ही उसे तलाक दे दिया। एक महीने के अंदर ही रमज़ान जू जून को निकाह करके ले आया और उधर दो महीने के बाद सुंदरी बा ज़ाब्ता लस्सा गुजरी के घर में रहने लगी।

आज रमज़ान जू को लगता है कि सुंदरी और लस्सा गुजरी दोनों को अल्लाह ताला ने एक-दूसरे के लिए ही बनाया था। कोई सुबह नहीं गुजरती जब घर के आंगन में लस्सा लातों घूसों और लाठी से सुंदरी की पिटाई धुनाई नहीं करता और कोई दोपहरी नहीं बीतती जब सुंदरी आंगन के बाहर गली में हाथ उठा-उठा कर लस्सा को ही नहीं, उसी की सात पीढ़ियों को भी खून की कै और सारे जिस्म में कीड़े पड़ने की बद्दुआ नहीं देती। लेकिन शाम होने पर जब लस्सा घर लौटता तो उनके घर से गालियों और मसाले की महक सारे मुहल्ले

में फैल जाती। रमज़ान के साथ रहते सुंदरी ने तीन साल में एक बशीर को जना था। लेकिन लस्सा की घरवाली बनने के बाद उसने साढ़े तीन साल में चार बच्चे जन्मे थे। तीन लड़के और एक लड़की।

रमज़ान जू जब मस्जिद से निमाज पढ़कर निकला तो उसके दिल की सारी परेशानी और दिमाग की सारी उलझन दूर हो गई थी। अल्लाह रहमान भी है और रहीम भी। इसलिए बंदे को भी अपने दिल में गुस्से और नफरत को नहीं, रहम और हमदर्दी को जगह देनी चाहिए। अगर फारूक का दिल पढ़ाई में नहीं लगता तो इसका मतलब यह नहीं कि वह नालायक है। पंडित मां-बाप को ही बच्चों के पढ़ाई में पीछे रहने पर उनका मुस्तकबिल तारीक नजर आता है। मुसलमान अगर अपने दोनों हाथों में सही काम ले तो मिट्टी को सोने में बदल सकता है। अगर जून ने यह कहा कि फारूक को दुकान पर बैठकर दूध दही बेचना पसंद नहीं तो कोई गलत बात भी नहीं कही थी। असल में वह रमज़ान की ही बेवकूफी थी कि उसने जीन जैकेट पहनने वाले फारूक से वही कुछ करने की उम्मीद रखी थी जो पायजमा और फिरन पहनने वाला बशीर करता था। भूल (Very Important) जून या फारूक की नहीं, उसकी अपनी थी और वह खुद ही इसे सुधारेगा। खुद ही और आज ही।

आज भी रमज़ान मस्जिद से सीधे दुकान पर आया लेकिन वहां रुका नहीं। बशीर को अपना इरादा बताकर और कुछ ज़रूरी हिदायतें देकर वह घर लौटा आया। दो प्याली गुलाबी नमकीन चाय पीकर और दो गर्म-गर्म लवासे खाकर नाश्ता किया और फारूक को साथ लेकर अब्दुल सलाम के बेटों से मिलने लाल बाज़ार चला गया।

जन्नती अब्दुल सलाम के साथ रमज़ान जू की पुरानी जान-पहचान और अच्छे तालुकात थे। इतना काबिल और मेहनती आदमी था कि शाली स्टोर में काम करने के साथ-साथ और भी बहुत सारे काम करता था। उसके पास पाउडर मिल्क बनाने वाली अमृतसर की एक बड़ी कम्पनी की एजेंसी भी थी जिसके माल के लिए वह श्रीनगर ही नहीं, बड़गाम और पुलवामा के शीर' फरोशों के आर्डर भी बुक करता था। रमज़ान जू के साथ शुरू में उसकी जान-पहचान और बाद में दोस्ती भी इसी सिलसिले में हुई थी।

अब्दुल सलाम ने रहमत हक़ होने से महीना भर पहले ही लाल बाज़ार में अपने चौमंजिला मकान के सामने बर-लब सड़क पर एक दुमंजिला आउट हाउस बनवाया था। ऊपर की मंजिल में बड़ा-सा दीवान खाना था और निचली मंजिल में दो दुकानें। दीवान खाने तक जाने के लिए सीढ़ियां बाहरी सड़क से शुरू होती थी। इसलिए गैर और अजनबी लोगों को कारोबार या किसी और सिलसिले में

अब्दुल सलाम या उसके लड़कों से पिछले दीवान खाने में जाने के लिए घर के आंगन से होकर गुजरना नहीं पड़ता था। पर्दापोशी और शराफ़त की जबरदस्त हिमायती होने की वजह से उसने इस बात का खास ख्याल रखा था। इसी नेक सीरत और परहेज़गार शख़्स ने अपने लड़कों के सामने रमज़ान जू से वादा किया था कि निचली मंजिल की दो दुकानों में से एक उसे देगा और वाज़िब किराए से एक पैसा भी ज्यादा नहीं लेगा। साथ ही राज़ की यह बात भी बताई थी कि नवदौलतियों की यह बस्ती नई-नई आबाद हुई है और यहां फैंसी कपड़ों, सैंडलों, पर्से या क्रीम पाउडर लिपस्टिक की दुकान खूब चल सकती है। बिल्डिंग मैटीरियल, सैनेटरी फिटिंग या हार्डवेयर की दुकान में भी काफी मुनाफा है। समझदार लोगों ने पहले ही ऐसी दर्जनों दुकानें खोल रखी हैं।

रमज़ान जू जानता था कि आजकल बसों, मैटाडोर या ऑटो रिक्शाओं का कोई भरोसा नहीं है। क्या पता किस दिन और किस वक़्त उन्हें अचानक हड़ताल करने पर मज़बूर किया जाए। इसीलिए वह फारूक को लेकर ऋषि मुहल्ला घाट से आली कदल तक नाव में और फिर वहां से लाल बाजार तक पैदल चला गया। फारूक शायद ही कभी इस तरह व्यथ के रास्ते शहर के एक हिस्से तक गया हो। खुद रमज़ान जू को भी आज कोई बीस-पच्चीस बरस के बाद दरियाई सफर करने का यह मौका मिला था। बुढ़ापे में ही शायद बीती बातों की अक्सर याद आती है। रमजान जू हल्की सी आह भर कर सोचने लगा। एक जमाना वह भी था जब कश्मीर की सारी आमदरफ्त, सारा कारोबार दरियाए जेहलम मतलब इसी व्यथ के रास्ते होता था। जनूब मशरिक में खनबल में अंतनाग से लेकर शुमाल मगरिब में खदिनयार बारामुल्ला तक व्यथ में बस नावें चलती थी और वादी में आमदरफ्त का कोई दूसरा ज़रिया नज़र नहीं आता था। इतना ही नहीं। घरों में पानी भी इसी व्यथ से आता था और इसी में लोग नहाते धोते थे। पंडित पितरों का तर्पण भी करते थे और मुसलमान निमाज़ से पहले तहारत भी करते थे। अपनी जवानी के दिनों में रमज़ान भी गर्मियों के दिनों व्यथ में ही नहाता और तैरता था। अपने घाट से उस पर दीवान बदरीनाथ के मकान तक तैरने में उसे कुछ मिनट लगते थे। वहां घड़ी भर सुस्ताने के बाद वह तैर कर वापस अपने घाट पर आता था। कई बार तो वह उस पार किनारे को छूता भर था और उसी लमहें उलटे तैरते हुए वापस अपने घाट पर आकर पानी से बाहर निकलता था। उन दिनों व्यथ आज की तरह संकरी नहीं थी। उसका पाट काफी चौड़ा था। किनारों पर भी काफी चहल-पहल रहती थी। खुदा नज़ात दे, अगर कभी कोई वारदात हो जाती तो उसी वक़्त किनारों पर लोग जमा हो जाते और डूंगों में रहने वाले हांजी फौरन पानी में डुबकी

लगा कर डूबने वाले को बचा लेते। आज तो दरिया और उसके किनारों पर सन्नाटा छाया था। सोमयार घाट पर एक अकेला साधू बाबा जी आँखें मूंद अपने ढंग से इबादत में खोया रहता था और पुरुषयार घाट पर दर्जन भर पंडित किसी मरे हुए रिश्तेदार का दसवें दिन का श्राद्ध करते रहते थे। रमज़ान जू के दिमाग में एक अजीब से बदशकुन ने सिर उठाया। उसे लगा कि दिन ब दिन सूखती सिकुड़ती व्यथ की हालत भी जल्द ही कुट कुलिया नाले जैसी होने वाली है जिसे आज पैदल चलकर पार किया जा सकता है और शायद वह दिन दूर नहीं जब पंडितों को व्यथ के नाम पर बचे किसी उथले गड्ढे में सदियों से ऋषि वाटिका कश्मीर को सैराब करने वाली इसी नदी के दसवें दिन का श्राद्ध मनमाना और मुसलमानों को इसी के सूखे तल पर सतरंजी बिछा कर इसका फातेह पढ़ना होगा।

आली कदल में ऋषि पीर के घाट पर नाव से उतरकर रमज़ान और फारूक पैदल ही लाल बाजार तक चले गए। रास्ते में बाप ने बेटे को यहां तक आने का असली मकसद समझाया। उसे बताया कि जो दुकान वह इस इलाके में खोलने की सोच रहा है वह सिर्फ उसी की होगी। बशीर का उसमें कोई हिस्सा नहीं होगा। उस दुकान में उसे दूध के चौड़े बरतनों से घिरे लकड़ी के तंग और नंगे फर्श पर पालथी मार के बैठना नहीं होगा। वहां उसके बैठने के लिए काउंटर के साथ गद्देदार कुर्सी लगी होगी। सारा माल फर्श पर नहीं दीवार से लगे रैकों में करीने से सजा होगा। वह दुकान में रेडियो ही नहीं, छोटा टी.वी. भी फिट कर सकता है। जब दुकान में कोई खरीदार न हो तो वह मज़े से टी.वी. पर फिल्म या मैच देख सकता है और उसके खरीदार भी हब्बा कदल, कनि कदल के फर्टीचर छोकरे जवान या फटेहाल बूढ़े खूसट नहीं, ऊँचे ओहदेदार अफसरों और दौलतमंद ताजरों की चांद जैसी हसीन और फूल जैसी नाजूक बीवियां-बेटियां होगी।

इतना कह कर रमज़ान जू ने कनखी से फारूक पर नज़र डाली। बाप की बात सुनकर उसके भिंचे कुम्हलाए होठों पर मुस्कुराहट की हलकी तरल रेखा खिल उठी थी। रमज़ान समझ गया कि उसका आखिरी तीर ठीक निशाने पर लगा है।

अब्दुल सलाम की चौमंजिला हवेली और उसके सामने बने दुमंजिला आउट हाऊस के पास पहुंचकर रमज़ान जू ने फारूक से पूछा.... "ज़रा पढ़ लो दीवान खाने की ढोढ़ी के ऊपर क्या लिखा है?"

फारूक क्या पढ़ता? उसने शर्मिंदा होकर नज़रें झुका ली।

"लिखा है "हाज़ा मिन फज़िलि रबी।" इसके माने जानते हो? नहीं जानते? कितनी बार समझाया कि पड़ोस के किसी मदरसे में एक-दो घंटे रोज़ बैठकर कुरान शरीफ पढ़ा करो अरबी सीखा करो। लेकिन तुम्हें यार-दोस्तों के साथ

सिनेमा-टी.वी. देखने या कमेंटरी सुनने से फुर्सत ही कब मिलती है। "हाज़ा मिन फज़िलि रबी" के माने हैं— यह जो है, मेरे रब के फज़ल से है। अब्दुल सलाम को अल्लाह जन्नत अता करे, उसने यह मकान, यह दीवान खाना, ये दुकानें, इतना बड़ा कारोबार, यह सब अपनी मेहनत से हासिल किया। लेकिन वह इसका सिला अपने आपको नहीं, अपने रब को देता है। इसे ही कहते हैं अल्लाह के फज़ल, उसकी बरकत और रहमत पर मुकम्मल ऐतमाद होना जो एक मुसलमान के लिए लाजिमी है। मुसलमान के लिए ही नहीं, बल्कि किसी भी दीन को मानने वाले हर बंदे के लिए ज़रूरी है।"

अपनी बात का असर जानने के लिए रमज़ान जू ने फारूक की ओर नज़र डाली लेकिन वह न तो उसकी तरफ और न ही संगमरमर की सिल पर खुदी अरबी की इबारत को ही देख रहा था जिसकी तारीफ उसका बाप कर रहा था। उसकी नज़रे सामने खाली पड़े डेढ़ दो कनाल प्लाट की ओर लगी थीं जहां आठ दस लड़के क्रिकेट खेल रहे थे। उन्होंने पतलून शर्ट या जीन जैकेट जैसे अंग्रजी कपड़ें ही पहने थे। लेकिन उनके बीच काली शीरवानी और सुरमई कराकुली टोपी पहने, मेंहदी से रंगी शरअई दाढ़ी वाला आदमी भी था जिसकी उम्र चालीस के आसपास लगती थी। रमज़ान जू समझ नहीं पाया कि यह आदमी कौन है और सींग कटाकर बछड़ों में शामिल होकर क्या कर रहा है?

बॉलर की गेंदबाजी और बैट्समैन की हिटों का मज़ा ले रहे फारूक को देखकर बाउंडरी पर फील्डिंग करने वाले एक लड़के ने उसके निकट जाकर उसे दावत दी—"खेलोगे?"

फारूक ने उसे कोई जवाब देने के बजाय रमज़ान जू से कहा—"बाबा, आप बड़े लोगों के बीच में बैठकर मैं क्या करूंगा? जो भी करना होगा, आप लोगों को करना है। मैं छोटा आपकी बातों में दखल कैसे दे सकता हूं?"

रमज़ान जू को उम्मीद नहीं थी कि लफ्ज़ों के तिरछे तीर चलाने में उसका बेटा उसका भी बाप निकलेगा। वैसे फारूक ने माकूल बात ही कही थी जिसे गलत करार देकर रद्द नहीं किया जा सकता था। वह कुछ तय नहीं कर पा रहा था कि फारूक को क्या जवाब दे। उसने क्रिकेट खेलने वाले लड़कों और उनके खेल में मदद या मुदाख्लत करने वाले शीरवानी कराकुली पहने शख्स की ओर एक बार फिर नज़र डाली। तभी अल्लाह ने अपना करिश्मा दिखाया। उस शख्स ने रमज़ान जू को पहचान लिया और मुस्कुराता हुआ उसकी ओर आने लगा।

"असलाम एलेकुम मुहम्मद रमज़ान साहब।" उसने निकट आकर रमज़ान जू को सलाम किया।

रमज़ान जू ने जवाब में उसे "एलेकुम सलाम" कहा। लेकिन अनुमान नहीं लगा सका कि यह आदमी कौन है?

"आपने शायद मुझे पहचाना। मैं अब्दुल सलाम मरहूक का बड़ा लड़का अब्दुल रशीद हूं।" उस आदमी ने खुद अपना परिचय दिया।

रमज़ान जू ने उसे गले लगाया और उसके भाईयों और वालिदा का हाल पूछा।

"अल्लाह के फज़ल से सब खैरियत से है। मुझ से छोटा भाई अब्दुल मजीद स्टेट हॉस्पीटल में काम करने के साथ-साथ आजकल एम.डी. की तैयारी भी कर रहा है। सबसे छोटा भाई अब्दुल कयूम बी. कॉम. फस्ट इयर में पढ़ता है और इस वक़्त इन लड़कों के साथ वह भी क्रिकेट खेल रहा है। वालिदा वैसे ठीक है लेकिन ब्लड प्रेशर की पुरानी मरीज़ होने की वज़ह से उसके बारे में परेशानी रहती है। करें क्या, डॉक्टर मजीद के बार-बार कहने पर भी वह नमकीन चाय पीना शुरू तक नहीं करती।"

"कयूम साहब भी क्रिकेट खेल रहा है?" फारूक ने अब्दुल रशीद से पूछा, लेकिन जवाब पाने के लिए रमज़ान जू की ओर देखा।

रमज़ान जू ने फारूक से कुछ न कहकर अपने शक और झिझक का इज़िहार अब्दुल रशीद से किया– "अगर हमारे लड़के दिनभर खेलते रहेंगे तो पढ़ाई कब करेंगे?"

"खेल-कूद जिस्मानी सेहत के लिए बहुत ज़रूरी है।"

"लेकिन उससे भी ज़रूरी..."

"इखलाकी तालीम है।" रशीद ने रमज़ान की बात को बीच में ही काटकर कहा–"लेकिन हमने उस तरफ भी तवज्जेह दी है। यह क्रिकेट का खेल छुट्टी के दिन सुबह नौ बजे से दिन के एक बजे तक चलता है और फिर उसी दिन चार बजे से शाम के छः बजे तक इन लड़कों को इखलाकी और दीनी तालीम दी जाती है। कुरान शरीफ पढ़ाया जाता है। हदीस मुबारक और इस्लामी तारीख से रोशनास किया जाता है।"

"यह अहम और नेक काम कौन करता है?' रमज़ान जू ने गदगद होकर पूछा।

"अल्लाह का एक बंदा जो इस वक़्त आपके सामने खड़ा है।" अब्दुल रशीद ने मुस्कुराकर कहा।

रमज़ान जू ने उसका हाथ चूमकर उसे गले से लगाया और दिल में सोचा कि अगर दुकान के बारे में सौदा तय हो जाता तो फारूक भी इस खुदा परस्त और दीनदार की सोहबत में हीरा बन जाता।

"आपने यहां आने की तकलीफ की, इसके लिए मैं आपका ममनूं हूं। हमारे वालिद मरहूम आपकी बहुत इज्जत करते थे। कहिए, मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूं?" अब्दुल रशीद ने बड़ी इन्किसारी से कहा।

"असल में मैं अपने इस बेटे के मुस्तकबिल के बारे में परेशान हूं। आपके दीवानखाने के नीचे जो दुकानें हैं, उनमें से अगर आप एक दुकान इसके लिए भी किराए पर दे सकते तो मैं आपका शुक्रगुजार रहता।"

"ये तो कारोबारी बातें हैं जिन्हें आप और मैं दीवानखाने में बैठकर तय करेंगे। यह बच्चा वहां क्या करेगा? इसे इन दूसरे बच्चों के साथ खेलने दीजिए।"

रशीद साहब की बात सुनकर फारूक की बाछें खिल गई। अब उसका बाप उसे इन लड़को के साथ क्रिकेट खेलने से नहीं रोक सकता। उसका अंदाज़ा ग़लत नहीं था। रमज़ान जू ने मुस्कुराकर उसे साथ वाले खाली प्लाट में खेलने की इज़ाजत दे दी।

दीवानखाने में अब्दुल रशीद के साथ दुकान के किराए के मुतअलक सौदा करते रमज़ान जू को लगा कि वह किसी दूसरे शख़्स के साथ बात कर रहा है। रशीद ने दो टूक अलफाज में उससे कहा–"देखिए, आप मुझसे बड़े हैं। मेरे वालिद साहब के दोस्त हैं। इसलिए मैं आपकी इज्जत करता हूं। लेकिन कारोबार के मामले में दोनों फरीक बराबर होते हैं। फिर भी मैं आपका लिहाज करता हूं। दुकानों के अंदरूनी पलस्तर का काम एक हफ्ते तक पूरा हो जाएगा। कई लोग मेरे पास आए जो किराए के अलावा एक-एक दुकान के लिए एक-एक लाख की "मिठाई" देने के लिए तैयार है। लेकिन मैं आपसे कोई मिठाई नहीं लूंगा। हां, आपने एक साल का किराया पेशगी देना होगा।

"और हर महीने उसी रकम से एक-एक हजार रुपया किराए के तौर पर कटेगा।" रमज़ान ने रशीद की शर्त को समझने की कोशिश की।

"नहीं, किराया हर महीने आपको अलग से देना होगा। वह बारह हजार की रकम ज़मानत के तौर पर मेरे पास महफूज रहेगी। तब साल, दो साल, दस साल के बाद आप दुकान खाली करेंगे तो आपको वो रुपए वापस मिलेंगे।

"कितने रुपये?" रमज़ान जू ने पूछा।

"अपने बारह हजार और कितने?"

"लेकिन इस मुद्दत के दौरान उन पर जो सूद..."

"लाहौल वल्लाह...।" अब्दुल रशीद गुस्से और नफरत से मुंह बिचकाकर खड़ा हो गया। उसने रमज़ान जू को अपनी बात पूरी करने नहीं दी– "आप मुसलमान होकर भी सूद की बात करते हैं जो अहले इस्लाम के लिए नाजायज़ और हराम है।" फिर चेहरे की मांसपेशियों को कुछ ढीला और आवाज को थोड़ा मुलायम करके बोला– "लेकिन कसूर आपका नहीं, आपके मुहल्ले का है जहां ज्यादातर गैर मुस्लिम पंडित लोग ही रहते हैं। आप पर उनका असर पड़ना कुदरती है।"

"वो बेचारे बुरे नहीं हैं।" रमज़ान जू ने जैसे गैर मुस्लिम पंडितों की सफाई देकर अपनी सफाई भी दी।

"मैंने कब कहा वो बुरे हैं? मैं उन्हें काफिर भी नहीं मानता क्योंकि वो खुदा को मानते हैं। लेकिन एक खुदा के इलावा वो सैकड़ों देवी-देवताओं, गायों और बंदरों, पेड़ों और पत्थरों की भी पूजा करते हैं। इसलिए मैं उन्हें मुश्रिक कहता हूं जो इबादत में एक अल्लाह के साथ दूसरों को भी शरीक करते हैं तो कुफ्र से कम गुनाह नहीं है। कयामत के रोज़ अल्लाह उन्हें नहीं बख्शेगा।"

"लेकिन वो भी रब को याद करते हुए कहते हैं अल्लाह ईश्वर तेरे नाम या राम कहो या रहीम कहो दोनों की गर्ज़ अल्लाह से है।"

"यही तो शर्क है। अल्लाह उस रब-उल-आलमीन का इस्म ज़ात है जिसे ईश्वर नाम से पुकारा नहीं जा सकता। हां, कोई चाहे तो वह अपने राम को रहीम कह सकता है। क्योंकि रहीम उस रब का इस्म-सिफत है।"

रमज़ान जू की समझ में कुछ नहीं आया। उसने मसले को तूल न देने की नीयत से कहा—"खैर जो भी है, हम और वो सदियों से साथ रहते आए हैं। वो भी हमारे ही भाई हैं।"

"नहीं, वो हमारे भाई नहीं हैं।" रशीद का चेहरा एक बार फिर तन गया—"मुसलमान का भाई मुसलमान ही हो सकता है। चाहे वह उससे हजारों कोस दूर रहता हो। अरबी हो या फिरंगी हो, चीनी हो या हब्शी हो। इस्लाम किसी नकली कौमियत को नहीं मानता है। सारी दुनिया के मुसलमान आपस में भाई हैं। एक ही कौम और मिल्लत के जुज़ हैं।" फिर चेहरे को थोड़ा मुलायम करके इतना और जोड़ा—"लेकिन इस्लाम आपके अड़ोस-पड़ोस में रहने वाले गैर-मुस्लिमों को भी जीने का हक देता है। वो आपका हमसाया है और हर मुसलमान का फर्ज़ बनता है कि वह अपने हमसाया की मदद करे। उसे तहफ्फुज़ दे। इस्लाम की अज़मत तो इसी में है।"

अब्दुल रशीद की इस दीनदारी के सैलाब में डूबते रमज़ान जू को जैसे तिनके का सहारा मिल गया। उसने रशीद की हां में हां मिलाते हुए कहा—"आपने बजा फरमाया। इसीलिए पैगम्बर इस्लाम नबी करीम रसूल-अल्लाह, हज़रत मुहम्मद मुस्तफा को रहमत-उल-मुस्लिमीन नहीं रहमत-उल-आलमीन "कहा जाता है।"

रमज़ान की यह बात सुनकर रशीद ने न गुस्से से सिर तमतमाया और न ही नफरत से मुंह बिचकाया। उसने अपना माथा पीटकर सिर को इस तरह झटकाया जैसे उसे रमज़ान की अकल पर नहीं, बल्कि अपनी बदकिस्मती पर अफसोस हो रहा हो कि किस जाहिल से पाला पड़ा है। वह बोला—"जनाब रमज़ान जू साहब पैगम्बर इस्लाम आं हजूर रहमत-उल-आलमीन ही हैं। मगर आपने क्या कभी गौर

किया है कि वो रहमत क्या है जिससे उनका यह नाम पड़ा? वो रहमत दीन-ए-मुहम्मदी यानी इस्लाम है जो कुल आलम के लिए है। लेकिन अगर कोई इसे कबूल न करे तो वह इस रहमत से फैज़याब कैसे हो सकता है?"

रमज़ान को लगा कि इस आदमी की हर बात को, जो उम्र में उससे छोटा है, सिर झुकाकर कबूल करना उसकी ही नज़रों में खुद अपने आपको गिराना होगा। वह रशीद से बोला—"रशीद साहब, मरहूम अब्दुल सलाम के फरज़न्द-ए-अर्जमंद होने के नाते आप मेरे अज़ीज भी हैं। मेरी बात भी सुन लीजिए। "ला इल्लाह इल्लाह" का मतलब ही यह है कि सारी कायनात में एक अल्लाह के सिवा दूसरा कोई नहीं है, कुछ भी नहीं है। जो कोई भी है, जो कुछ भी है वह अल्लाह का ही है।" "नहीं! यह तशरीह सरासर ग़लत है। सरासर कुफ्र है।" रमज़ान जू की बात सुनकर अब्दुल रशीद आपे से बाहर हो गया और उसकी बुज़र्गी का कोई लिहाज़ न करके वह उसे लताड़ने लगा—"जाइए, पहले मुंह धोकर आइए और फिर कलिमा-पाक की तशरीह करने की जसारत कीजिए। यह तशरीह जो आप कह रहे हैं वह असल में और कुछ नहीं सूफी कहलाने वाले बेदीनों की आम मुसलमानों को गुमराह करने की साज़िश है। वहीं ला इलाह इल्लाह माने ला इल्लाह वजूद-ए-अल्लाह बताते हैं। यानी अल्लाह के वजूद के सिवा और कोई वजूद नहीं है। उनका मकसद सीधे सादे लोगों को गुमराह करके उन्हें दीन-ए-मुहम्मदी के पाक रास्ते से हटाना होता है। इस्लाम के बुनियादी उसूलों के मुताबिक" ला इलाह इल्लाह "का मतलब है" ला इल्लाह माबू-ए-अल्लाह-अल्लाह के सिवा और कोई माबूद यानी इबादत के काबिल नहीं है। यही "तौहीद" है। अफसोस है कि अपने को मुसलमान कहने वाले बहुत से लोग, खासकर कश्मीरी मुसलमान इस्लाम के इस बुनियादी उसूल को भूलकर अल्लाह के इलावा "इस साब" और "उस साहब" की इबादत करते हैं। दस्तगीर साहब, बटमालू साहब, बाबा ऋषि साहब, मकसूद साहब, रहबाब साहब और जाने किस-किस साहब के आसनों पर सजदा करते हैं।"

"इन पीर, फकीरों, ऋषियों और सूफियों ने भी खुदा तक पहुंचने का रास्ता ही दिखाया है।"

"खुदा तक पहुंचना क्या होता है? यह भी एक तरह से नमरूद की खुदाई का दावा है। इन्सान सिर्फ अल्लाह की बंदगी करके उसकी रहमत का तलबगार हो सकता है और उसकी रहमत का हकदार होने का एक ही रास्ता है जो अल्लाह ताला ने खुद पैगम्बर इस्लाम रसूल-ए-पाक मुहम्मद मुस्तफा की आँखों से हमें दिखाया है और वह है कुरान-ए-पाक।"

इतना कहकर अब्दुल रशीद उठ खड़ा हुआ और दीवार के साथ लगी किताबों की छोटी अलमारी खोलकर कोई किताब ढूंढने लगा।

रमज़ान जू मन ही मन अपने को कोसने लगा कि इस आदमी के साथ बहस में उलझकर उसने अपने आपको ज़लील क्यों किया? अगर दीन का मामला न होता तो बड़े-बड़ों की बोलती बंद करने वाला रमज़ान इस रंगी दाढ़ी का भी मुंह बंद कर देता। मगर गलती उसकी अपनी भी है। ठीक इस दीनयात के माहिर को चुप कराना ज़रा मुश्किल था। मगर वह खुद तो चुप रह सकता था। उसका बातों से इतिफाक न करते हुए भी उसकी हां में हां मिला सकता था। रमज़ान जू ने अब्दुल रशीद की ओर देखा। उसने अलमारी से तीन छोटी-छोटी किताबें निकाल कर साथ वाली तिपाई पर रखी थीं। रमज़ान जू ने इन किताबों पर उड़ती नज़र डाली। उर्दू में लिखी इन किताबों के नाम थे—"नज़रिया इस्लाम का साइंसी तजज़ीजया", "फलस्फा जिहाद- कुरान और हदीस की रोशनी में" और "मज़ामीन मौदूदी"।

"आप सोचकर बताइए कि आपका इरादा क्या है। शर्तें वहीं रहेंगी जो मैं अर्ज कर चुका हूं। आप मसले के हर पहलू पर गौर करके अपना फैसला बता दीजिए। लेकिन ज़रा जल्दी।" यह कहकर अब्दुल रशीद अलमारी के पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया और तिपाई पर रखी किताबों को उठाकर उनके पन्ने पलटने लगा।

मसनंद पर बैठे रमज़ान जू की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि वह क्या फैसला करे। दुकान तो उसे लेनी है। लेकिन एक लंबी मुद्दत तक बारह हजार रुपए इस तरह कैसे बंद रखे जा सकते हैं? ठीक है मुसलमान के लिए सूद हराम है। लेकिन पांच या दस साल के बाद जब उसे बारह हजार वापस मिलेंगे तब उनकी कद्र और कीमत खरीद क्या वही होगी जो आज है? ज़्यादा लंबा अर्सा नहीं हुआ जब वह एक रुपए के दो सेर दूध बेचता था। यानी एक सेर के उसे आठ आने मिलते थे। आज वही दूध वह आठ रुपये लिटर या सेर के हिसाब से बेचता है। दिन ब दिन हर चीज़ की कीमत बढ़ती जाती है और रुपए की कीमत घटती जाती है। जब अब्दुल रशीद उसे जमानत के बारह हजार वापस करेगा तब उनकी कीमत एक हजार से भी कम होगी।

रमज़ान जू सोच ही रहा था कि वह अब्दुल रशीद को क्या जवाब दे कि पच्चीस छब्बीस (Very important) पतलून और कोट पहनता था। गले में कोई नेक-टाई नहीं थी। फिर भी कोट के नीचे खुले कॉलर की सफेद कमीज उसे कुछ ज़्यादा फबती थी। दीवान खाने में दाखिल होते ही उसने अजनबी रमज़ान जू को सलाम किया। रमज़ान जू ने बुजर्गाना अंदाज में उसके लिए दुआए खैर की।

"यही है मेरा छोटा भाई डॉक्टर अब्दुल मजीद।" अब्दुल रशीद ने रमज़ान जू से कहा।

डा. मजीद रमज़ान जू के चेहरे को गौर से देखते हुए कुछ याद करने की कोशिश कर रहा था कि अब्दुल रशीद बोल उठा—"डॉक्टर साहब, यह मुहम्मद रमज़ान साहब अब्बा जान के दोस्त हैं। नीचे की एक दुकान किराए पर लेना चाहते हैं। मुझे ज़रा जल्दी है। आज शायद तुम्हारी नाइट ड्यूटी है। तुम कुछ देर बैठकर इनके साथ मामला तय कर सकते हो।"

अब्दुल रशीद अलमारी से निकाली तीनों किताबें बगल में दबाए चल पड़ा तो मजीद फिर रमज़ान जू को ग़ौर से देखते हुए उसे पहचानने की कोशिश करने लगा। कुछ देर बाद उसका चेहरा अचानक चमक उठा और मुंह से बेसाख्ता निकल पड़ा— "जय श्री राम"! जय श्री देवी!! हब्बा कदल में गली के नुक्कड़ पर आपकी शीर फरोशी की दुकान है ना? जब मैं स्कूल में पढ़ता था तो अब्बा जान के साथ कई बार आपकी दुकान पर आया था और कभी मुझे मलाई या पनीर खिलाते थे और कभी लस्सी पिलाते थे।"

कुछ वर्ष पूर्व मजीद किसी बात पर अपना आश्चर्य प्रकट करने के लिए लोकप्रिय टी.वी.नाटक "दस्तार" के मुख्य पात्र का तकिया कलाम दोहराते हुए "रामु लगै चानि लीलाए" बोल उठता था। लेकिन इधर कुछ हिंदू संगठनों द्वारा बाबरी मस्जिद पर कब्जा जमाने की कोशिश के खिलाफ अपना आक्रोश तथा प्रसिद्ध फिल्म तारिका के प्रति अपना आर्कषण व्यक्त करने के लिए उसने श्रीराम और श्री देवी को एक साथ नत्थी करके "जय श्री राम! जय श्री देवी!!" की हांक लगाना शुरू किया था।

मजीद ने, कुछ देर से ही सही, रमज़ान जू को तो पहचान लिया था। लेकिन रमज़ान जू के लिए उस छोटे लड़के को इन नये रूप में पहचान लेना नामुमकिन था जो कभी-कभी अपने बाप मरहूम अब्दुल सलाम के लिए उसकी दुकान पर आया करता था। शायद जवानी के जोश का बुढ़ापे की थकान में बदल जाने पर आदमी की शक्ल-सूरत में उतनी तबदीली नहीं आती है जितनी लड़कप्पन की मासूमियत को लांघ कर जवानी की मस्ती में कदम रखने पर आती है। उसने गीली आंखों और गदगद गले से मजीद को दुआ दी—"अल्लाह तुम्हें सलामत रखे और डॉक्टर अली जान से भी बड़ा डॉक्टर बनाए।"

दुकान के बारे में जू और मजीद के बीच कोई लंबी बातचीत नहीं हुई। मजीद ने बताया कि भाईजान पहले ही दो दुकानें किराए पर दे चुके हैं। वह किरायानामा देखगा और उन्हीं शर्तों पर रमज़ान जू को भी दुकान दिलाएगा। मजीद ने यह

आश्वासन भी दिया कि रमज़ान जू के साथ खास तालुकात को नज़र में रखते हुए वह अब्दुल रशीद भाई जान से सिफारिश करेगा कि ज़मानत की रकम को कम किया जाए और उसके एक हिस्से को पेशगी किराया माना जाए। रमज़ान जू को उसकी बातों से तसल्ली हुई और उसने चलने की इच्छा जाहिर की।

मजीद ने घड़ी देखकर कहा—"अब आप खाना खाकर ही जाइए।"

"नहीं। दुकान पर बड़ा लड़का बशीर फजिर से ही बैठा है। बेचारा भूखा-प्यासा मेरा इन्तजार कर रहा होगा। इधर मेरा छोटा साहबज़ादा आपके बरादर-असगर क्यूम साहब और दूसरे लड़कों के साथ बाहर मैदान में क्रिकेट खेल रहा है। उसे खेल छोड़कर घर चलने के लिए रज़ामंद करने में भी बीस-तीस मिनट लगेंगे ही।" रमज़ान जू ने अपनी मजबूरी बता दी।

"ठीक है, जैसी आपकी मर्जी। लेकिन मैंने सिर्फ आपकी दुकान देखी है। आप रहते कहां हैं?— वह मैं नहीं जानता।" मजीद ने कहा।

रमज़ान जू ने बड़ी गलियों, छोटे कोचूं, कमेटी के नलों, घाट की सीढ़ियों और घर की खिड़कियों का हवाला देते हुए उसे अपने घर का पूरा पक्का पता बता दिया।

"वहा मेरा एक दोस्त भी रहता है।" मजीद ने कहा।

"नाम क्या है उसका? काम क्या करता है?" रमज़ान जू ने पूछा।

"वह आजकल यहां नहीं, दिल्ली में है। एम.फिल. या पी.एच.डी. कर रहा है। नाम उसका अशोक भान है।

"बाप क्या करता है?"

"वह मुझे मालूम नहीं। शायद कहीं मास्टर है।"

"तुम मोहन किशन मास्टर जी के लड़के की बात तो नहीं कर रहे हो?"

"क्या उनकी जात भान है?"

"भान है या छान है, वह मैं नहीं जानता। मगर हमारे मुहल्ले में एक ही पंडित मास्टर जी हैं।" और तभी रमज़ान जू को जाने क्या याद आया और उसने पूरे आत्मविश्वास के साथ अपनी बात को आगे बढ़ाया—"हां, मास्टर जी के लड़के का नाम अशोक ही है जो दिल्ली में आला तालीम पा रहा है। वह आजकल यहीं है।"

"यहीं है? जय श्री राम! जय श्री देवी!! आज और कल तो मुमकिन नहीं, मैं परसों सुबह ही उससे मिलने जाऊंगा।"

"वह या उसका बाप मास्टर जी रोज़ सुबह मेरी दुकान पर दूध लेने आते ही हैं। मैं उन्हें बता दूंगा।"

अब्दुल मजीद की बोलचाल और फितरत से मुतासिर हुए रमज़ान जू ने उसके

सिर पर शफकत का हाथ रखा और उससे घर जाने की रूखसत चाही। मजीद उसके साथ बाहर गली तक आया।

गली की दूसरी तरफ क्रिकेट का खेल अभी तक चल रहा था। अब्दुल रशीद गेंद फेंकने वाले लड़के और बैट से गेंद को खेलने वाले लड़के, दोनों के लिए तालियां बजाकर उन्हें शाबासी दे रहा था। फारूक एक तरफा खड़ा तत्परता से गेंद को रोकने या उसे कैच करने के मौके का इंतजार कर रहा था। रमज़ान जू पर नज़र पड़ते ही उसकी सारी तत्परता शिथिल और सारा जोश ठंडा पड़ गया। वह बेदिली से रमज़ान जू के साथ घर लौटने के लिए उसके निकट आया। उसके साथ ही अब्दुल रशीद भी मुस्कुराता हुआ रमज़ान जू के पास आया। रमज़ान जू ने उसकी मुस्कुराहट का जवाब मुस्कुराहट से ही दिया।

"आपकी मुस्कुराहट से लगता है कि डॉक्टर मजीद ने आपको कुछ रियायते दी हैं।"

"अब्बा जान के दोस्त रहे हैं। इतनी क़द्र और इनका लिहाज करना ही पड़ेगा। "मजीद ने भी मुस्कुराकर कहा।

"आप दोनों भाईयों से जो बातें हुई, उन पर गौर करके मैं दो-चार दिन तक खुद आकर आपको अपने फैसले से आगाह करूंगा।"

"खुद तकलीफ क्यों करेंगे? इस अज़ीज को भेज दीजिए।" अब्दुल रशीद ने मुस्कुराते हुए फारूक की तरफ इशारा किया और फिर से क्रिकेट खेलने वाले लड़कों की निगरानी करने चला गया। मजीद रमज़ान जू के साथ बस स्टाप तक आया और उसे दरगाह हज़रतबल के रास्ते लाल चौक जाने वाली बस में बैठाया। फिर मुस्कुराते हुए हाथ हिलाकर उसे अलविदा किया।

बस चली तो रमज़ान जू रशीद और मजीद के साथ हुई बातचीत पर गौर करने से पहले दोनों की मुस्कुराहट पर गौर करने लगा। दोनों मुस्कुराए थे। लेकिन दोनों की मुस्कुराहट में बहुत फर्क था। बड़े भाई की मुस्कुराहट चूने के पानी जैसी थी और छोटे भाई की दूध जैसी। चूने के पानी और दूध दोनों का रंग सफेद होता है। लेकिन एक ज़हर की तासीर रखता है और दूसरा आबे हयात की। रमज़ान जू अंदर ही अंदर कुढ़ रहा था कि इस रंगी दाढ़ी वाले को यह कहने की हिम्मत कैसे हुई कि पीरों ऋषियों के आस्तानों पर हाज़िरी देना इस्लाम के खिलाफ है? अलमदारे कश्मीर शेख-उल-आलम हजरत नूरउद्दीन वली नूरारी जिन्हें हम प्यार से "नुंदऋषि" कहते हैं, पैगंबर-ए-इस्लाम को ही पहला ऋषि मानते हैं—"अव्वल ऋषि।" पीरों और ऋषियों के सरताज होकर भी उन्होंने अपने को ऋषि सिलसिले के सबसे निचले मुकाम पर ही रखा था—"बुं" कुस ऋषि? में क्या नाव?"

बात-बात पर कुरान की दुहाई देने वाले अब्दुल सलाम के बड़े लड़के ने क्या सचमुच कुरान पढ़ा है? और अगर पढ़ा भी है तो क्या उसे ठीक से समझा है? कुरान पढ़ना और पढ़कर उसे ठीक-ठाक समझना क्रिकेट जैसा कोई लड़कपन का खेल नहीं है। शेख उल आलम नुंद ऋषि ने कुरान पढ़ने का दावा करने वालों से बिल्कुल सही सवाल किया है—

"क्वरान परान कोनो मूदख?
क्वरान परान गोय नो सूर?
क्वरान परान जिंदुं क्येथुं रूदुख?
क्वरान परान दोंद मनसूर!!!

फरिश्ता सीरत अब्दुल सलाम का इबलीस जैसी खसलत वाला बछड़ों के झुंड में घुसा यह सांड अपने सिवा किसी को मुसलमान मानने के लिए ही तैयार नहीं है। जबकि शेख उल आलम ने साफ-साफ कहा है कि "सुय् मालि जान्यज़्यन मुसलमान" मुसलमान उसे जानो जो अपने और पराये में कोई फर्क न करे। जिसके लिए कोई ग़ैर हो-ही नहीं। जिसे अल्लाह के नूर से पैदा हर बंदे और हर शै में अल्लाह ही नज़र आए। जो अपनी, ख्वाहिशों को मारकर दूसरों के मरे हुए अरमानों को फिर से जिलाए-सुय्मालि ज़ान्यज़्यन मुसलमान।

अब्दुल रशीद की बातों से रमज़ान जू का जी सचमुच खट्टा हो गया था। वह हैरान था कि दीने इस्लाम को गलत रंग में पेश करने वालों की तैदाद में दिन ब दिन इज़ाफा क्यों हो रहा है। उसने बुज़ुर्गों से सुना था कि सन् इकत्तीस में काठी दरवाजा जेल के बाहर गोली चलने के बाद कुछ गुंडों ने शहीदों का मातम मनाने के बदले विचारनाग में पंडितों के घरों और महाराज गंज में खत्रियों की दुकानों को लूटा था। लूटपाट के वक़्त उन्होंने बहादुरी और कुर्बानी के इस्लामी नारे "हैदरी! या अली!!" में अपनी मर्जी से तरमीम की थी—"हैदरी, चादरी! या अली, मलमली!!" यानी शेरे इस्लाम हज़रत अली का नाम लेकर चादरों के बंडल लूटो। मलमल के थन लूटों!! खैर वो लोग अनपढ़, जाहिल और गरीब थे जिन्हें पेट भरने के लिए दो वक़्त की रोटी नसीब नहीं थी। तन ढकने के लिए कपड़े मयस्सर नहीं थे। उसे इस बात का अंदेशा ज़रूर था कि वैसे ही लुच्चे- लफंगे अपने आकाक्षांओं की शह पाकर कश्मीर में एक तूफान बरपा करने वाले हैं। लेकिन उसे गुमान भी न था कि रशीद जैस पढ़े-लिखे, खाते-पीते समझदार और दौलतमंद लोग मज़हब की मनमानी तशरीह करके अपने तपाक इरादों के लिए इखलाकी और दीनी आवाज पेश करेंगे।

चलती बस में रशीद की एक-एक बात याद करके रमज़ान जू को लगने लगा कि उसका अंदेशा अब महज़ अंदेशा नहीं रहा है। वह हकीकत में बदल रहा है।

उसके चेहरे पर उदासी छा गई।

फारूक बस के शीशे को हटाकर नसीमबाग के किनारों को देख रहा था जिनके पत्ते इस मौसम में अपना हरापन छोड़कर लाल हो गए थे। उसे जाने क्यों अजीब-सा एहसास हुआ कि इन चौड़े चकले कद्दावार पेड़ों में आग लग गई है जिसकी आंच से उसका चेहरा भी तमतमा रहा है। वह खुश था कि दुकान किराए पर लेने के सिलसिले में उसे बार-बार अब्दुल रशीद के पास आना पड़ेगा और क्यूम और दूसरे लड़कों के साथ क्रिकेट खेलने का मौका मिलेगा। मगर रशीद साहब कहता था कि क्रिकेट सिर्फ छुट्टी के दिन ही खेली जाती है और हफ्ते में एक ही छुट्टी होती है। यह ख्याल आते ही फारूक का जोश कुछ ठंडा पड़ गया। लेकिन दूसरे ही लम्हे उसे होश आया कि आजकल स्कूल कॉलेज अक्सर बंद रहते हैं और हफ्ते में कम से कम तीन बार "इतवार" आती है। उसका चेहरा फिर चमकने लगा। नसीमबाग, युनिवर्सिटी और दरगाह पीछे छूट गए थे। नगीन पुल को पार करते उसे डल झील का वह हिस्सा नज़र आया जहां कुछ ही महीने पहले उसने झुंड के झुंड खिले पम्पोश-कमल के फूल देखे थे। इस समय उसे वहां एक भी कमल नज़र नहीं आया। हां, उसने एक किश्ती ज़रूर देखी जिसमें एक कुंजड़ा और उसकी कुंजड़िन कमल पातों के नीचे से निकलती कमल ककड़िया को बराबर नाप में तोड़कर उनके गट्ठे बना रहे थे। अधिकतर ककड़ियों पतली और गांठदार थीं। लेकिन कुछ एक क्रिकेट के विकटों जैसी सीधी थीं और मोटाई, लम्बाई और रंग में भी करीब-करीब वैसे ही। फारूक का मन हुआ कि बस की खिड़की से ही बौलिंग करके उन विकटों को उखाड़ कर हवा में उछाल दें और बड़े से बड़े बल्लेबाजों को क्लीन-बोल्ड कर ले।

(5)

दिन के बारह बजे रसोई, सफाई और धुलाई का सारा काम निपटा कर शांता दबे पांव सीढ़ियां चढ़कर अशोक के कमरे के सामने खड़ी हो गई। अधखुले दरवाज़े से झांकर जब उसने अशोक को पढ़ने-लिखने में मग्न देखा तो उसने राहत की सांस ली। आज सुबह नौ बजे बसंती तीन दिन के बाद उनके यहां से चली गई थी और आज ही शांता ने तीन दिनों के बाद अशोक को किताब कॉपी लेकर बैठे देखा। पिछले तीन दिनों में वह बसंती और पिंकी के साथ कभी इस कमरे में और कभी उस कमरे में धूप सेंकता रहता था। शाम को जितनी देर बिजली रहती थी, बिजली की रोशनी में और बिजली के चले जाने पर मोमबत्ती के धुंधले प्रकाश में उसके साथ गप्पें लड़ाता रहता था। पता नहीं रात को अपने कमरे में पढ़ता था या जवानी के "बसंती" सपनों में खोया रहता था। इन तीन दिनों पिंकी भी अपनी

आदत के विरुद्ध घर के कामकाज में विशेष रूप से दिलचस्पी लेने लगी थी। चार बजे की चाय और शाम का खाना वही बनाती थी। वही दिन को कपड़े भी धोती थी। शायद वह जान-बूझकर अशोक और बसंती के बीच हालात सुधर गए, पिंकी के साथ ही बसंती भी कॉलेज चली गई और अब वहीं से अपने घर चली जाएगी।

अशोक किताब खोलकर ज़रूर बैठा था। लेकिन उसका मन जाने कहां-कहां भटक रहा था। नहीं, इस समय उसका भटकता मन बसंती के पास तक नहीं फटका। वह आज की दिल्ली और सदियों पुराने कश्मीर के बीच चक्कर काट रहा था। सेमिनार पेपर का संक्षिप्त सैद्धांतिक प्रारूप बनाकर भी वह तथ्यों और तर्कों के अभाव में उसे लिख नहीं पाया था। उसके बदले उसने फिलहाल ऐतिहासिक स्रोतों के विषय में टर्म पेपर लिखना शुरू किया था जिसमें विषय का विवेचन कश्मीर के संदर्भ में करने की काफी गुंजाइश थी। यह विषय उसने दो कारणों से चुना था। पहला कारण यह था कि वह स्वयं कश्मीरी है। दूसरा और असली कारण यह था कि इतने विस्तृत भारत देश में, इतने समृद्ध संस्कृत साहित्य के बावजूद कश्मीर प्रदेश में ही बारहवीं सदी में पहली बार एक इतिहास ग्रंथ लिखा गया था। पंड़ित कल्हण ने वितस्ता तरंगिणी के समानांतर काल-प्रवाह में डूबते-उभरते कश्मीर के राजाओं की जो तरंगिणी अवतरित की है उसके शुद्ध इतिहास न सही, ऐतिहासिक काव्य या काव्यात्मक इतिहास होने पर संदेह नहीं किया जा सकता है। जवाहर लाल नेहरू के अनुसार कल्हण की रचना में कश्मीर के राजाओं की कहानी ही नहीं और भी बहुत कुछ है। इसमें प्रागैतिहासिक, प्राचीन और मध्ययुगीन कश्मीर की भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। जवाहर लाल नेहरू का नाम और उसकी उक्ति याद आते ही अशोक पुलकित हुआ। उसकी युनिवर्सिटी में ह्यूमैनिटीज से संबंधित हर रिसर्च वर्क में डार्विन, देकार्त, हॉब्स हीगल, गेटे, मार्क्स, ऐंगल्ज़, लेनिन का हवाला देना जैसे एक अनिवार्य शर्त बन गया है, चाहे उसकी ज़रूरत हो या न हो। ऐसी स्थिति में अपने तर्क के समर्थन में उस व्यक्ति को उद्घृत करना जिसके नाम पर ही युनिवर्सिटी बनी हो, निःसंदेह उसकी बात को वज़नदार बनाएगा।

पंडित कल्हण ने कश्मीर का इतिहास लिखा और पंडित नेहरू ने उसे नई दिशा दी नहीं, कोई नई दिशा नहीं दी बल्कि सदियों से उसके प्रवाह को देखते और समझते हुए उसे जिस दिशा में जाना चाहिए था उसी दिशा में जाने दिया। हां, बीच में आए अवरोधों को ज़रूर हटा दिया।

अशोक किताब उठाकर कल्हण की राजतरंगिणी के बारे में जवाहर लाल नेहरू के विचार एक बार फिर पढ़ने लगा—"मैंने प्राचीन काल की यह कहानी

अनिर्वचनीय रस लेकर पढ़ी है, क्योंकि मुझे कश्मीर और उसके मोहक सौंदर्य से प्यार है और शायद इसलिए कि मेरे भीतर, बहुत गहराई में, कुछ ऐसा है जिसे मैं लगभग भूल चुका हूं। लेकिन जो मुझे मेरे उस पुराने स्वदेश की गुहार आने पर झकझोरता है, बहुत-बहुत पहले जिसे छोड़कर हमें यहां आना पड़ा था। चूंकि उस गुहार को उस रूप में स्वीकार नहीं कर सकता जिस रूप में करना चाहता हूं, इसलिए स्वप्न और कल्पना पर संतोष करके उदासीन पुस्तकों के ठंडे भावशून्य शब्दों के सहारे बार-बार हिमालाय के हिमशिखरों से घिरी उस मनोरम घाटी की गोद में जाकर लेटता हूं और अंतर की कसक भूलकर जाने किस क्षति की पूर्ति करता हूं...

अशोक किताब रखकर एक कार्ड ढूंढने लगा जिसमें उसने किसी यूरोपीय इतिहासकार के हवाले से कश्मीर के बारे में एक प्रसिद्ध मुगल सम्राट के उद्गार नोट किए थे। पता नहीं सौ से अधिक कार्डों की गड्डी में वह कार्ड कहां छिपा बैठा था जिसमें जहांगीर की यह इच्छा अंकित थी कि कश्मीर के लिए वह अपनी सल्तनत का कोई भी कीमती हिस्सा छोड़ सकता हैं

अशोक के हाथ कार्ड खोज रहे थे लेकिन मस्तिष्क में उसके पिता मोहनकृष्ण और पड़ोसी हीरालाल के बीच देश विभाजन के बारे में कुछ दिन पहले हुई बातचीत गूंज रही थी। उसके पिता ने कहा था कि पार्टिशन होने पर रैडकिल्फ बाउंडरी एवार्ड के अनुसार लाहोर और उसके आस-पास का इलाका इंडियन यूनियन के पास ही रहने वाला था क्योंकि वहां मुसलमानों से ज्यादा हिंदुओं और सिखों की आबादी थी। लेकिन नेहरू जी ने ज़िला गुरुदासपुर के जम्मू-कश्मीर रियासत के साथ मिलने वाले छोटे हिस्से के लिए उत्तर भारत के उस समय के सबसे बड़े और संम्पन्न नगर पर अपना अधिकार छोड़ दिया था। तो क्या जवाहर लाल ने उस बात को कर दिखाया जिसे जहांगीर ने केवल सोचा था?— अशोक निश्चय नहीं कर पा रहा था कि नेहरू का यह निर्णय उसके लिए सुखदायक रहा होगा या पीड़ाजनक?

"जय श्री राम! जय श्री देवी!!"

ज़ोर से बोले गए ये अनर्गल शब्द कानों में पड़ते ही अशोक का ध्यान टूटा। उसने देखा कि सामने दरवाजे पर मुस्कुराता उसका पुराना दोस्त मजीद खड़ा है जो अब डॉक्टर अब्दुल मजीद बन गया है।

"अरे तू!" अपने पुराने सहपाठी मजीद को देखकर अशोक को सुखद आश्चर्य हुआ। लेकिन फिर जाने क्या सोचकर उसने लहजा बदला—"आइए डॉक्टर मजीद, तशरीफ रखिए।"

"तशरीफ का टोकरा मैं बाद में नीचे रखूंगा। पहले तू खड़ा होकर मेरे गले लग।"

अशोक उठ खड़ा हुआ। मजीद ने उसे गले लगाया।

"आओ बैठो।" अशोक ने कहा।

"नहीं, मैं नहीं बैठूंगा और तू भी नहीं बैठेगा। या जब तक तू कपड़े बदलेगा, मैं बैठकर तेरी किताबें देख लूंगा। मतलब अपने तशरीफ का टोकरा नीचे रख कर उसमें तेरे इलम और ज्ञान का कचरा बटोर लूंगा।"

"जाना कहां है?"

"कॉफी हाऊस जहां, शफी पीर, बिहारी और विजय हमारा इंतजार कर रहे होगें। यहां भी गली के बाहर सड़क पर डॉ. अल्ताफ़ अपनी गाड़ी में हमारा इंतजार कर रहा है।"

सफेद मारूति में बैठा डॉ. अल्ताफ़ वाकई मजीद और अशोक का इंतजार कर रहा था। उनके आने पर उसने अशोक से "हैलो" कहा और गाड़ी के फ्रंट और बैक, दोनों डोर खोले। मजीद उसके साथ अगली सीट पर बैठ गया। अशोक ने पिछली सीट पर बैठकर डॉ. अल्ताफ़ से हाथ मिलाया। मजीद ने दोनों का आपस में परिचय कराया। अल्ताफ़ ने गाड़ी स्टार्ट की।

बड़शाह पुल को पार करते ही अशोक ने देखा कि अक्सर दुकानों के साइन बोर्ड अचानक हरे रंग के हो गए हैं। कुछ दुकानों में इस समय भी पेंटर हरी तख्तियों पर सफेद अक्षरों में दुकानों के नाम लिख रहे थे। इस तरह की तख्तियां इससे पहले उसने मस्जिदों के साथ लगी दरगाहों पर टंगी देखी थी।। या फिर "ग्रीन गोल्ड" के रक्षक फॉरेस्ट डिपार्टमेंट वाले सब्ज़ बोर्ड लटका कर उन पर नुंद ऋषि की उक्ति—"अन पोशि यलि वन पोशि—अन्न तब रहेगा जब वन रहेंगे" अंकित करते थे। वनों और हरियाली का विनाश जारी रहने के बावजूद आज अचानक सारे बाज़ार और सारी दुकानें हरे रंग में कैसे रंग गई? वह हैरान हो गया।

"क्या सोच रहे हो?" मजीद ने उससे पूछा।

"यार, न तो यह सावन का महीना है और न ही मैं अंधा हो गया हूं। लेकिन फिर भी मुझे हर तरफ हरा ही हरा नज़र क्यों आ रहा है?"

मजीद के बदले स्टिअरिंग पकड़े अल्ताफ़ ने मुस्कुराकर अशोक की बात का जवाब दिया—"मुझे लगता है कि यह किसी होलसेल पेंट डीलर की चालाकी है। लोगों में सब्ज़ रंग का जनून पैदा करके वह ग्रीन पेंट का सारा पुराना स्टॉक निकालना चाहता है।"

मजीद ने भांप लिया कि अशोक को यह बात पची नहीं। बिना उसकी ओर मुड़े वह उसे समझाने लगा—"हरा रंग देखकर लाल-पीले क्यों हो रहे हो? एक आध महीना यहां रहकर वापस दिल्ली चले जाआगे। हमें और हमारे कश्मीर को हमारे हाल पर छोड़ दो।"

मजीद ने कुछ और भी कहा जिसे सड़क पर चलती कारों, बसों, ट्रकों, फौजी और नीम फौजी दस्तों की गाड़ियों के शोर के कारण अशोक ठीक से सुन नहीं सका।

कॉफी हाऊस के निकट पहुच कर अल्ताफ़ ने गाड़ी रोक कर मजीद से कहा—"मुझे डलगेट में थोड़ा-सा काम है। एक घंटे तक आ जाऊंगा। मेरा इंतजार करना।"

मजीद और अशोक गाड़ी से उतरे। अल्ताफ़ गाड़ी को टूरिस्ट रिसेप्शन सेंटर की तरफ ले गया। मजीद और अशोक कॉफी हाऊस की सीढियां चढ़ने लगे।

शफी पीर और बिहारी पहले से ही कॉफी हाऊस में बैठे थे। दोनों ने मजीद से हाथ मिलाया और फिर खड़े होकर अशोक को गले लगाया। बैरा पानी के गिलास लेकर आया। मजीद ने उसे कॉफी का आर्डर दिया।

"आज कॉफी से काम नहीं चलेगा।" बिहारी ने शफी पीर की ओर देखते हुए कहा—"आज डबल खुशी का मौका है।"

"पहली खुशी तो यह है कि दिल्ली से आया मेरा दोस्त, दोस्त को सलाम करो।" मजीद ने अशोक पर उड़ती नज़र डालकर बिहारी की ओर देखा—"दूसरी खुशी क्या है?"

"आज हमारा दूसरा दोस्त शफी पीर, सॉरी" परीज़ादा मुहम्मद शफी भारत सरकार के सैम्पल सर्वे आर्गेनाइज़ेशन में असिस्टेंट एडमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर बन गया।"

"जय श्री राम! जय श्री देवी!! मगर तुमने बताया नहीं?" मजीद ने गिलास उठाकर एक घूंट पानी पिया।

"आज ही पता चला। आर्डर कल या परसो मिलेगा।" कहकर शफी पीर ने एक ही घूंट में पूरा गिलास खाली कर दिया।

"यार यह कमाल कैसे हो गया? बी.ए. में तेरा डिविजन क्या था, वह सबको मालूम है।"

बिहारी ने मजीद की बात को आगे बढ़ाया—"मैं भी हैरान हूं और इसीलिए तुम दोनों के आने से पहले इससे यही जानना चाहता था कि किस किस हैवी वेट" की सिफारिश से यह करिश्मा हो गया? वह कांग्रेसी था या नेशलन कान्फेंसी, जमात-ए- इस्लामी वाला था या कोई अल्लाह वाला?"

मजीद ने उसी तरह भोलेपन से दूसरा सवाल किया—"इस पोस्ट के लिए तुम किसी" रिटेन टेस्ट "में बैठे थे?"

"कोई रिटेन-टेस्ट नहीं हुआ था। इंटरव्यू हुआ जो ज्यादा खतरनाक होता है। दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता से एक्सपर्ट आए थे।" शफी पीर बोला।

अशोक खामोश रहकर सोच रहा था कि यह शफी पीर भी कैसा आदमी है। मजीद और बिहारी उसका मजाक उड़ा रहे हैं जो उसकी पकड़ में नहीं आता है और टांग खींचने के लिए किए गए सवालों के जवाब भी छाती फुला कर देता जा रहा है।

"इंटरव्यू में तुमसे क्या पूछा गया?"

"और सवालों के अलावा एक ऐसा सवाल भी पूछा गया जिसने फस्ट डिविजन पंडित लड़कों की भी बोलती बंद की थी।" शफी पीर ने बिहारी की ईंट का जवाब पत्थर से देते हुए कहा।

"सवाल क्या था?" मजीद ने पूछा और गिलास से दो घूंट पानी और पिया।

"यही कि इंडिया का नेशलन एंथेम क्या है और मैंने फट से बताया कि हमारे वतन का कौमी तराना है—जन गन मन पायल बाजे।"

"जय शांता राम। जय हीरॉइन सन्ध्या" मजीद के मुंह से तकिया कलाम के इस संशोधित रूप के साथ ही कुछ क्षण पहले गटके पानी का फुहारा भी फूट पड़ा। अपनी हंसी को काबू में करने के लिए वह उठकर बाथरूम की ओर जाने लगा। उसके लौटने से पहले ही बैरा कॉफी लेकर आया।

"देखा?" शरीफ पीर न अशोक से कहा—"डॉक्टर साहब को पता था कि बैरा कॉफी के साथ बिल भी लाएगा। इसीलिए खांसी का बहाना बनाकर खिसक गया।" उसने बैरे को चार आमलेट का आर्डर दिया और कॉफी के पैसे भी नए बिल में जोड़ने के लिए कहा।

बाथरूम से लौटकर मजीद ने देखा कि उसके तीनों दोस्तों के हाथों में कॉफी के कप हैं और एक कप मेज पर पड़ा उसका इंतजार कर रहा है। वह कॉफी पीने लगा।"

"परीजादा साहब ने आमलेट का ऑर्डर भी दिया है और कॉफी की पेमेंट भी करेंगे।" बिहारी ने मजीद से कहा।

"यानी परीजादा साहब आज हातिम की कब्र पर लात मार कर ही रहेंगे।" मजीद बोल उठा।

"मैं किसी हातिम या खादिम की कब्र पर लात मारकर अपनी ही टांगें तोड़ने वालों में नहीं हूं। तुम किसी दूसरे बंदे की तलाश करो जो ऐसी अहमकाना हरकतों से तुम डाक्टरों के लिए आमदनी का जरिया फराहम करे।"

शफी पीर की बातों पर तालिया बजाकर बिहारी मजीद से बोल उठा—"अब

बोल डॉक्टर? परीजादा साहब ने जवाब के ऐसे ही तेजाबी तीर मार के इंटरव्यू लेने वालों के दांत खट्टे किए होंगे।"

"यू आर राइट।" मजीद ने कहा—"अब, परीजादा जैसे ब्रिलियंट मुस्लिम नौजवानों की एंट्री से कश्मीर के सेंट्रल गर्वन्मेंट ऑफिसों में तुम पंडितों की मॉनोपॉली नहीं रहेगी।"

अशोक कॉफी का ही नहीं, मजीद, शफी और बिहारी की बातों की भी चुस्कियां ले रहा था। आज बहुत दिनों के बाद कॉफी हाऊस की छत के नीचे शोर शराबे के बीच बैठे रहने के बावजूद उसे लगा कि सचमुच कश्मीर का आकाश निरभ्र, वायु निर्बध और जल निर्मल है। नहीं तो दिल्ली से यहां आकर उसका दम घुटने लगा था। हर कहीं नफरत और दुश्मनी, हर दम डर और दहशत और हर एक उदास और निराश। मजीद, शफी पीर और बिहारी एक-दूसरे पर व्यंग्य कसते थे शायद एक-दूसरे से ईर्ष्या भी करते होंगे। लेकिन उसे किसी में कोई दुर्भावना नजर नहीं आई। तीनों की बातों में स्पष्ट राजनीतिक संकेत और व्यंजना भी थी। फिर भी कहीं कोई कड़वाहट नहीं थी। सब कुछ शांत, सहज और स्वस्थ था।

अचानक एक जोरदार धमाका हुआ। बंद खिड़कियों के पल्ले हठात् खुल कर जोर -जोर से हिलने लगे। पूरे कॉफी हाऊस में आतंक का सन्नाटा छा गया। सभी कुर्सियां छोड़ कर खड़े हो गए लेकिन किसी ने भी दरवाजे से बाहर निकल कर और सीढ़ियां से उतर कर भागने की कोशिश नहीं की। शायद इसलिए कि यहां आने-जाने वाले अक्सर लोग जानते थे कि इसी कॉफी हाऊस के दरवाजे के साथ वाले बाथरूम में दो-ढाई महीने पहले ही एक बम फटा था। लेकिन अशोक के लिए यह बिल्कुल नया अनुभव था। प्रथम आघात से उभर कर होश में आने में उसे कुछ समय लगा। होश में आकर उसने देखा कि उसके साथियों समेत सब लोग बालकनी में चले गए हैं और बाहर सड़क की ओर देखा कि उसके साथियों समेत सब लोग बालकनी में चले गए हैं और बाहर सड़क की ओर देख रहे हैं। उसने भी बालकनी में जाकर लोगों के कंधों के ऊपर से उचक कर बाहर देखा। सड़क पर भगदड़ मच गई थी, धूल उड़ रही थी और सामने वाले हलवाई की दुकान से धुंआ उठ रहा था। तभी शफी पीर ने जाने कहां से आकर उसकी बांह थामी और उसे सीढ़ियों तक ले गया जहां मजीद और बिहारी उसका इंतजार कर रहे थे।

सीढ़ियां उतर कर बिल्डिंग के बाहर फुटपाथ पर कदम रखते ही उसने देखा कि एक जवान लड़की किसी दूसरी जवान लड़की को सहारा देकर साथ वाली गली में ले जा रही है।

"बेचारी शायद ज़ख्मी हुई है।" मजीद ने कहा और डॉक्टर होने के नाते दौड़कर उसके निकट गया। लेकिन लड़की को बम ने ज़ख्मी नहीं, बल्कि धमाके की आवाज ने भयभीत और भौंचक्का कर दिया था। मजीद ने सामने वाली दुकान से पानी का गिलास लाकर उस लड़की को पिलाया। पानी पीकर वह फुटपाथ पर ही बैठ गई और उसे सहारा देने वाली लड़की कातर दृष्टि से इधर-उधर देखने लगी।

"बसंती।" उस लड़की से आंखें चार होते ही अशोक को जैसे अपनी नज़रों पर विश्वास नहीं हुआ और वह तेज़ कदमों से उन लड़कियों के पास चला गया। हां, वह बसंती ही थी लेकिन जिस लड़की को वह सहारा देकर यहां लाई थी वह अशोक की आशंका के प्रतिकूल पिंकी नहीं, कोई और थी। उसकी जान में जाने आई।

अशोक को देखकर बसंती के मुर्दा शरीर में भी जैसे फिर से प्राणों का संचार हुआ। उसकी बाछें खिल गई और भयाततुर श्यामल चेहरे के बीच उजली दन्तपंक्ति की बिजली कौंधी।

"जय श्री राम! जय श्री देवी!!" कहकर मजीद ने बिहारी के कंधे पर हाथ रखकर उसे और शफी पीर को वहां से चलने का इशारा किया—"सहारा देने वाली को भी सहारा देने वाला मिल गया अब यहां हमारी कोई ज़रूरत नहीं है।"

"हां यहां रहकर करेंगे भी क्या?" शफी पीर ने चलते हुए कहा—"लेकिन पता नहीं तुम्हें यह पंडित की लड़की श्री देवी जैसी कैसे लगी? तुमने शायद उसकी बड़ी-बड़ी आंखे ही देखीं। हंसते वक़्त उसके फैले होठों और चमकते दांतों पर गौर नहीं किया। वह तो—क्या नाम है उस हीराईन का? हां, वह तो बिल्कुल जौ ही चावल है।"

"देखा हमारे परीजादा साहब का एक और कमाल?" मजीद ने मुस्कुराते हुए बिहारी की ओर देखा। बिहारी ने धीमे स्वर में कहा—" यह कमाल परीजादा साहब का ही नहीं उर्दू लिपि में लिखी फिल्मी इश्तहारों का भी है। जिनमें जूही चावला और जौ ही चावला में बहुत कम फर्क होता है।

आतंक के सागर में डूबती बसंती को तिनके का ही नहीं एक मजबूत नाव और उसके खेवनहार का सहारा मिल गया था। उसने अशोक का हाथ जोर से पकड़ कर कहा—"बम हलवाई की दुकान में फटा जहां सी.आर.पी. वाले चाय पी रहे थे।"

"पिंकी कहां है?" अशोक ने दूसरी लड़की के हाथ से खाली गिलास लेकर पूछा।

"वह हब्बाकदल में ही मैटाडोर से उतर कर घर चली गई।" अशोक के मन में जो खटक गया था, बसंती की बात से वह तीर स्वतः निकल गया।

दूसरी लड़की पर अभी तक दहशत ताजी थी। वह बोली—"तीन सी.आर.पी. वाले या तो मर गए या बुरी तरह ज़ख्मी हो गए। उनके साथी उन्हें सड़क पर खड़ी गाड़ी में बादामी बाग छावनी की तरफ ले गए।"

दोनों लड़कियां अभी तक सदमें से उभर कर संभल नहीं पाई हैं— यह सोच कर अशोक उन्हें चाय पिलाने के लिए गली के अंदर गुजरती रेस्तरां "सुरती" की ओर ले गया। लेकिन बम धमाके के बाद वहां शटर गिराए गए थे। तीनों बंड की सीढ़ियां चढ़कर व्यथ के किनारें चिनार के नीचे बनाई गई लकड़ी की चौकी पर बैठ गए। बसंती ने बताया कि प्रैक्टिकल लेसन्ज के प्रोग्राम के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए वह इंदिरा नगर की इस लड़की सुनीता के साथ अपने कॉलेज से गर्वन्मेंट कॉलेज ऑफ एज्यूकेशन आई थी। वहां से प्रोग्राम की कापी लेकर कॉफी हाऊस के नीचे वाले बुक स्टाल में किताबें देख रही थीं कि सड़क के पार हलवाई की दुकान में बम फटा।

कुछ देर सुस्ताने के बाद तीनों बंड के रास्ते ही बस स्टैंड तक आए। अशोक ने सुनीता को कैन्टूमेंट जाने वाली बस में बिठाया और खुद बसंती को घर तक छोड़ने के लिए उसके साथ ही रैनवारी की बस में बैठ गया। चलती बस में पंद्रह बीस मिनट सीट पर बसंती के साथ सटकर बैठे अशोक ने महसूस किया कि बसंती का ही नहीं, उसका दिल भी जोर-जोर से धड़क रहा है। हालांकि पिंकी और बसंती दोनों ने अपनी समझदारी से उसकी परेशानी दूर कर दी थी। पिंकी हब्बाकदल में ही मैटाडोर से उतर गई थी और बसंती पुराने शहर में रहने वाली लड़कियों की तरह रेजिडेंसी रोड के फैशनेबल माडर्न हलवाई की दुकान में चाट गोल गप्पे खाने नहीं, बुक स्टाल में कोई किताब देखने गई थी। उसने प्रेम और प्रशंसा से बसंती की ओर देखा और उसकी समझदारी की दाद देने के लिए शब्द खोजने लगा। लेकिन बसंती ने उसे कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया। वह डरी हुई हिरनी की सी आंखों से उसे देखने लगी और फिर उसी के कंधे पर सिर रखकर सो गई। अशोक ने बसंती के चेहरे से आंखें हटाकर इधर-उधर देखा। बस में बीच की लोहे की छड़ को पकड़ कर खड़े छः सात युवक बसंती को वहशी नजरों से घूर रहे थे। एक युवक ने फिरन पहना था और बाकी ज़ीन्स और जॉकेट पहन कर चुस्त और स्मार्ट लग रहे थे। फिरन वाले युवक ने फिरन के नीचे कांगड़ी या जाने-कौन सी चीज छिपा रखी थी। अशोक घबरा गया। तभी उसके कानों में जनाना अवाज में "खुदाया नजात। या खुदाया नजात" के शब्द पड़े। उसने पलटकर देखा कि दो बुर्का पोश औरतें चेहरे के नक़ाब उलट कर बावैला कर रही थीं। काले बुर्कों के बीच से झलकते उनके चेहरे दहशत के कारण फूल जैसे गुलाबी

नहीं, कफन जैस सफेद लग रहे थे। अशोक की घबराहट कम हो गई। एक औरत की इज्जत की सबसे बड़ी गारंटी दूसरी औरत ही होती है, भले ही वह खुद डरी हई हो या आततायियों के फिरके कबीले से ही सम्बंध रखती हो।

बसंती अशोक के कंधे पर सिर रखकर निश्चिंतता से सो रही थी। उसका बायां गाल जैसे अशोक की शर्ट के आवरण को भेदकर उसकी जलती फड़कती दाहिनी बांह को नर्म फाहा बनकर सहला रहा था। उसके हाथ बसंती के अंगों के स्पर्श के लिए मचल रहे थे। लेकिन छड़ पकड़े युवकों की घूरती आंखों ने जैसे उन्हें जकड़ कर रखा था। लाल चौक से डल गेट और डल गेट से शीराज मोड़ तक का रास्ता अशोक के लिए आवेश और आशंका के द्वंद में गुजर गया। शीराज मोड़ पर वे युवक बस से नीचे उतरे। शायद वे सिनेमा का सेकेंड शो देखने आए थे। उनके उतरते ही अशोक ने बसंती की नरम जांघ पर अपना गरम हाथ रखा। बसंती ने चौंक कर तुरंत आंखें खोली—"हम कहां पहुंच गए?"

"शीराज सिनेमा के पास।" अशोक ने उसकी जंघा से हाथ हटाकर कहा—"बस से उतर कर मैं तुम्हारे साथ विश्व भारती स्कूल तक जाऊंगा और तुम्हें वहां छोड़कर मैटाडोर में वापस हब्बाकदल आऊंगा।"

"नहीं, तुम मेरे साथ मेरे घर चलोगे। मेरी मम्मी से मिलोगे। डैडी के ऑफिस से लौटने तक रूकोगे और उनसे बातचीत करके ही घर वापस जाओगे।" बसंती ने अधिकार से कहा और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाने लगी। अशोक ने नजरें उठाकर उसकी ओर देखा। इस समय बसंती उसका चेहरा सहलाने लगी। अशोक ने नजरें उठाकर उसकी ओर देखा। इस समय उसे बसंती का चेहरा श्यामल मेघों से घिरी रात जैसा नहीं, ऊषा की लालिमा से चमकता प्रभात जैसा दिखाई दिया जिसमें उसके मोती जैसे दांतों की पंक्ति ज़बर वन पर्वत के पीछे से निकलने वाले बाल सूर्य की तरह दमक रही थी।

जोगी लंकर रैनवारी में अपने घर के संकरे आंगन में एकाउंटेंट जनरल के ऑफिस में सेक्शन ऑफिसर पंडित जानकी नाथ गूंज सिग्रेट फूंकते हुए परेशानी से चक्कर काट रहा था। बीच-बीच में वह दरवाजा खोलकर गली के एक छोर से दूसरे छोर तक नज़रें दौड़ाता था और हर बार निराश होकर फिर से दरवाजा बंद करता था। उसे अपनी बेटी ही नहीं, पूरी नई पीढ़ी पर क्रोध आ रहा था। पिछले कुछ बरसों में नए भर्ती हुए लड़के लड़कियों में रत्ती भर भी समझदारी और गम्भीरता नहीं जो गर्वमेंनट, खासकर सेंट्रल गर्वनमेंट के ऑफिशल्ज में होनी चाहिए। दो-तीन साल नौकरी करने के बाद भी वे अपने को स्कूल कॉलेज के लड़कप्पन से उभार नहीं सके हैं। ठीक है "हिन्दी दिवस" मनाने का डॉयरेक्टिव

ऊपर से आया था। लेकिन इसके लिए इतना परेशान होना क्या ज़रूरी था? अपने टेबल पर ही पांच दस मिनट बैठकर दो-तीन पेज की रिपोर्ट तैयार करके ऊपर भेजी जा सकती थी और किस्सा खत्म हो जाता। लेकिन ये नए छोकरे-छोकरियां थोड़े ही मानते। उन्होंने बारह बजे ही दफ्तर का काम बंद करवाया। हिन्दी में बैनर और पोस्टर लगवाए जिन पर भगवान जाने क्या लिखा था। बाहर से कुछ पागल लोगों को बुलवाकर "कवि-सम्मेलन किया। जानकी नाथ को उन पागलों की ऊट पटांग कविताएं सुनने के लिए न फुर्सत थी और न ही हिम्मत। वह साढ़े बारह बजे घर पहुंचा था। अब चार भी बज चुके थे और ऑफिस में अभी भी गिरिजा जी, कुसुम जी और जाने कौन-कौन जी ऑफिस और बाहर के मर्दों के बीच तितलियों की तरह थिरकती और चिड़ियों की तरह चहकती होंगी। जवानी का अपना जोश होता है लेकिन हालात का भी कोई तकाजा होता है। क्या पता किस वक़्त कहां क्या हो जाए? वे ऑफिस में "हिन्दी दिवस" मना रही होंगी। उन्हें क्या पता होगा कि किस घर में किस बेटे, किस भाई, किस बहन का मातम मनाया जा रहा होगा।

गली में क़दमों की आहट सुनकर जानकी नाथ ने दरवाजा खोला। सामने उसकी बेटी बसंती थी और साथ में एक युवक भी था। उसकी परेशानी दूर हो गई लेकिन क्रोध ठंडा नहीं हुआ। बल्कि बेटी के साथ एक अजनबी को देखकर भड़क ही उठा।

"डैडी, यह अशोक जी हैं। मेरी सहेली नीरजा के बड़े भाई। जे.एन.यू. में एम. फिल कर रहे हैं। इनके पिता भान साहब को तो आप जानते ही हैं।" बसंती ने मुस्कुराते हुए जानकी नाथ से कहा।

अशोक ने हाथ जोड़कर बसंती के डैडी को नमस्कार किया। लेकिन जानकी नाथ ने उसके नमस्कार का जवाब देने के बजाय उसकी ओर गुस्से से आंखें तरेर कर और नफ़रत से मुंह बिचका कर देखा जिससे अशोक और उससे कहीं अधिक बसंती को उलझन और पेरशानी हुई। बसंती को लगा कि उसके पिता ने अपने अशिष्ट व्यवहार से अपने को ही नहीं, बसंती को भी अशोक की नज़रों में गिरा दिया। उसने रोष से आंखें उठाकर पिता की ओर देखा। पिता ने उसका हाथ पकड़कर उसे भीतर घसीटा और दरवाज़ा बंद करके अन्दर से सांकल चढ़ा दी।

भौंचक्का अशोक थोड़ी देर तक बंद दरवाजे के बाहर जड़वत् अवाक् खड़ा रहा और फिर गुस्सा पीकर सिर झुकाए गली से बाहर जाने लगा। नुक्कड़ पर सूखी मछलियां बेचने वाले अधेड़ ने उसे देखते ही जोर का ठहाका लगाया और फिर नसवार से भूरे दांतों की नुमाइश करते हुए बोल उठा—" साले सन् सत्तर में फूले

नहीं समाए थे कि टीका खान मर गया। आज भड़ुए भट्टों को पता चला होगा कि असल में किस का टीका मिट गया।''

अशोक सोचने लगा कि यह आदमी उसी पर तो व्यंग्य नहीं कर रहा है? कहीं उसे पहले ही मालूम तो नहीं था कि बसंती के घर में उसका अपमान होगा? लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी वह उसके शब्दों का कोई अर्थ नहीं निकाल सका। उसने रैनावारी से अपने घर तक का रास्ता कुछ बस में और कुछ पैदल चलकर पूरा किया। जब वह घर पहुंचा तो दिन ढल चुका था। लेकिन व्यथ के बाएं किनारे बिजली की लाइट, जो सुबह चली गई थी, अभी तक नहीं लौटी थी। घर में प्रवेश करते ही अशोक ने वातावरण में भय और त्रास सूंघ लिया। मोहनकृष्ण और पड़ोस का हीरालाल संध्या के झुटपुट में खिड़की के निकट मुंह लटकाए बैठे थे। रसोई की दहलीज पर बैठी शांता और पिंकी दोनों की ओर करूण दृष्टि से देख रही थी। अशोक का दिल जोर से धड़कने लगा और वह खामोश क़दमों से शांता के पास गया—''क्या बात है मम्मी?''

शांता कुछ नहीं बोली लेकिन पिंकी ने रूंधे गले से कहा—''टीकालाल टपिलू को गोलियां चलाकर मार दिया गया।''

''तुमसे किसने कहा?'' अशोक को धक्का लगा।

पिंकी ने उसे विस्तार से बताया कि दोपहर को जब वह हब्बाकदल पुल के पास मैटाडोर से उतरी तो उसने अजीब-सा सन्नाटा महसूस किया। दो भट्टनियां उसके बगल से निकलीं। वह उनसे कुछ सुनने के लिए रुकीं। लेकिन दोनों इतनी आतंकित थीं कि कुछ कहे सुने बिना तेज-तेज कदमों से पुल पार करने लगी। उसने भी तेज कदमों से घर पहुंचने की कोशिश की मगर उसके पांव ही नहीं उठे। सहसा एक मुसलमान औरत पीछे से आकर उसके पास रुक गई। पिंकी के पूछे बिना उसने बताया कि बेचारे टीकालाल टपिलू को मुजहिदों ने गोली मार दी। उसकी जंग संग पार्टी भले ही संग यानी पत्थर मार कर मुसलमानों के साथ जंग करती हो, बेचारा टीकालाल बहुत नेक आदमी था। पंडित भट्टों और मुसलमानों में कोई फर्क नहीं करता था। कचहरी कमिश्नरी में मुहल्ले के मुसलमानों की मुफत वकालत पैरवी करता था...

पिंकी ने और क्या-क्या कहा वह अशोक ने नहीं सुना। उसने जूते उतारे और मोहनकृष्ण और हीरालाल के पास चटाई पर बैठ गया। वे दोनों गुमसुम थे। उनके बीच बातचीत का सूत्र जाने किस बिंदू पर टूट चुका था। उनकी बाते सुनने के लिए आतुर अशोक निराश होकर अपने कमरे में जाने की सोच ही रहा था कि हीरालाल ने नए सिरे से बात शुरू की—''आनंद जू का बेटा कह रहा था कि

अडवानी और साहनी जैसे बी.जे.पी. के बड़े लीडर दिल्ली से आ रहे हैं।''

हीरालाल की बात से मोहनकृष्ण का सुप्त ज्वालामुखी फिर से लावा उगलने लगा—''यह देखने के लिए कि क्या टीकालाल सचमुच मर गया या अभी जिंदा है?''

''आप क्या कह रहें हैं, मास्टर जी? वे कश्मीर में अपनी पार्टी के नेता को श्रद्धांजलि अर्पित करने आ रहे हैं?

''सन् 77 में टीकालाल कश्मीर में उनकी पार्टी का नेता नहीं था? लेकिन एक इंदिरा गांधी के खिलाफ जब जनसंघ और दूसरी पार्टियों ने जनता पार्टी बनाकर चुनाव लड़ा तो टीकालाल को टिकट क्यों नहीं दिया गया? भट्टों की अच्छी आबादी वाले चुनावी हलके में उस टीकालाल का जीतना क्या आसान नहीं था जिसे इलाके के गरीब मुसलमान भी वोट देने को तैयार थे? इतिहास का इससे बड़ा मजाक क्या हो सकता है कि आज कांग्रेस की अपीज़मेंट पालिसी का विरोध करने वाली पार्टी ने बारह साल पहले कट्टर और एलीट मुसलमानों को तुष्ट करने के लिए अपने निष्ठावान नेता के साथ अन्याय कर के उस डाक्टरनी को टिकट दिलाया जिसने कुंआरी लड़कियों के गर्भ गिराकर दौलत और शोहरत हासिल की थी।''

मोहनकृष्ण का आखिरी वाक्य सुनकर अशोक ने सिर झुकाया। हीरालाल ने भी थोड़ी उलझन महसूस की। उसने कहा—''उन दिनों मैं भी एक डेलिगेशन के साथ अटलबिहारी वाजपेयी के पास गया था। हमने उन्हें बताया कि टीकालाल जनसंघ का पुराना कार्यकर्त्ता है। इलाके में ज्यादा आबादी कश्मीरी पंडितों की है। इलाके के सारे पंडित और बहुत से मुसलमान उसे ही अपना एम.एल.ए. बनाना चाहते हैं। टीकालाल के जनसंघी लेबल से उस जनता पार्टी को कोई चिढ़ नहीं होनी चाहिए जिसमें जनसंघ खुद भी शामिल है। लेकिन सारी बातें सुनने के बाद वाजपेयी जी ने शांत स्वर में कहा कि देश के व्यापक हित के लिए एक टीकालाल क्या दर्जनों टीकालालों का बलिदान दिया जा सकता है।''

हीरालाल की बात सुनकर मोहनकृष्ण ने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया जैसे वह उसे करारा थप्पड़ मारना चाहता हो। मगर उसने ऐसा नहीं किया। उसने अपने हाथों से हीरालाल का कंधा थपथपाते हुए कहा—''पंडित जी, व्यापक हित, लार्जर, इंट्रस्ट्स की दुहाई देकर ही हमारे लीडरों ने हमें बेदर्दी से कत्ल करके हमें ही अपने खून के घूंट पीने के लिए मजबूर किया। बारह बरस पहले हिन्दू राष्ट्रवाद का झंडा उठाने वाले वाजपेयी ने कई हजार कश्मीरी पंडितों के हित की परवाह न करके देश के ''व्यापक हित'' के लिए टीकालाल की

कुर्बानी देकर जनता सरकार के कैबिनेट में अपने लिए जगह हासिल की। तीस साल पहले मार्क्सइज्म सोशलइज्म और डेमोक्रैसी के अलमबरदार सादिक ने रियासत के "वसीह मुफाद" के लिए ही डेमोक्रैटिक नेशनल कांफ्रेंस के कारकुनों की पीठ में पीछे से छुरा घोंप कर बख्शी गुलाम मुहम्मद की हुकूमत में अपनी खोई हुई कुर्सी फिर से हासिल की।"

हीरालाल ने जवाब में कुछ नहीं कहा। घड़ी में समय देखा और घर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। उसके जाने पर अशोक भी अपने कमरे में चला गया और बिना मोमबत्ती जलाए अंधेरे में हित-अहित अर्थ-अनर्थ पर सोचता रहा। क्या एक हित सीमित होता है और दूसरा व्यापक? क्या सीमित हित व्यापक हित का भाग न होकर उससे भिन्न होता है? दोनों में क्या कोई विरोध है? एक व्यापक हित के लिए जब अनेक छोटे हितों का बलिदान होता है तो क्या व्यापक हित स्वयं बलि नहीं चढ़ता है?

नौ बजे पिंकी खाने के लिए बुलाने आई। लेकिन अशोक ने कहा कि उसका मन नहीं करता है। पिंकी ने कोई आग्रह नहीं किया। मां भी बुलाने नहीं आई। घर में खाना ज़रूरी बना था लेकिन किसी से भी खाया नहीं गया।

अगले दिल खाना खाकर अशोक ने नाव में व्यथ को पार किया और गणपतयार में एक बंद दुकान के ज़ीने पर खड़ें होकर टीकालाल टपिलू की अर्थी की प्रतीक्षा करने लगा। अर्थी शीतलनाथ मन्दिर से कोई दो बजे उठी और तीन बजे के करीब गणपतयार पहुंची। अर्थी के पीछे चलने वाले जन समूह में अशोक को कुछ मुसलमान तो दिखे लेकिन राजबाग, वजीरबाग जैसी बड़े लोगों की कॉलोनियों में रहने वाला कोई हिन्दू नजर नहीं आया। आतंकवाद का शिकार बने उग्र राष्ट्रवादी दल के निरीह प्रादेशिक नेता का मातम बना रहे हज़ारों लोगों के चेहरों पर उस आतंक, भय या क्रोध की कोई रेखा भी दिखाई नहीं दी। न ही कहीं से "जिंदाबाद" "मुर्दाबाद" जैसे नारें की गूंज सुनाई दी। सिर झुका कर चलते लोग व्यथित किंतु शांत स्वर में "ॐ नमः शिवायः और "क्षन्तव्योमे अपराधाः शिव शिव शम्भो, हे महादेव शम्भो" दोहरा रहे थे।

अशोक भी जुलूस में शामिल हो गया। हब्बाकदल पुल के पास पहुंचते ही आगा हम्माम मस्जिद की ओर से किसी ने जुलूस पर एक पत्थर फेंका और कुछ क्षण के विराम के बाद फिर से तीन पत्थर फेंके गए। अर्थी के पीछे चलने वालों के शरीर में भय की सिहरन दौड़ने लगी। कुछ नौजवान भय को जोश में बदलने की कोशिश करते हुए जोर से "भारत माता की जय" के नारे लगाने लगे। ईंट-पत्थर मारने वालों को जैसे इसी नारे का इंतजार था। चारों ओर "अल्लाह

अकबर" और "इस्लाम जिंदाबाद" के नारे गूंजने लगे और जुलूस पर ईंट, पत्थर, रोड़ों की बौछार होने लगी। कई लोग ज़ख्मी हो गए और बहुत सारे लोगों ने भाग कर गली कूचों में शरण ली। अशोक जल्दी-जल्दी सोमयार घाट की सीढ़ियां उतरा और व्यथ के किनारे-किनारे चलकर गणेश घाट पहुंचा और वहां से बूढ़े मल्लाह सुबहाना की नाव में नदी पार करके कोई छः बजे घर पहुंच गया। उसका ख़्याल था कि मां और पिंकी घर पर ही होंगी। मोहनकृष्ण अलबत्ता टीकालाल की अर्थी के पीछे-पीछे शमशान भूमि तक गया होगा। लेकिन वह भी अशोक की आशंका के प्रतिकूल घर पर ही था। अशोक ने उससे नहीं पूछा कि क्या यह अर्थी में शामिल हुआ था और अगर शामिल हुआ तो इतनी जल्दी कैसे घर वापस आ गया था? न ही उसने अशोक से पूछा कि सुबह का घर से निकला वह कहां गया था और इतनी देर तक वहां क्या कर रहा था? वह ट्रांजिस्टर पर विभिन्न केन्द्रों से समाचार और अलग-अलग स्टेशनों से करंट अफेयर्स के प्रोग्राम सुनता रहा। अशोक देर तक मां और पिंकी को दिन भर की घटनाओं का ब्यौरा देता रहा। नौ बजे उसने भी खाना खाया और अपने कमरे में चला गया।

आज इलाके में बिजली की लाइट चालू थी कि फिर भी अशोक ने न पढ़ने के लिए किताब हाथ में ली और नहीं लिखने के लिए कोई कॉपी उठाई। अर्थी के पीछे-पीछे चलने वालों के व्यथित कंठों से निकले शब्द उसके मस्तिष्क में गूंज रहे थे– "ॐ नमः शिवाय। क्षन्तव्योमे अपराधाः शिव शिव शम्भो हे महादेव शम्भो।" वह जानता था कि जब किसी कश्मीरी पंडितों या पंडिताइनों की मृत्यु होती है तो उसकी अर्थी के पीछे चलने वाले "राम नाम सत्त है" आदि न बोलकर शंकराचार्य के शिव अपराध क्षमा रत्तोत की यही टेक दोहराते हैं। गर्भवास से चिता पर चढ़ने तक हर अवस्था में अपने को अपराधी मानकर श्मशानवासी शंकर से क्षमा याचना करते हैं। जलोद्भव, मिहिरकुला, दुलचू, सिकंदर बुतशिकन, सैफउद्दीन सुॅभट्ट, लाल खान खटक, जब्बार खान और बहुत से कबाइली खानों के कत्लेआम में मारे गए लोगों का मातम करने वालों के मुख से अलग-अलग युगों में भी यही एक आर्तनाद निकला होगा—मेरे अपराधों को क्षमा कर हे शिव शम्भू, हे महादेव शम्भू मैंने गर्भावस्था में ही अपनी माता पिता को पीड़ा पहुंचाई। बचपन में अपनी शरारतों से सभी को परेशान किया। जवानी में काम से अंधा होकर इंद्रियों का दास बन गया। बुढ़ापे में अपनी संतान पर बोझ और उनके सुख में बाधक बन गया। मेरा इतिहास ही अपराधों की अकथ कहानी है। सतीसर में राक्षस के वीर्यपात से उद्भव एक अज्ञात कुल शील को पालने-पोसने की मूर्खता की। पाश्विक शक्तियों के आगे सिर न झुकाने की धृष्टता की। इस्लाम के नूर के बदले

कुफ्र के अंधकार को अपनाया। "पाकिस्तान जिंदाबाद" न बोलकर "भारत माता की जय" कहा। हे महादेव मेरे इन सारे अपराधों के लिए मुझे माफ करो। क्षन्तव्योमे पराधाः

शिव शिव शम्भो, हे महादेव शम्भो...

अशोक को पता नहीं चला कि उसकी आंख कब लग गई। लेकिन जब आंख खुली तो सुबह के साढ़े नौ बज चुके थे। उठकर हलके कंबल के ओढ़ने को वह तह ही कर रहा था कि उसकी नज़र तीन उर्दू अखबारों पर पड़ी जो मोहनकृष्ण ने उसके पढ़ने के लिए बिछौनो के पास ही रखे थे। तीनों में टीकालाल टपिलू की शवयात्रा के बारे में रिपोर्ट और सरकारी तरजमान का बयान छपा था—"मातमी जुलूस शहर के मुख्तलिफ बाज़ारों से आमतौर पर पुरे अमन माहौल में गुजरा। सिर्फ एक मुकाम पर थोड़ी-सी गड़बड़ हुई जिसे पुलिस ने फौरन काबू में कर लिया। एक सरकारी तरजमान के मुताबिक हब्बाकदल पुल के पास जुलूस में शामिल लोगों ने इश्तिआल अंगेज नारे लगाए जिस पर मुक़ामी लोगों ने एतराज किया। एक दो पत्थर फेंकने की मामूली वारदात भी हुई। लेकिन पुलिस की बरवक्त कार्रवाई से हालात को जल्दी काबू में किया गया...

अशोक याद करने लगा कि हब्बाकदल में कौन-सा इश्तिआल अंगेज मतलब उत्तेजक या प्रवोकेटिव नारा लगाया गया? हां, आगा हम्माम मस्ज़िद के पास जब पथराव शुरू हुआ तो "भारत माता की जय" के नारे ज़रूर लगे थे। क्या यही इश्तिआल अंगेज, प्रोवेकेटिव नारा था? यह सरकारी तरजमान भी डिविजनल कमिश्नर या कोई दूसरा आई.ए.एस. अफसर ही होगा। तो क्या भारत के एक "अटूट अंग" में "भारत माता की जय" एक इश्तिआल अंगेज, प्रोवोकेटिव नारा है?

तीनों अखबारों को पढ़ने में अशोक को आधे घंटे से ज्यादा समय नहीं लगा। उसने अखबारों को लपेटकर बगल में दबाया। अपने कमरे से निकल कर सीढ़ियों उतरते उसने जो देखा उस पर उसे सहसा विश्वास नहीं हुआ। नीचे बसंती खड़ी थी, लज्जित और उदास। वह अपनी जगह खड़ा रहा। बसंती तेज़ी से सीढ़ियां चढ़कर उससे लिपट गई। उसकी आंखों में आंसू थे। निश्चय ही वह पिता के किए पर शर्मिंदा थी। अशोक जड़वत खड़ा रहा। कुछ क्षण सब्र करने के बाद बसंती ने उसे ज़ोर से बांहों में भींच लिया और उसके सर्द गालों पर जल्दी-जल्दी दो गरम-गरम चुम्बन जड़ दिए। अशोक के होंठ तनिक हिले लेकिन कुछ कहने के बजाय बसंती के थरथराते होंठों से चिपक गए और उन्हें चूमते हुए बसंती के मन की सारी ग्लानि, लज्जा और उदासी खींच-खींच कर बाहर निकालने लगे।

ड्यूटी पर जाने के लिए आंगन में पांव रखते ही मोहनकृष्ण को ध्यान आया

कि स्कूल के रीडिंग रूम के लिए सुबह खरीदे अखबार अशोक के कमरे में ही रह गए हैं। उन्हें लेने के लिए वापस घर के अन्दर दाखिल होकर ज्योंही उसने सीढ़ियों की ओर कदम बढ़ाया, उसकी नज़र सामने एकाकार हुए दो जवान शरीरों पर पड़ी। वह उलटे पांव घर से निकलकर आंगन के बाहर चला गया।

रमज़ान जू ने घड़ी देखी। दो बज गए थे। पिछले एक घंटे में दुकान पर न कोई खरीदार दही पनीर लेने और न ही कोई बक्की गप्पशप करने आया था। बशीर को भी अब तक आ जाना चाहिए था। लेकिन आज उसने भी देर कर दी। वह बिना नागा एक बजे और डेढ़ बजे के बीच अपनी दूसरी पारी देने आता था और रमज़ान जू दुकान उसके हवाले करके खाना खाने घर चला जाता था। लेकिन आज वह भी जाने कहां है, क्या कर रहा है?

रमज़ान जू को खास भूख नहीं लगी थी। फिर भी वह आतुरता से बशीर का इंतजार कर रहा था। क्या वह सही सलामत है? सुबह बेचारे की तबीयत भी ठीक नहीं थी। दुकान का सारा बोझ भी उसी के कंधों पर था। फारूक ने जब से लाल बाजार का रास्ता पा लिया है तब से वह पूरा दिन वहीं गुजारने लगा है। नई दुकान में पलस्तर रोगन और शेल्फ फिट करने का तो बस बहाना है। असल में सारा दिन अब्दुल सलाम के तीसरे लड़के कयूम और दूसरे छोकरों के साथ क्रिकेट खेलने में गंवाता होगा। नालायक को वहां के छत्त के लसलसे से शहद का ऐसा चस्का लगा है कि कभी-कभी रात को भी वहीं चिपका रहता है। बेवकूफ अपनी जवानी का कीमती वक़्त फजूल में ज़ाया करता है सिवाय उन एक दो घंटों के जिन में अब्दुल रशीद से कुरान मजीद पढ़ता होगा। दूसरी बीवी जून की कोख से जन्में इस फारूक के (ताई) अपना फर्ज पूरा करने के लिए उसने उसके लिए अलग दुकान लेने का फैसला तो कर लिया। लेकिन यह नहीं सोचा कि पहली बीवी सुंदरी के जरिये बशीर का भी उस पर कर्ज है। रमज़ान से पहले बशीर और गुलशन की निशानी की रक्म पूरी नहीं की तो (वह) अपनी लड़की के लिए कोई और लड़का ढूंढेगा। लेकिन रमज़ान आज तक मामले को टालता रहा। इसलिए नहीं कि उससे अपने लड़के के लिए अपने भाई की लड़की पसंद नहीं है। वह सिर्फ इतना चाहता है कि बड़े लड़के बशीर की निशानी शादी से पहले छोटा लड़का फारूक भी अपने पांव पर खड़ा हो जाए।

रमज़ान जू ने सुबह का अखबार उठाया और उसे फिर देखने लगा।

"रमज़ान जू ने जे.के.एल. एफ का बयान पढ़ा ?" एक जानी पहचानी आवाज ने उसे चौंका दिया। उसने नज़र उठाकर देखा। सड़क के पार उसकी दुकान के बिल्कुल सामने कादिर कबाड़ी बिजली के खंभे से टेक लगाए उसकी

ओर मुस्कुराकर देख रहा था।

"तुम तो कहते थे बेचारे पंडित टीकालाल को बेगुनाह मारा गया। जे.के.एल. एफ. ने अखबार में साफ-साफ ऐलान किया है कि उन सब को खत्म किया जाएगा जो कश्मीर को हिन्दुस्तानी एजेंटों के जद्दोजहद और जंग जारी रखते हैं।"

रमज़ान जू को एक पुरानी कहावत याद आई– तुम उसका क्या बिगाड़ सकते हो जो व्यथ के उस पार से तुम्हें गालियां दे? यह दो कौड़ी का नेशनली लुच्चा व्यथ न सही, सड़क के उस पार से उसे ऐसी बातें सुना रहा है जिन्हें पचाना उसके लिए गालियां हज्म करने से भी ज्यादा मुश्किल है। मगर रमज़ान जू मजबूर था। बीच में दस फुट चौड़ी सड़क थी जिसे पार करके कादिर की पिटाई करना अपने आप को ही जुलीदार कुरने के बराबर होता है। उसने अपनी दुकान पर बैठे-बैठे ही कादिर को लताड़ा–कबाड़ी के बच्चे। शेरे कश्मीर की देखा-देखी में, तू भी शेरे हब्बाकदल बना था। आज फिर से कुत्ता बनकर जे.के.एल.एफ वालों के आगे दुम हिलाने लगा? इलहाक को अटल बताने का गुनाह क्या इसी एक टीकालाल ने किया था? क्या तेरा फारूक अब्दुल्लाह और उसके तेरे जैसे चमचे ऐसे ही गुनाहगार नहीं हैं? और फिर शेख अब्दुल्लाह, बख्शी गुलाम मुहम्मद, अफजल बेग, सादिक को कब्रों से निकाल कर फांसी पर क्यों नहीं चढ़ाया जाता जो "कश्मीर हिन्दुस्तान का अटूट अंग है" का राग अलापते थकते नहीं थे?

कादिर पछताने लगा कि वह इस पागल ग्वाले के मुंह क्यों लगा जिसने उसकी सीधी-सी बात को फजूल में तूल दिया। रमज़ान की बात के जवाब में उसने जो बात अब कही वह उतनी सीधी नहीं थी–"मुझ से क्यों उलझते हो काका? मैंने थोड़े ही लस्सा हमाल की तरह तुम्हारे घर में घुसपैठ की है।"

रमज़ान तिलमिलाया। कादिर कबाड़ी ने उसकी दुखती रग पर सिर्फ हाथ ही नहीं रखा था, नमक भी छिड़का था। उसे बशीर पर गुस्सा आया। अगर वह वक़्त पर आया होता तो रमज़ान इस वक़्त अपने घर में होता और उसे इस बद्तमीज कबाड़ी की बेहूदा बाते सुनने की नौबत ही नहीं आती।

– 0 –

"दिल्ली से आई आंधी।
फूट पड़ी इंदिरा गांधी।।

असद नजार के बेटे की आवाज़ सुनकर रमज़ान जू ने तुरंत नजर उठा कर छत की ओर देखा। छत के बीचों बीच लटकते बल्ब का फिलमेंट अंगारे की तरह दमक रहा था। अगर बिजली चालू है तो बिजली के साथ-साथ दिल्ली और दिल्ली की इंदिरा गांधी का स्यापा करने यह हरामी "साहब" कहां से टपक पड़ा? उसने गौर से

देखा। हां, यह साहब ही था जो लेई की हांडी लिए कादिर कबाड़ी के सामने खड़ा था। कादिर ने झोले से कुछ पर्चे निकाल कर साहब के हवाले किए और साहब लेई लगाकर इन पर्चों को खंभों दीवारों पर चिपकाने लगा। रमज़ान जू ने समझा कि कादिर को किसी कम्पनी के इश्तहार चस्पां करने का काम मिला होगा और बदमाश असद नजार के पागल लौंडे से मुफ्त में यह काम करा रहा होगा। मतलब डोगरा राजाओं के वेगार का खेल अभी जारी है। सिर्फ खिलाड़ी बदल गए हैं।

बशीर ढाई बजे के करीब दुकान पर आया। उसे देखते ही रमज़ान को याद आया कि बेचारे का कोई कसूर नहीं है। रमज़ान ने ही उसे खली खरीदने भेजा था। इसलिए मुलायम आवाज में उसने बशीर से पूछा–"जमाल तेली मिला?"

"मिला। लेकिन उसके पास सिर्फ दो बोरी खली थी।"

"ठीक है। मैं कल परसों खुद जाकर और तीन चार बोरियां ले आऊंगा।" रमज़ान जू ने उठते हुए कहा और घर की ओर रुख करने से पहले सड़क पार के खंभे पर चिपकाए पर्चे पर नजर डालने पर उसे पता चला कि वह किसी कम्पनी का इश्तहार नहीं, एक पोस्टर है जिसमें 18 सितंबर को मनाई जाने वाली शहीद एजाज डार की पहली बरसी का प्रोग्राम दिया गया है।

घर की ओर कदम बढ़ाते हुए रमज़ान सोचने लगा कि यह एजाज डार था कौन? कहीं यह वही लड़का तो नहीं जो डी.आई.जी. वटाली के घर के बाहर सी. आर.पी की गोली से मारा गया था हां, वह नाखुशगवार वॉक़ा भी पिछले साल इन्हीं दिनों हुआ था।

खाना खाने के बाद दूसरी मंजिल के छज्जे पर डेढ़-दो घंटे कैलूल और आराम करने के बाद रमज़ान जू उठा तो पांच बज चुके थे। उसने नीचे नल पर जाकर जल्दी-जल्दी हाथ मुंह धो डाला और छज्जे पर ही जा निमाज कर चंद कुरान अदा की। थोड़ी देर बाद जून उसके लिए समावार में गरम-गरम नमकीन चाय और तंदूर से ताजा निकले दो तिलबड़े लेकर आई।

"बशीर कहां है?– रमज़ान जू ने जून से पूछा।

"दुकान पर ही है। तुम चाय पीलो। मैं खुद दुकान पर जाकर उसे यहां भेज दूंगी।

"तुम क्यों जाओगी? फारूक अभी तक नहीं आया?"

"वह आज नहीं आएगा।"

"क्यों, आज रात वहीं रहेगा?"

"आज रात ही नहीं, वह चार पांच दिन वहीं रहेगा। उसने सुबह चलते वक़्त ही मुझसे कहा था।"

"और तुमने मुझसे अब कहा। देख लेना तुम्हारा यह लाड प्यार ही उसकी तबाही की वजह बनेगा।"

रमज़ान के इस फिकरे से जैसे जून के तन बदन में आग लग गई। वह चिल्लाने लगी—"प्यार से तबाही नहीं, आबादी होती है। लेकिन तेरे घर में मेरे बेटे को कभी प्यार नहीं मिला और शायद इसीलिए उसे पराया घर अपने घर से ज्यादा रास आता है।"

जून के तेवर देखकर रमज़ान ने बात को तूल देना मुनासिब नहीं समझा। उसने सिर्फ इतना कहा—"तू बैठ। मैं खुद ही दुकान संभाल कर बशीर को फारिग करूंगा।"

फारूक ने मां से कहा था कि उसका इरादा चार-पांच दिन लाल बाजार में रहने का है। मगर एक पखबाड़ा बीतने पर भी फारूक घर वापस नहीं आया। जून इतने दिनों मुंह फैलाए रमज़ान से अपनी नाराज़गी जता रही थी। लेकिन पन्द्रहवें दिन भी जब फारूक नहीं लौटा तो वह परेशान हो गई। रात के दस बजे जब रमज़ान दुकान बंद कर के घर आया तो जून उसके सामने बैठकर रोने लगी—"मुझे मेरा बेटा लाकर दो।"

रमज़ान फारूक के लिए शुरू से ही परेशान था। लेकिन जून की अकड़ देखकर उसने चाहते हुए भी फारूक की खोज-खबर लेने की कोई कोशिश नहीं की थी। उसने जून से कहना ज़रूरी नहीं समझा। जून आंसू पोंछ कर उठी और थोड़ी देर बाद खाना लेकर आई। रमज़ान ने दो तीन कौर मुंह में डालकर ही खाने से हाथ खींच लिया। पता नहीं जून ठीक से सोई या नहीं लेकिन वह खुद सारी रात करवटें बदलता रहा। दूसरे दिन सुबह मस्जिद में निमाज पढ़ने के बाद वह दुकान पर नहीं, सीधा लाल बाज़ार में अब्दुल सलाम के बेटों से मिलने गया।

अब्दुल सलाम के घर पर रमज़ान जू को उसके तीन लड़कों में से एक भी नहीं मिला। बड़ा लड़का अब्दुल रशीद सब से छोटे कयूम को लेकर कुपवाड़ा के निकट अपने चक पर गया था। मझला डॉक्टर मजीद अस्पताल में ड्यूटी पर था। रमज़ान जू ने घर के नौकर से फारूक के बारे में पूछा। लेकिन उसे कुछ मालूम नहीं था। वह जनानखाने में गया और बड़ी बीवी को रमज़ान जू की परेशानी बता दीं अब्दुल सलाम की बेवा बड़ी बी ने उसी नौकर के ज़रिए रमज़ान जू को कहलवा भेजा कि दो हफ्ते की बात ही नहीं, उसने पिछले एक महीने से उसके बेटे का मुंह ही नहीं देखा है।

लाल बाज़ार से चलकर रमज़ान जू स्टेट हॉस्पिटल में डा. मजीद से मिला। उसे भी फारूक के बारे में कुछ खास मालूम नहीं था। रमज़ान जू ने उससे उनके चक का अता-पता मालूम किया और सीधे बटमालूम अड्डे जाकर कुपवाड़ा की बस पकड़ी। रात कुपवाड़ा कसबे के बड़े बाजार में कमराज मुस्लिम होटल में

काटी और दूसरे दिन लड़के ख्वाजा अब्दुल सलाम के चक की तरफ खाता हुआ। वहां पहुंच कर पता चला कि अब्दुल रशीद और उसका छोटा भाई काश्तकारों के साथ सारा हिसाब-किताब करके कुछ देर पहले ही वापस शहर रवाना हुए हैं। रमज़ान जू मायूस होकर श्रीनगर वापस आया और अगले दो तीन दिनों में उसने अपने सभी रिश्तेदारों, जान पहचान वालों और फारूक के दोस्तों के यहां चक्कर काटे। लेकिन उसे किसी से भी फारूक के बारे में कुछ मालूम नहीं हुआ।

नौ बज गए थे। मोमबत्ती की कॉपती धुंधली रोशनी में रमज़ान जू माथा पकड़े बैठा था। पास बैठी जून धीमें स्वर में सुबक रही थी।

"देखों ढाड़ें मार कर सारे मुहल्ले को इक्ट्ठा मत करो। मां बेटा मिलकर मुझे और कितना ज़लील करोगे?" रमज़ान ने जून को डांटा और फिर आवाज धीमी करके पूछा—"सच सच बता। तुझसे रुपये या कोई ज़ेवर चुराकर तो नहीं ले गया?"

"नहीं।"

"मैंने भी अपने सेफ संदूक खोलकर देख लिए। रकम ज्यों की त्यों थीं।"

"तुम उसे चोर बदमाश समझते थे। उस पर हमेशा शक करते थे। इसीलिए वह तुम्हारा घर ठुकरा कर चला गया।" जून ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

बशीर समय से कुछ पहले ही दुकान बंद कर के आया। घर का माहौल सूंघकर उसने ताड़ लिया कि फारूक के बारे में फिलहाल कोई पता नहीं चला है। उसने रमज़ान जू के पास जाकर धीमे से कहा—"क्यों न टीवी पर फारूक के बारे में एलान कराएं। रोज खबरों से पहले गुमशुदा लोगों के फोटो दिखाए जाते हैं।"

रमज़ान जू को बशीर का सुझाव पसंद आया। बशीर से उसे यह भी मालूम हुआ कि कश्मीर में आजकल टी.वी. का अफसर बाहर का कोई साहब नहीं, एक कश्मीरी पंडित ही है। अपने पचास-साठ साल के तजुर्बे ने रमज़ान को यकीन दिलाया कि कश्मीरी पंडित अफसर दूसरों की निस्बत कुछ ज्यादा ही हमदर्द और खैर ख्वाह साबित होगा— खासकर कश्मीरी मुसलमान के लिए।

अगले दिन रमज़ान जू रोज़ की तरह ही मस्जिद में निमाज पढ़ने के बाद सीधा दुकान पर आकर दूध बेचने लगा। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट का और बातों में विनोद का अभाव देखकर हीरालाल ने उसे चिकोटी काटी—"हाजी साहब की आज की संजीदगी देखकर लगता है कि कल से दूध के भाव बढ़ेंगे।"

रमज़ान जू के कान सहसा खड़े हो गए और उसकी नज़र ग्राहकों की भीड़ में मुस्कुराते हीरालाल पर पड़ी।

"पंडित जी, भाव की बात बाद में करेंगे। पहले यह बताओ कि तुम्हें कभी

मेरे एक सेर दूध में पाव भर से ज्यादा पानी मिला है?" उसने कड़क कर हीरालाल से पूछा।

भयभीत हीरालाल का सिर स्वतः इन्कार में हिला।

"अगर मैं हाजी होता तो हज बैत-उल् अल्लाह पर खर्च हुई रकम को पूरा करने के लिए एक सेर दूध में तीन पाव पानी नहीं मिलाता? मेरी किस्मत में शायद हज का मुकद्दस फरीज़ा अदा करना नहीं लिखा है। रमज़ान जू के लहजे में उदासी झलकती थी।

"इंशा अल्लाह, तुम्हारी हज की मुराद मौला ज़रूर पूरी करेगा– इसी बरस।"– गुलाम नबी नाम के एक खरीदार ने कहा।

"नब्ब साहब, एक मुसलमान के लिए हज से पहले जिन जिम्मेवारियों को पूरा करना लाजमी है, उनमें से मैंने आधी भी पूरी नहीं की है।" रमज़ान जू ने इंकिसारी से कहा।

"नहीं, नहीं, उनहत्तर तो खा चुके हो। अब तुम्हें बस एक और चूहा खाना है।"

दुकान के आगे खड़े लोगों ने ठहाका लगाया और हीरालाल के पीछे खड़े मोहनकृष्ण मास्टर जी की ओर देखा। वह फुलझड़ी छोड़कर अब मायूस और मायूस सूरत बनाए खड़ा था।

"मास्टर जी।" रमज़ान को जैसे अपनी नज़रों पर विश्वास नहीं हुआ–"अल्लाह कसम आज मैं बेताबी से तुम्हारा इंतजार कर रहा था और आज ही तुमने देर कर दी।"

रमज़ान जू अपनी जगह से उठकर मोहनकृष्ण के निकट आया और फिर उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे दुकान से दो तीन गज दूर ले गया।

"मुझे तुम से एक ज़रूरी बात करनी है।" रमज़ान जू ने धीरे से कहा"

"मिल गया मेरे मकान के लिए कोई खरीदार?" मोहनकृष्ण ने भी धीरे से पूछा।

"तुम्हारे घर की बात फिर कभी करेंगे। अभी मेरे अपने घर की बुनियाद हिलने लगी है।"

"क्या बात है?" मोहनकृष्ण ने भय और करूणा से रमज़ान जू की ओर देखा।

"मेरा छोटा लड़का फारूक पिछले बीस दिन से लापता है।"

मोहनकृष्ण भी परेशान हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि वह रमज़ान जू से क्या कहे।

"सुना है आजकल टेलिविजन का डायरेक्टर कोई पंडित है जो तुम्हारा दोस्त है।"

रमज़ान जू का तुक्का बिल्कुल बे-असर नहीं हुआ। मोहनकृष्ण ने कहा–"दोस्ती तो नहीं पर लस्सा कौल साहब से मेरी थोड़ी बहुत जान पहचान ज़रूर है। यह उसका बड़प्पन है कि इतना बड़ा अफसर होने के बावजूद जब भी मुझसे मिलता है तो तपाक से ही मिलता है।

"फारूक की गुमशदगी के बारे में टीवी पर ऐलान कराना है। तुम्हें मेरे साथ टीवी के डायरेक्टर साहब के पास चलना होगा।"

"अभी नौ बजे मुझे स्कूल जाना है। तुम एक और दो बजे के बीच वहीं आ जाना। वहीं से हम टीवी स्टेशन चलेंगे।"

"ठीक है।" कहकर रमज़ान जू वापस दुकान में आकर दूध बेचने लगा। मास्टर जी और हीरालाल के डोले उसने औरों से पहले भरे।

मोहनकृष्ण और रमज़ान जू ढाई बजे दूरदर्शन केन्द्र, श्रीनगर पहुंचकर वहां के सब से बड़े अफसर डी.डी.के. लस्सा कौल से मिले। मोहनकृष्ण ने अपना खास दोस्त कहकर कौल साहब को रमज़ान जू का परिचय दिया।

"जनाब, मैं बड़ी उम्मीदें लेकर आपकी खिदमत में हाजिर हुआ हूं।" रमज़ान जू ने डायरेक्टर साहब की मेज के सामने खड़े होकर हाथ जोड़ते हुए कहा।

"आप कोई खिदमतगार नहीं, मेरे मेहमान हैं। तशरीफ रखिए।" कौल साहब ने रमज़ान जू के साथ हाथ मिलाया और फिर हाथ पकड़कर उसे साथ वाली कुर्सी पर बैठाया।

कौल साहब से हाथ मिलाते ही रमज़ान जू पर इस लम्बे तगड़े खूबसूरत शख्स का सम्मोहन छा गया। रंग गोरा, सुनहरी भूरे बाल, चेहरे मोहरे में कठोरता और लोच का अजीब सा मेल, बोल-चाल में संजीदगी के साथ-साथ शराफत। शक्ल सूरत में पूरा अंग्रेज लेकिन तौर तरीके और मिज़ाज में सौ फीसदी कश्मीरी और नाम भी क्या? लस्सा। खालिस कश्मीरी नाम जो हिन्दू का भी हो सकता है और मुसलमान का भी। लस्सा कौल, लस्सा भट्ट, लस्सा खान, लस्सा डार, लस्सा हमाल। धत तेरे की। रमज़ान जू अपने को कोसने लगा कि एक मुअज़्ज़ इंसान के नाम के साथ उसके जेहन में एक ज़लील आदमी का नाम कैसे आया?

कौल साहब ने चाय मंगवाई और मोहनकृष्ण ने पूछा–"आप कहां से आए?"

"स्कूल से।"

"नहीं, मेरा मतलब है किस रास्ते से। लाल चौक से ही आए होंगे?"

"नहीं जनाब, हम डल गेट की तरफ से आए।" रमज़ान जू ने कहा।

"तो जाने दीजिए, मेरा ख्याल था कि आप प्लैडियम सिनेमा और रीगल सिनेमा के सामने से गुजरे होंगे और वहां का हाल बताएंगे।" मोहनकृष्ण और

रमज़ान से माफी मांग कर कौल साहब फोन पर कंट्रोल रूम में डी.आई.जी. पुलिस से बात करने लगा कि आज के अखबारों के मुताबिक कुछ "फंडामैंटलिस्ट ग्रुपों" ने सिनेमा मालिकों को जो धमकी दी थी उसके डर से वाकई शहर के सारे सिनेमा हाल बंद हो गए हैं। दूरदर्शन का रिपोर्टर पूरे शहर का दौरा करके यह "इन्फॉर्मेशन" लाया है कि सभी सिनेमा हालों के शटर बंद हैं और बाहर बोर्ड लगे हैं कि आज से सिनेमा हाल बंद रहेंगे। कंट्रोल रूम को यह सब बता कर डारेक्टर दूरदर्शन ने जानना चाहा कि इस सूरत हाल पर सरकार और पुलिस का क्या "कॅमेंट" है ताकि खबरों में हमारे नामानिगार की रिपोर्ट के साथ ऑफिशल वर्शन भी नशर किया जा सके। डी.आई.जी. ने क्या कहा, वह मोहनकृष्ण या रमज़ान जू कैसे जान पाते? लेकिन उन्हें यह समझने में मुश्किल नहीं हुई कि पुलिस का अफसर कोई बयान नहीं देना चाहता है। वह यह भी नहीं चाहता है कि दूरदर्शन सिनेमा हाल बंद होने की खबर ब्राडकास्ट करे। डायरेक्टर दूरदर्शन ने झुंझला कर फोन नीचे रखा और रमज़ान जू से पूछा—"कहिए मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूं?

रमज़ान जे ने फारूक की फोटो कौल साहब के सामने रखी। मोहनकृष्ण ने उसे सारी बात विस्तार से बताई।

"मैं आपके गम में शरीक हूं। आपने अच्छा किया जो बच्चे की तस्वीर ले आएं।" डायरेक्टर कौल ने रमज़ान जू से कहा—लेकिन जारी सरकारी हुकुम और रूल के तहत आप को पहले पुलिस में एफ.आई.आर. दर्ज कराना होगा। उसकी कापी या पुलिस की सर्टिफिकेट मिलने पर ही हम टीवी पर आप के लड़के की गुमशुदगी की इतलाह देकर ऐलान करेंगे कि अगर किसी शख्स को गुमशुदा लड़के के बारे में कोई इल्म हो तो वह आप से राबिता कायम करे। मैं समझता हूं कि पुलिस को यह एफ.आई.आर दर्ज करने में कोई पेरेशानी या झिझक नहीं होगी।" कौल साहब ने मुस्कुराते हुए कहा।

लेकिन लस्सा कौल साहब डायरेक्टर दूरदर्शन केन्द्र श्रीनगर ने गलत समझा था। रमज़ान जू और मोहनकृष्ण सबसे पहले पुलिस थाना कोठी बाग गए। लेकिन वहां उन्हें बताया गया कि वे अपने इलाके के थाने में रिपोर्ट लिखवाएं। तब वे अपने इलाके के शहीद गंज थाने में गए। वहां थानेदार ने यह नुक्ता उठाया कि लड़का चोटा बाजार से लाल बाजार जाते लापता हो गया है। इसलिए रिपोर्ट महाराज गंज थाने में दर्ज करानी होगी। अगले दिन सुबह सवेरे रमज़ान जू, अकेला महाराज गंज थाने पर गया। थाने के एस.एच ओ ने विस्तार से उसकी बात सुनी। फिर जिरह की कि लड़का नकदी या सोना चुराकर तो नहीं भागा है? या कहीं किसी लड़की का चक्कर तो नहीं है? यह जिरह कोई

चार बजे खत्म हुई। फिर भी थाने में कोई एफ.आई.आर दर्ज नहीं किया गया। एस.एच.ओ. ने रमज़ान को समझाया कि फारूक लड़का है। पुलिस में रिपोर्ट लिखवाने से उसकी बदनामी होगी। क्या पता वह किसी नेक काम या अंजीम मकसद के लिए ही कहीं गया हो।

थका मांदा रमज़ान जू जब घर लौटा तो दिन ढल चुका था। बुझे दिल से जब उसने घर के भीतर प्रवेश किया तो बल्ब की मद्धिम फीकी रोशनी में भी उसे जून का चेहरा चमकता नज़र आया। रमज़ान का मन भी बल्लियों उछलने लगा। लेकिन फिर भी चेहरे पर बरबस कठोरता पोतकर वह गरजा—"आ गया तेरा साहबजादा? बोल आज तक कहां था हरामजादा?"

"तुम से किसने कहा कि फारूक आ गया? हां, एक आदमी आया था। उसने बताया कि उनकी तन्ज़ीम ने फारूक को ट्रेनिंग के लिए भेजा है।"

"कौन सी तन्ज़ीम और कैसी ट्रेनिंग?" रमज़ान हक्का बक्का रह गया।

"वही तन्ज़ीम जो मुसलमान लड़कों को अपने पैसे पर इंजीनियरी और डाक्टरी ट्रेनिंग के लिए भेजती है।"

अवाक् रमज़ान जू पथराई आंखों से जून की ओर देखने लगा। जून की आंखें परितोष से मस्त थीं।

जानकीनाथ, उसकी पत्नी रूपा और उनकी छोटी बेटी कुसुम नाश्ता ही कर रहे थे कि ऊपर वाले कमरे से बसंती गवर्नमेंट गर्ल्ज़ स्कूल खानयार में टीचिंग का प्रैक्टिकल देने के लिए तैयार होकर उतरी। उसने हल्के गुलाबी रंग का नया सूट पहना था और माथे पर उस सूट के साथ मैच करती बिंदी लगाई थी। उसके कंधे से काले चमड़े का पर्स झोले की तरह लटक रहा था जिसमें रोल किए गए कागजों और चार्टों ने सिर बाहर निकाले थे। रूपा उसके लिए भी नाश्ता ले आई और बसंती खड़े-खड़े ही नानवाई की गर्म-गर्म रोटियों को चाय की घूंटों से जल्द-जल्द गले से उतारने लगी।

जानकीनाथ, रूपा और कुसुम, तीनों उसकी ओर एक टक देखने लगे। कुसुम की आंखें चमकने लगी कि दीदी ने उसी की राय मानकर उसकी पसंद का कपड़ा खरीदा था और उसके सुझाए लम्बर्ट लेन के टेलर से ही सूट सिलवाया था। सूट की कटिंग और फिटिंग उसकी फिगर पर क्या सजती है और कपड़े का हल्का शेड उसके गुलाबी रंग पर क्या फबता है। रूपा के माथे पर चिंता की अदृश्य रेखाएं उभर आई थीं कि इस लड़की को अब घर में ही बैठाए रखना, घर की इज्जत के लिए शर्म को ही नहीं, इस बेचारी की जवानी के लिए भी अन्याय की बात है। लेकिन जानकीनाथ का तना चेहरा बसंती के माथे पर बिंदी देखकर ढीला पड़ गया

था। राहत की सांस लेकर उसने प्यार से कहा—"बसंती बेटी, माथे पर बिंदी लगाकर तूने अच्छा किया।"

बसंती ने मुस्कुराकर आंखें झुका लीं।

जानकीनाथ ने पास ही पड़ा उर्दू अखबार उठाकर अपनी बात आगे बढ़ाई—"आज के अखबार में "दुखतराने मिल्लत" का ऐलान छपा है।"

"यह दुखतराने मिल्लत क्या बला है?" रूपा ने पूछा।

"दुखतराने ए मिल्लत का मतलब है मिल्लत की बेटियां। मिल्लत का मतलब है क़ौम, मुसलमान क़ौम।"

"मतलब टेरिरिस्टों की "वीमेन विंग।" बसंती फिर मुस्कुराई।

"हां बेटी। उन्होंने ऐलान किया है कि एक हफ्ते के अंदर-अंदर सभी मुसलमान औरतों को बुर्का पहनना चाहिए। सात दिनों के बाद जो औरत बिना बुर्के के चलती फिरती नज़र आएगी उसके चेहरे को तेज़ाब से जलाकर बदसूरत बनाया जाएगा। लेकिन साथ ही गैर मुस्लिम औरतों को, खासकर सलवार कमीज़ पहनने वाली पंडित लड़कियों को मशवरा दिया गया है कि वे माथे पर टीका या बिंदी लगाया करें ताकि गलती से मुसलमान समझकर उन पर तेजाब न छिड़का जाए।"

"मैने बिंदी अपनी मर्जी से लगाई, है, तेजाब के डर से नहीं।" मुस्कुराहट से फैले बसंती के होंठ फिर से भिंच गए। उसने दाहिने हाथ में थामी चाय की प्याली नीचे रखी और अंगूठे और तर्जनी से माथे पर चिपकाई बिंदी हटा दी। पर्स से नैपकीन निकाल कर मुंह पोंछा और बिना किसी से कुछ कहे चल पड़ी।

जानकीनाथ के नथुने क्रोध से फूल गए और रूपा की छाती आशंका से धक-धक करने लगी कोई जमाती मर्द या औरत बेचारी को बेपर्दा मुसलमान लड़की समझ कर तेजाब से जला न डाले। उसने डरते-डरते पति से पूछा—"बिना बिंदी के पंडित लड़कियों को क्या सचुमुच कोई खतरा है।"

"बहुत खतरा है। मगर तेरी बेटी को खतरों से खेलने में मज़ा आता है।"

"बचपना है उसका। अभी ज्यादा दूर नहीं निकली होगी। अगर निकल भी गई होगी तो स्टाप पर बस का इंतिजार कर रही होगी। मैं दौड़कर उसके माथे पर फिर से बिंदी लगाऊंगी।"

"इतनी हड़बड़ी की ज़रूरत नहीं। दुखतरान-ए-मिल्लत ने वार्निंग के साथ-साथ एक हफ्ते की मुहल्लत भी दी है।"

रूपा की जान में जान आई। लेकिन जानकीनाथ का क्रोध कम नहीं हुआ था। उसने बेटी का गुस्सा उसकी मां पर उतारा—"तूने ही बेटियों को इतनी ढील दी है कि बाप की बात उन्हें कील की तरह चुभती है। डरता हूं कि कहीं इनकी

मनमानी मेरी मान मर्यादा पर पानी न फेर दे।"

"आज मैं पहली बार तुम्हें अपनी बेटियों के लिए परेशान देखती हूं। कुछ पता है कि बसंती कितने बरसों की हो गई है? हमारी रिश्तेदारी में ही नहीं, अड़ोस-पड़ोस में भी बसंती की उमर की कोई लड़की अभी कुंआरी नहीं हैं"

कुसुम ने अनुमान लगाया कि उसके मां-बाप का संवाद जल्द ही ड्रामा के नियमों को लांघ कर मेलो ड्रामा का रूप लेगा। उसने मंच से प्रस्थान करना ही उचित समझा।

कुसुम के प्रस्थान के तुरंत बाद ही एक नए पात्र ने अप्रत्याशित रूप में प्रवेश किया। उसके मंच पर आते ही जानकी नाथ और रूपा अपने-अपने संवाद भूल गए। यह नया पात्र रूपा का भाई कुलगाम तहसील के हानंद चोवलगाम गांव का निवासी सालिग्राम भट्ट था। उसे देखते ही जानकीनाथ का मुंह टेढ़ा हो गया जो रूपा से छिपा नहीं रह पाया।

सालिग्राम ने भीतर आकर भाईसाहब जानकीनाथ को नमस्कार किया। अपना ब्रीफकेस नीचे रखा और उल्टे कदमों से वापस जाकर थ्री व्हीलर में रखी पेटी और पौटली लेकर लौटा। जानकी नाथ ने समझ लिया कि पेटी में सेब, पोटली में अखरोट और शायद और भी कुछ होगा। मुस्कुराहट से अपने छोटे साले का स्वागत करते हुए उसने रूपा से कहा—"सुबह खिड़की के खुले पन्ने पर बुलबुल को चहकते देखकर मैंने कहा था कि आज कहीं दूर से अपना ही कोई आने वाला है?"

रूपा ने "हां" या "ना" कुछ भी नहीं कहा। वह सालिग्राम से भाभी और भतीजों का हालचाल पूछने लगी।

"दो-चार दिन तो रहोगे ना?" जानकीनाथ ने साले से पूछा।

'इतनी फुर्सत कहां है भाईसाहब। डिविजनल कमिश्नर के दफ्तर में थोड़ा-सा काम है। अगर काम बन गया तो तीन बजे की बस से ही चला आऊंगा।"

"अगर नहीं बना तो?"

"तो भी छह बजे की बस से वापस जाऊंगा। क्या पता कल क्या होगा?"

"क्या होगा?" रूपा सहम गई।

"रात को शबीर शाह जम्मू श्रीनगर सड़क पर पकड़ा गया।"

"लेकिन शहर में तो अभी तक सब कुछ ठीक-ठाक है।"

जानकीनाथ को सालिग्राम की बात पर यकीन नहीं आया।

"शायद अभी यहां खबर नहीं पहुंची होगी।"

"यह शबीर शाह कौन है?"

"पीपुल्ज लीग का प्रेज़ीडेंट। अलगाववादियों का बहुत बड़ा लीडर।" रूपा के सवाल ने जानकी नाथ को अपनी जानकारी दिखाने का मौका दिया।

बसंती और कुसुम कहां है?" सालिग्राम ने रूपा से पूछा।

"कुसुम यहीं है। लेकिन बसंती खानयार गर्ल्ज स्कूल में लेसन देने गई है।" जानकीनाथ बोला।

"आपने उसे क्यों जाने दिया?" सालिग्राम ने परेशान होकर कहा।

"आज उसका जाना ज़रूरी था। प्रैक्टिकल एग्ज़ाम चल रहे हैं। वैसे यहां हालत नार्मल ही है और बसंती ज्यादा दूर भी नहीं गई है।" रूपा पर नज़र पड़ते ही जानकीनाथ खामोश हो गया। फिर पत्नी का इशारा समझकर उसने बात बदली—"खैर तुम भाई-बहन बाते करों, मैं दस-पंद्रह मिनट में लौटता हूं।"

"देखिए भाई साहब, घर में जो साग-भात बना होगा, मैं वही खाऊंगा। मेरे लिए मांस, कीमा, कलेजी लाने की कोई ज़रूरत नहीं है।

"अरे ओ मेरे भोले ग्रामवासी साले, ग्राम। मैं रेंज ऑफिसर अशरफ के घर से ऑफिस फोन करके छुट्टी लूंगा और फिर तुम्हारे साथ बैठकर गप्पें लड़ाऊंगा।"

जानकीनाथ घर से निकलकर मांस खरीदने कसाई की दुकान पर न जाकर सचमुच रेंज ऑफिसर अशरफ के घर चला गया। असल में उसके स्वर्गवासी पिता माधवजू ने उसे बचपन में ही गुरु मंत्र दिया था कि पहले कुंजड़ा पीछे कसाई। अर्थात् अगर कुंजड़े से सब्जी खरीदनी हो तो औरों से पहले पहुचना चाहिए। लेकिन अगर कसाई से मांस खरीदना हो तो वहां दूसरों के बाद जाना चाहिए। कसाई दुकान खोलकर सबसे पहले मरियल सड़ियल भेड़-बकरियों का गोश्त बेच डालते हैं और उसके बिक जाने पर ही खूंटी से लटके असल नर या खस्सी भेड़ बकरों का मांस बेचना शुरू करते हैं।

जानकीनाथ को देखते ही मुहम्मद अशरफ ने उसके आने का प्रयोजन समझ लिया और रस्मी तौर पर उसके अहलो अयाल की खैरियत के बारे में पूछकर टेलिफोन उसके सामने रखा। जानकीनाथ को आते ही फोन उठाने में शर्म महसूस हुई। फोन को हाथ लगाने के बजाय वह सोचने लगा कि शिष्टाचार निभाने के लिए वह कौन-सी बात छेड़े कि मुहम्मद अशरफ ने खुद ही उसकी मुश्किल आसान कर दी। बोला—"शबीर शाह को गिरफ्तार किया गया है।"

"कब?" जानकीनाथ ने आश्चर्य प्रकट किया।

"आज रात को। रामबन के नज़दीक। अब देखना पब्लिक का गुस्सा कैसे भड़क उठेगा।"

"हां! हड़ताल होगी। कर्फ्यू लगेगा। जाने कितने घर जलेंगे। कितने लोग मरेंगे?" जानकीनाथ ने मन का भय प्रकट किया।

"जो होना होगा, वह होकर रहेगा।" मुहम्मद अशरफ ने कहा और जानकीनाथ

की प्रतिक्रिया जानने के लिए उसकी ओर देखने लगा। लेकिन जब उसके कोरे कागज़ जैसे चेहरे से वह कुछ भी पढ़ नहीं सका तो उसने अपने ही मुंह से दो-एक शब्द और निकाले "हिंदुस्तान ज़रूर एक बहुत बड़ा ताकतवर मुल्क है। लेकिन वह कब तक हम कश्मीरियों के सिर पर चढ़ा रहेगा। वैसे हिंदुस्तान का भी कोई कसूर नहीं है। सारा कसूर हमारे अपने शेख अब्दुल्लाह का है। फिर भी एक न एक दिन हिंदुस्तान को कश्मीर से अपना बोरिया-बिस्तर गोल करके अपनी फौजों और चमचों समेत यहां से दफा होना ही होगा। इंशा अल्लाह।"

जानकीनाथ का भय बुखार की तरह बढ़कर उसके चेहरे की लाली और शरीर की कंपकंपी से प्रकट होने लगा। मुहम्मद अशरफ ने ताड़ लिया और लहजा बदलकर बोला—"गोली मारिए हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों को। कुछ और सुनाइए पंडित जी?"

"क्या सुनाऊं अशरफ साहब। अपनी बेटी के बारे में परेशान हूं।"

"क्यों क्या बात है?" मुहम्मद अशरफ ने हमदर्दी दिखाते हुए पूछा।

"इन्हीं दिनों बी.एड़ का एग्ज़ाम दे रही है। अभी कुछ देर पहले प्रैक्टिकल के लिए खानयार गर्ल्ज़ स्कूल चली गई।"

"आप इत्मीनान रखिए। आपकी बेटी सही सलामत घर वापस आएगी।"

"नहीं, मुझे उस बात की परेशानी नहीं है। सैंतालिस, पैंसठ और इक़हत्तर में किसी ने हम पंडितों की बहू-बेटियों को नहीं छेड़ा तो आज क्यों छेड़ेंगे? मेरी परेशानी कुछ दूसरी है।"

"कौन-सी?"

"सुना है एज्युकेशन महकमें में तीन-साढ़े तीन सौ टीचर्स के पोस्ट भरे जाने वाले हैं। आप चाहें तो हमारी बेटी की भी अपार्टमेंट हो सकती है।"

"मगर मेरा महकमा तो जंगलात का है।"

"महकमा तालीम के मालिक भी तो आपके ही दोस्त या रिश्तेदार होंगे।"

"नहीं, जहां तक मुझे याद है, मेरा कोई भी दोस्त या रिश्तेदार एज्युकेशन डिपार्टमेंट में अफसर तो क्या, चपरासी भी नहीं है।"

"अशरफ साहब, अगर आप किसी को सिर्फ एक टेलिफोन ही करेंगे तो काम बन जाएगा। आपका हुकुम कौन टाल सकता है?"

पढ़े-लिखे पंडित से अपने बड़प्पन का बयान सुनकर मुहम्मद अशरफ को सचमुच अपनी अहमियत का एहसास हो गया। उसने जानकीनाथ को आश्वासन दिया कि जैसे भी हो वह उसकी बेटी को सरकारी मास्टरी दिला देगा। जानकी नाथ ने मुस्कुराते हुए आभार प्रकट किया और फिर फोन उठाकर अपने अफसर

को सूचित किया कि इलाके में माहौल खराब हो जाने की वजह से वह आज दफ्तर नहीं आ सकेगा।

मुहम्मद अशरफ के घर से निकल कर जानकीनाथ सोचने लगा कि अशरफ का अल्लाह सचमुच जानकीनाथ के भगवान से अधिक बलवान है। ऊंचे सेकेंड डिविजन में बी.ए. पास करके भी वह ए.जी.ऑफिस में एक साधारण ऑडिटर के रूप में काम कर रहा है और वह अशरफ उल मखलूकात सिर्फ मैट्रिक पास होकर भी फारेस्ट डिपार्टमेंट में रेंज ऑफिसर बना है। आज या कल डी.एफ.ओ. ही क्यों कन्सर्वेटर के ऊंचे ओहदे तक पहुंच जाएगा। बकवास करता है कि उसका कोइ दोस्त या रिश्तेदार एज्युकेशन डिपाटमेंट में काम नहीं करता है। साला अपने बहनोई के भाई नजीर अहमद को भूल ही गया जो डायरेक्टर एज्यूकेशन का पी.ए. है।

गली से निकल कर जानकीनाथ जब बड़े बाजार में आया तो उसने देखा कि अक्सर दुकाने बंद हो गई हैं और कुछ दुकानों के शटर गिराए जा रहे हैं। सौभाग्य से नानवाई और वीडियों कैसेट वाले की तरह ही मीट वाले कसाई की दुकान भी खुली थी। तगड़े और ताज़ा जिबह किए भेड़ के कंधे और अगली रान से तीन पाव मांस खरीदकर जानकीनाथ तेज़ तेज़ कदमों से घर की ओर भागने लगा।

घर पहुंचकर उसने पाया कि उसकी पत्नी और साला दोनों बेताबी से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मांस का लिफाफा पत्नी को थमाकर उसने साले को सचेत किया—"शबीर शाह की खबर यहां भी पहुंच गई सभी दुकानें बंद हो गई।"

"मीट की दुकान को छोड़कर।"सालिग्राम ने मुस्कुराकर कहा।"

"नानवाई की दुकान भी खुली थी।"

"वीडियों कैसेट वाली भी।" सालिग्राम वैसे ही मुस्कुरा रहा था।"

जानकीनाथ को आश्चर्य हुआ कि इस गंवई गंवार को घर बैठे ही बाजार के हालात का पता कैसे चला। लेकिन सालिग्राम ने उसकी जिज्ञासा को तुरंत शांत किया "आप हैरान क्यों हो गए भाई साहब? मेरे पास कोई जाम ए ज़म नहीं है। बस थोड़ा-सा तजुर्बा है। अनंतनाग, कुलगाम, शुपयन, पुलवामा में जब भी हड़ताल होती है, मीट और वीडियो कैसेटों की दुकानें आमतौर खुली रहती है।"

"क्यों?" रूपा ने भी जिज्ञासा प्रकट की।

"बात सीधी है दीदी। हड़ताल और कर्फ्यू में घर बैठे-बैठे आदमी तंग आ जाता है। इस हालत में उसका लज़्ज़तदार खाने और मजेदार फिल्मों से दिल बहलाना कुदरती बात है। खासकर जब सिनेमाहाल बंद हों। सिनेमा घर बंद होने से वीडियों स्टाल 'इसेशल घर सर्विस" बन गए है। ये न "आफिशल कर्फ्यू" और न ही "सिविल कर्फ्यू" में बंद रह सकते हैं।"

तीनो हंसने लगे। सालिग्राम ने उठकर जूता पहना—"मैं सड़क तक जाकर देख आता हूं कि बसें चल रही है या नहीं।"

सालिग्राम घर से निकला तो रूपा ने पति से कहा— "भाई राज कह रहा था कि अब हमें बसंती के हाथ पीले करने ही चाहिए। हालात दिन-ब-दिन बिगड़ते ही जा रहे हैं। उसकी नज़र में एक लड़का है। उनके पड़ोसी राधाकृष्ण भट्ट को शायद तुम भी जानते हो। उसी का तीसरा बेटा है। एम.काम. है।"

"एम.काम. होने से क्या होता है? है तो गांव वाला ही।"

"शहर वाले को मैं भुगत चुकी हूं।" पति पर वापस वार करने के साथ ही रूपा ने अपनी बात भी स्पष्ट की—"लड़का ज़रूर गांव का है मगर नौकरी महानगर दिल्ली में करता है। किसी बड़ी कंपनी में एकाउंटस ऑफिसर है।"

जानकीनाथ को लगा कि प्रस्ताव बुरा नहीं है। लेकिन, ऑडिट ऑफिसर किसी जूनियर के नोट की तुरंत "ओके" कैसे करता? उसने एक अहम मुद्दा उठाकर साले के सुझाव को रद्द कर दिया—"बेचारी बसंती को पहले पढ़ाई पूरी करने दो। फिर उसकी शादी के बारे में सोचेंगे।"

सालिग्राम आधे घंटे बाद ही मेन रोड़ से यह सूचना लेकर लौटा कि सुबह बसें चल रही थीं लेकिन अब उनका आना-जाना भी बंद हो गया। हां टैक्सी आटो रिक्शा रोज़ की तरह ही चल रहे हैं।"

"तुम्हें भी आटो में ही डिविजन कमिश्नर के दफ्तर जाना पड़ेगा।" जानकीनाथ ने साले से कहा।

"आटो तो क्या, मैं टैक्सी लेकर भी जाता भाई साहब। मगर वहां जाकर करूंगा क्या? न कोई अफसर और न कोई मातहत ही ड्यूटी पर दफ्तर आया होगा।"

"बसंती कैसे आएगी?" रूपा ने आशंकित होकर पूछा।

"आटो में। मामाजी कह रहे हैं कि आटो चल रहे हैं।" कुसुम बोली। मामाजी से मिलने वह ऊपर की मंजिल से निचली मंजिल में आ गई थी।

"आटो की क्या ज़रूरत है? पैदल आएगी। यहां से खनयार दूर ही कितना है?" सालिग्राम ने कहा।

"बसंती शहर में जन्मी पली लड़की है। गांव की कोई छोकरी नहीं कि खेतों के बीच मेंड-मेंड में चलते पंद्रह मिनट में पांच कोस तै कर ले।"

रूपा ने ताड़ लिया कि जानकीनाथ उसके मायके वालों की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर व्यंग्य करने का कोई अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहता है। वह पति से बोली—"बसंती तुम्हारी तरह सौ फीसदी शहरी नहीं है। उसमें पचास फीसदी रक्त

मांस मेरा, मतलब गांव का है। वह पैदल चल सकती है।"

"मैंने कब कहा कि पैदल चलकर लंबा फासला तै करने में कोई बुराई है। यही तो गांव वालों में खूबी है जिससे वे हम शहर वालों को पछाड़ सकते हैं"

पत्नी की बात का जवाब देकर जानकीनाथ साले को समझाने लगा—"नहीं भाई राज जी, मैं मज़ाक नहीं कर रहा हूं। मान लो हालात इससे ज्यादा खराब हो जाएं और भट्टों के लिए कश्मीर से भागने के सिवा और कोई चारा न रहे। उन हालातों में जब तक शहर के पंडितजी टैक्सी, टैंपो या ट्रक ढूंढते रहेंगे तब तक गांव की भट्ट-भट्टनियां पीर पंचाल, पर्वत, खूनी नाला, पतनी टॉप पार करके उधमपुर जम्मू पहुंच गए होंगे।"

"नहीं भाई साहब, नहीं। आप जो समझ रहे हैं गलत समझ रहे हैं।" सालिग्राम के ऊंचे स्वर में व्यथा का धीमा स्वर भी मिलता था जिससे जानकीनाथ की भोली-भाली मुखाकृति के पीछे छिपी शरारत लुप्त हो गई। वह गंभीरता से साले की बात सुनने लगा।

"भाई साहब, आप शहर वालों के पास जो कुछ है उसे आप अंदर की जेब में रखकर किसी समय भी भाग सकते हैं। मेरा मतलब पास बुक से है जिसमें आपकी सारी दौलत, पीढ़ियों की जमा पूंजी दर्ज है। हम गांव वाले अपने खेत खलिहान, बाग-बगीचे, पेड़, पशु, बकरी, गाय और उसकी दो महीने की बछिया, महकते सेब, चमकते चेरी गिलास, लाल गाल आड़ू, कुरकुरे अखरोट, मुरमुरे भुट्टे लेकर कहां जाएंगे? कैसे जाएंगे? और इनके बिना कहां रहेंगे? कैसे रहेंगे?— पावों में दौड़ने भागने की अपार शक्ति होते हुए भी हमने इस सबके साथ यहीं जीना है। यहीं मरना है।"

सालिग्राम के दर्द ने जैसे घर के पूरे वातावरण को घेर लिया। अजीब सी खामोशी छा गई जो काफी देर के बाद तब टूटी जब कमरे के दरवाजे के दोनों पट फट से खुले और नए सूट के गुलाबी सौंदर्य के बीच दमकता रक्तिम चेहरा लेकर बसंती खट से कमरे के भीतर आई।

"मामाजी, आप।" सालिग्राम को देख कर बसंती का चेहरा और भी दमक उठा।

"तू आई कैसे?" रूपा ने पूछा।

"आटो में असल में नीरजा और उसके भैया आटो लेकर पहले ही स्कूल के बाहर मेरी प्रतिक्षा कर रहे थे। पहले मुझे यहां छोड़ा फिर अपने घर चले गए।"

"अगर मुझे ठीक याद है, उस लड़की का भैया वही लड़का तो नहीं था जो कोई पंद्रह दिन पहले तुम्हारे साथ यहां आया था" जानकीनाथ ने दिमाग पर कुछ जोर डालते हुए कहा।

"हां डैडी, आपको सब कुछ ठीक-ठीक याद है। यह वही लड़का था जो आज से पूरे पंद्रह दिन पहले चौदह सितंबर को मेरे साथ यहां आया था और आपने उसे घर के अंदर आने नहीं दिया था। आपको सब कुछ ठीक-ठीक याद है।"

जानकीनाथ भौंचक्का होकर रह गया। वह समझ गया कि बसंती ने अपनी बात से उसके अनुमान की पुष्टि नहीं की है बल्कि सबके सामने पिता के प्रति अपनी अवज्ञा प्रकट की है। उसने भौंह चढ़ाकर बसंती की ओर देखा। लेकिन बसंती ने उसकी ओर नहीं देखा। वह अपने मामा के साथ घुल-मिलकर जाने क्या बातें कर रही थी। कुछ देर तक सारी स्थिति पर विचार करने के बाद जानकीनाथ इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बेटी उम्र से कुछ ज़्यादा बड़ी हो गई है। इससे पहले कि यह कोई गुल खिलाए इसकी शादी कर ही देनी चाहिए। सालिग्राम आज अपने गांव वापस नहीं जा सकता। वह शाम को अकेले में उससे राधाकृष्ण भट्ट के बेटे के बारे में सारी जानकारी हासिल करेगा और अगर भगवान ने चाहा तो रिश्ते की बात भी पक्की करेगा।

उसी समय बाहर से ज़ोरदार शोर सुनाई दिया। जानकीनाथ को समझते देर नहीं लगी कि कोई नया हंगामा हुआ है। हां, नारेबाजी हो रही थी और नारेबाजों पर शायद पुलिस पिल पड़ी होंगी। रूपा ने डर के मारे कमरे की सारी खिड़किया बंद कर दी और बिजली की बत्ती जलाने के बाद बसंती को गले से लगाकर रोनी लगी—"बेटी, मां शारिका की कृपा से तू दो मिनट पहले ही घर पहुंच गई। माता हर आपदा में इसी प्रकार तेरी रक्षा करें।"

रूपा ने आर्शीवाद देकर ज्यों ही बसंती का माथा चूमा, लाइट चली गई और बंद कमरे में अंधेरा हो गया। जानकीनाथ को साले की चकोरी काटने के लिए एक और मौका मिल गया—"मेरे साले राज, तुमने मेरे शहर को भी अपना गांव बना दिया।"

रूपा के सिवा सभी हंसने लगे। एक अजीब-सा विचार उसके मन को पेरशान करने लगा था जिस समय उसने बसंती का माथा चूमा उसी समय अंधेरा छा गया। दबे होंठों से वह जगदंबा चक्रेश्वरी से प्रार्थना करने लगी कि हे मां भगवती, मेरी बेटियां तेरी शरण हैं। सबके साथ उनका भी मंगल हो। सर्व मंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके शरण्ये खयम्बके गौरि नारायणि नमोस्तुते!

क्रीसेंट पब्लिक स्कूल के एक छोटे से कमरे के बाहर एडमिनिस्ट्रेटस ऑफिसर की तख्ती लगी है और भीतर मोहनकृष्ण भान अपना सिर थामे बैठा है। जब्बार नज़ार उसका पड़ोसी था और इसी बात का लिहाज करके उसने उसे स्कूल के लिए डेस्क और बेंच बनाने का आर्डर दिया था। जब्बार अच्छा कारीगर था। उसका सहायक बशीर भी बुरा नहीं था। लेकिन जाने क्यों वह पिछले कुछ दिनों से अपने

चचेरे भाई असद नजार के पागल छोकरे "साहब' को भी अपने साथ लाने लगा था। मोहनकृष्ण ने जब्बार से कहा था कि इस स्कूल में लड़कों के साथ-साथ लड़कियां भी पढ़ती हैं और पढ़ाने वाले में मर्दों से ज्यादा औरतें ही हैं। इसीलिए साहब का काम के बहाने स्कूल में दाखिल होना किसी अप्रिय स्थिति का कारण बन सकता है। लेकिन जब्बार ने गरीबी और फाकाकशी की दुहाई देकर मोहनकृष्ण के मन में बिगड़े भटके "साहब" के लिए सहानुभूति और दया उत्पन्न थी। आज जब्बार बशीर को लेकर जाने कहां चला गया था और यहां "साहब" को तख्तों पर रंदा मारने के लिए छोड़ गया था। इसलिए मोहनकृष्ण पर अपने काम के अलावा साहब पर चौकसी रखने का बोझ भी आ पड़ा था। असल में उसके आज के दिन की शुरूआत ही गलत हुई थी। शांता से फजूल के बकबक के कारण ड्यूटी पर जाने में देर होने से मन तो खराब हुआ ही था, लेकिन रास्ते में जो दृश्य देखना पड़ा था उससे जैसे पूरे शरीर का खून सूख गया था। हरिसिंह हाईस्ट्रीट में दुकानें खुली थीं। दुकानों में और दुकान के बाहर फुटपाथ पर बैठे, खड़े और चलते लोग नजर आते थे। लेकिन दोनों तरफ की दुकानों के कतारों की बीच चौड़ी सड़क सुनसान थी जिसके बीचों बीच कोट पतलून नेकटाई पहने किसी अधेड़ की लाश दोनों हाथ फैलाए पड़ी थी। मोहनकृष्ण दुकानों के साथ-साथ फुटपाथ पर चलकर ओल्ड हॉस्पिटल रोड तक पहुंच गया। वहां उसे मालूम हुआ कि लाश रिटायर्ड सेशन जज नीलकंठ गंजू की है जिसे कुछ देर पहले तीन नौजवानों ने दिन के उजाले में गोलियों चलाकर मारा था।

बीच सड़क पर सूट-बूट पहने आदमी की लाश बाहें फैलाए पड़ी हो और सड़क के किनारे खड़े तमाशबीनों में से एक बंदा भी उसके पास फटकता तक न हो— मोहनकृष्ण को यह स्थिति भयंकर और त्रासद ही नहीं, अनहोनी भी लगी थी। ठीक है इस आदमी ने ही सैशन जज की कुर्सी पर बैठकर अलगाव का झंडा फहरा कर बम बंदूक का दौर शुरू करने वाले मकबूल बट को हत्या के आरोप में फांसी की सज़ा दी थीं। लेकिन सज़ा देने वालों ने हाईकोर्ट, सुप्रीमकोर्ट और यहां तक कि राष्ट्रपति भी एक तरह से शामिल थे। इतना ही नहीं। क्या हत्या का केस बनाने वाले पुलिस के अहलकारों, इस्तगासा के वकीलों और गवाहों का भी मकबूला को फांसी दिलाने में हाथ नहीं था? इनमें से अधिकतर मुसलमान ही थे। फिर अकेले नीलकंठ गंजू से बदला क्यों लिया गया? शायद इसलिए कि वह कमजोर था और कमजोर इसलिए था कि जिस पंडित फिरके से वह संबंध रखता था, उस फिरके के पास न कोई पालिटिकल पावर है और न कोई न्यूसेंस वैल्यू। ठीक है जिन्होंने गोली चलाई उन्होंने अपनी

समझ के अनुसार दीन और मिल्लत के लिए बहुत बड़ा कारनामा अंजाम दिया होगा। लेकिन जो लोग दोनों तरफ के फुटपाथों पर खड़े यह तमाशा देख रहे थे, क्या उनमें से कोई भी मरे आदमी की जान-पहचान का नहीं रहा होगा? हरिसिंह हाई स्ट्रीट तो बज़ी की दुकानों से भरा पड़ा है। क्या किसी दुकान के भीतर कोई बज़ाज या दुकान के बाहर खड़ा कोई राहगीर लाश को दो गज कपड़े से ढांप नहीं सकता था? क्या लोग सचमुच इतने बेशर्म, बेदर्द और बेगैरत हो गए हैं? दिल तो पत्थर बना है लेकिन दिमाग को क्या हुआ?

...दिमाग में सबके भूसा भरा है। खासकर इसी स्कूल की उस्तानियों-मैडमों के, जिनके एटेंडेंस रजिस्टर इस समय उसके पास चेक करने के लिए पड़े थे। यह नसीमा जी का एल.के.जी ए. का रजिस्टर है। लगता है मैडम ने बच्चों की एटेंडेंस मार्क नहीं की है, अपने दिमाग का सारा भूसा रजिस्टर पर बिखेर दिया है। पहले कहीं "ए" लिखा है और फिर कलम चलाकर उसे ही "पी" कर दिया है। कहीं "पी" को इस तरह "ए" में बदल दिया है कि वह "आर" बन गया है। "आर" माने रब्बिश, कूड़ा-कचरा बकवास और यह है मनीषा जी का रजिस्टर, एल.के.जी. बी. सेक्शन का। साफ सुथरा, न कहीं प्रजेंट को अब्सेंट किया गया है और न कहीं एब्सेंट को प्रजेंट। अलबत्ता सितंबर के इक्तीस दिन दिखाए हैं और बारह-तारीख इतवार की भी हाजिरी लगाई है। क्या सीख लेंगे इनकी क्लासों के बच्चे? लेकिन यह भी चार-पांच सौ रुपये के वेतन पर सिखा ही क्या सकती हैं?

अचानक फाता के चीखने-चिल्लाने की आवाज़ आई और मोहनकृष्ण का बेकाबू भटकता दिमाग एकदम ठिठक या। फाता स्कूल की प्रिंसिपल की चपरासन थी और स्कूल का सारा स्टाफ बेगम साहिबा से ज्यादा उसी से डरता था। मोहनकृष्ण तुरंत अपने कमरे से निकल कर बरामदे में आया।

"क्या बात है फातिमा बीबी?" मोहनकृष्ण ने आग बबूला हुई फाता से पूछा।

"मुझसे क्या पूछते हो? यह जो चिकुट चिट्ठा छोकरा चुप्पी मारकर बैठा है इससे पूछो।"

मोहनकृष्ण ने सिर झुकाकर बैठे असद नजार के बेटे "साहब" पर उड़ती नज़र डाली और फिर फाता से पूछा—"इससे क्या पूछू फातिमा बीबी?"

"पूछो यह यहां रंदा मारने आया है या चांदमारी खीसने?"

"मैं समझा नहीं।"

"एक चूहा बेचारा कहीं छिपने के लिए बरामदा पार कर रहा था कि किसी शिकारी की इस नाजायज़ औलाद ने अपनी जगह से ही छेनी मारी और बेचारे चूहे को वहीं ढेर कर दिया।"

"चूहे को मारना सवाब है।" साहब ने सिर उठाकर दृढ़ स्वर में कहा और दांत निपोरे।

"सवाब तब होता जब उसने तेरे बाप की नाक और तेरी मां की छातियां कुतर कर खाई होती।"

"कहां है वह चूहा?" मोहनकृष्ण ने पूछा।

"तुम भी बेवकूफ की बात करने लगे पंडित जी। लाश चाहे आदमी की हो या चूहे की, उसे लोगों के नजारे के लिए बीच रास्ते नहीं रखा जाता। मैंने उसी वक़्त चौकीदार आहदू को बुलाकर बेजान को नाले में फिकवा दिया।"

मोहनकृष्ण अपने बेहूदा सवाल से खुद ही खिसिया गया था। फाता की बात सुनकर जैसे उस पर पागलपन सवार हुआ। उसने झपट कर "साहब" के हाथ से रंदा छीन लिया और उसके गालों पर जोर से दो चार थप्पड़ जमा दिए। इससे भी जब-जब दिल ठंडा नहीं हुआ तो लाते मार-मार के उसे स्कूल के गेट से बाहर निकाल दिया।

लेकिन लतखोर साहब बूढ़ी टांगों के मरियल वारों से क्या, गालियों से भी डरने वाला नहीं था। गेट के बाहर आते ही वह ज़ोर-ज़ोर से अपना मनपसंद गाना गाने लगा—

दिल्ली में आई आंधी।
फूट पड़ी इंदिरा गांधी।।
इंदिरा गांधी ने चलाया तीर।
नाचने लगा शेरे कश्मीर।।
कश्मीर में हुआ अंधेरा।
दीया फट जाए इंदिरा तेरा।।

घटना की रिपोर्ट देकर जब मोहनकृष्ण प्रिंसिपल के कमरे से निकलने लगा तो मैडम ने उसे रोका—"ज़रा बैठिए। आप से एक बात करनी है।"

"फरमाइए।"

"असल में मीर साहब को आपसे कोई ज़रूरी बात करनी हैं। स्कूल बंद होने पर आप मेरे साथ ही चलेंगे।"

"आपका फरमाना वाजिब है, मैडम। लेकिन अगर मैं वक़्त पर घर नहीं पहुंचा तो घर वाले परेशान हो जाएंगे। आजकल के हालात से आप अच्छी तरह वाकिफ हैं।"

"आप घर वालों को बता दीजिए कि आप आज देर से आएंगे।" प्रिंसिपल मिसेज़ शमीमा मीर ने फोन मोहनकृष्ण के आगे कर दिया।

"मेरे घर में फोन नहीं है मैडम।"

"कोई बात नहीं। चपरासी गुलाम मुहम्मद अपने घर जाने से पहले आपके घर वालों को खबर कर देगा।"

मोहनकृष्ण बिना कोई प्रतिवाद किए अपने कमरे में चला गया।

स्कूल बंद होने पर बेगम साहिबा अपने कमरे से निकलकर गाड़ी में बैठी और फाता को मोहनकृष्ण को बुलाने भेजा। मोहनकृष्ण आकर ड्राइवर के साथ फ्रंट सीट पर बैठने वाला ही था कि शमीमा जी ने थोड़ा सरक कर अपने पास ही उसके बैठने के लिए जगह बनाई—"आप यहां बैठिए।"

मोहनकृष्ण ने आदेश का पालन किया और गाड़ी चल पड़ी। शमीमा जी मोहनकृष्ण के चेहरे का गौर से जायज़ा लेने लगी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि हल्के-फुल्के अंदाज में वज़नदार बात कहने वाला यह पंडित जिसकी बोलचाल में समझ और तजुर्बा ही नहीं तमीज़ और सलीका भी है आज इस तरह गुमसुम क्यों है?

"क्या बात है भान साहब? आप उदास नज़र आते हैं।" शमीमा से पूछे बिना उससे रहा नहीं गया।

"पता नहीं क्यों, कुछ डर-सा महसूस हो रहा है।"

"डर नहीं, दहशत कहिए।"

"आपने सही फरमाया बेगम साहिबा। इसे दहशत ही कहेंगे। हालात इस कद्र बिगड़ गए हैं कि पता नहीं अगले पल क्या होगा।"

"भान साहब, यह भी पता नहीं कि बस या टैक्सी में आपकी साथ वाली सीट पर बैठा आपका साथी कब फिरन के नीचे से क्लाशनिकोफ निकाल कर आपको वहीं खत्म कर दे।"

मोहनकृष्ण के मन में आया कि हरिसिंह आई स्ट्रीट के बीच पड़ी नीलकंठ गंजू की लाश की बात शमीमा जी से कहें। लेकिन जाने क्यों उससे यह बात कही गई।

"भान साहब आप फिक्र न कीजिए। यही ड्राइवर इसी गाड़ी में आपका सही सलामत वापस आपके घर पहुंचा देगा।"

मोहनकृष्ण ने कुछ नहीं कहा। गाड़ी में बेगम शमीमा मीर के घर "मीर मंजिल" पहुंचने तक वह खामोश बैठा रहा।

मीर साहब ने मोहनकृष्ण पर अपना अधिकार जामते हुए उसे कड़ी-कड़ी सुनाई—"कॉमरेड भान साहब, कम्युनिस्ट होना अपनी जगह ठीक है। अगर अपने बाल बच्चों के बारे में भी कुछ सोचना चाहिए।"

"मैं कम्युनिस्ट मतलब पार्टी मेंबर न पहले था न अब हूं। हां मार्क्सइज़्म से

ज़रूर मुतासिर था। मगर इधर मार्किस्टों कम्यूनिस्टों के तौर-तरीके देखकर मेरा मन उचटने लगा है।"

"बिल्कुल सही बात है। अवाम का खून चूसने वाले भी मार्क्स के साले बनते हैं जिससे मार्क्सइज़्म नज़रिये से ही नफरत हो जाती है। अलामा ने क्या खूब कहा है, "बाइज़ सबूत लाया है मय के जवाज़ में, इकबाल की यह ज़िद है कि पीना भी छोड़ दे।"

"कहिए क्या हुक्म है?" मोहनकृष्ण ने घड़ी देखी। पांच बज चुके थे।

"आपको मालूम है कि स्कूल टीचरों की तकरीबन तीन सौ असामियां इसी फाइनेंशियल इयर में पूरी होंगी।"

"अखबारों में इस बारे में कुछ नहीं आया है।"

"सब कुछ अखबारों में नहीं आता है।" मीर साहब ने गुस्से में कहा और फिर लहजे को कुछ नर्म करके बोला, "आपकी लड़की बी.एड कर चुकी है ना?"

"नहीं मीर साहब, बी.एड का एग्ज़ाम दे रही है। थ्योरी पेपर हो चुके। इन दिनों प्रैक्टिकल लेसन चल रहे हैं।"

"बात को ख्वामखाह तूल क्यों दे रहे हो? सीधे लफ्जों में कहो कि बी.एड कर चुकी है। यह ऐप्लिकेशन फार्म लो और मुझे भरकर दो।" मीर साहब ने ब्रीफकेस से एक फार्म निकालकर मोहनकृष्ण के हाथ में रखा।

"आपका बहुत-बहुत शुक्रिया मीर साहब।" मोहनकृष्ण ने गदगद होकर कहा—"मै आज ही नीरजा से फार्म भरवा कर कल बेगम साहिबा के हाथ आपके पास भिजवा दूंगा।"

"यह नीरजा कौन है?"

"मेरी लड़की जनाब जिस पर आप मेहरबानी करने वाले हैं।"

"क्यों आप खुद यहां बैठे-बैठे फार्म नहीं भर सकते?"

"भर सकता हूं। लेकिन नीचे तो साइन नीरजा को करना है जो इस वक़्त यहां नहीं है।"

मीर साहब ने मोहनकृष्ण पर खुंखार गुस्सैल नजर डाली और फिर गुस्से को काबू में करके संयत स्वर में कहा—"आप सिर्फ फार्म भरिये। फार्म के नीचे मैं अपने हाथ से "रनिंग हैड" में नीरजा भान लिखूंगा। वही कैंडिडेट का सिगनेचर होगा। आपसे यह नहीं हो सकता क्योंकि आप पूरी पंडित कौम में एक अकेले महात्मा गांधी हैं। लेकिन आप शायद नहीं जानते कि आजकल महात्मा गांधी का नहीं, इंदिरा गांधी और राजीव गांधी का जमाना है।"

मोहनकृष्ण ने फार्म भरा। मीर साहब ने उस पर नीरजा के दस्तखत किए

और फार्म को वापस ब्रीफकेस में रखा। इस बीच नौकर भी चाय पेस्ट्री लेकर आया था और शमीमा जी ने दिन ढलने से पहले ही मोहनकृष्ण को गाड़ी में घर रवाना किया और ड्राईवर को ताकीद की कि मास्टर जी को उसके घर के दरवाजे तक छोड़ आए। गाड़ी जब टैंकीपुर पुल के पास पहुंची तो न सिर्फ दिन ढलने लगा था बल्कि पुल के उस पार औरतों का एक हजूम ज़ोर-ज़ोर से नारे लगा रहा था। मोहनकृष्ण ने भांप लिया कि औरतों की इस जमात में आजादी के लिए उत्साह नहीं, किसी की मौत या गिरफ्तारी के विरूद्ध आक्रोश है। उसने ड्राईवर को गाड़ी वापस ले जाने का मशवरा देते हुए कहा कि उसका घर आ गया। वह पैदल चलकर भी पांच दस मिनट में ही वहां पहुंच जाएगा। ड्राईवर यू टर्न करे गाड़ी को वापस सिविल लाइन की ओर ले गया। मोहनकृष्ण पैदल ही पुल पार कर रहा था कि पीछे से एक थ्री व्हीलर आकर उसकी बगल में रुका।

"मास्टर जी, इतनी देर तक कहां घूम रहे थे? आओ बैठो।"

मोहनकृष्ण ने आवाज पहचान ली। यह कादिर कबाड़ी था जो रहमान रेडा के आटो में बैठा था।

"यह मुज़ाहिरा किस बात पर हो रहा है" मोहनकृष्ण ने थ्री व्हीलर में बैठते ही कादिर से पूछा।

कादिर ने कोई जवाब नहीं दिया। अलबत्ता रहमान ने अपना अनुमान प्रकट किया—"सुबह किसी ने जज नीलकंठ गंजू को गोली मार दी। पुलिस ने इसी सिलसिले में मुहल्ले के किसी बेगुनाह नौजवान को पकड़ लिया होगा।"

"मास्टर जी तुम कहां गए थे? इस वक़्त तो सारे पंडित घरों में बैठे टी. वी. पर तुम्हारे हनुमान भगवान की फिल्म देख रहे होंगे। आज इलाके में बिजली भी है।"

"मेरे घर में टी.वी. नहीं है।" मोहनकृष्ण ने कादिर की बड़ी बात का छोटा-सा जवाब दिया।"

"टी.वी. नहीं ?" रहमान बोला—"कोई बात नहीं। एक पखवाड़े के बाद तुम्हें टी.वी. भी मिल सकता है। वह भी कलर टी.वी. और वह भी मुफ्त।"

कादिर ने रहमान की बात आगे बढ़ाई—"मगर उसके लिए तुम्हें इस्लामाबाद या बारामूला जाना होगा। यहां सिरी नगर में नहीं मिल सकता।"

"पूछो क्यों? रहमान बोला।

"क्यो?" मोहनकृष्ण को पूछना ही पड़ा।,

"क्योंकि सिरी नगर से साला शफी बट बिला मुकाबला मेंबर पार्लेमेंट बन गया। अब इस्लामाबाद और बारामूला में ही मुकाबला होगा।"

"और मुजाहिदों की तरफ से हर बूथ पर एक-एक कलर टी.वी. रखा जाएगा। जो कोई शख्स वोट डालने की हिम्मत करेगा, वह टी.वी. ले जाएगा।" रहमान की बात को कादिर ने पूरा किया।

मोहनकृष्ण चुप रहा। उसकी चुप्पी तोड़ने के लिए रहमान ने एक और बात छेड़ी—"वैसे टी.वी पर तुम्हारी मजहबी फिल्में देखने में हमें भी बड़ा लुत्फ आता है। बड़ी मज़ेदार होती है। थ्रिल भी जबरदस्त होती है। तुम्हारे भगवान आदमी जैसे ही नहीं, हाथी बंदर जैसे भी होते हैं।"

"होते हैं।" मोहनकृष्ण ने बिना किसी शर्मिंदगी के स्वीकार किया—"भगवान आदमी में ही नहीं, हाथी, बंदर, कुत्ते, बिल्ली में होता है क्योंकि जहां भी जो कुछ भी है, वहां, वहीं बस वही है"

"मतलब हमारे पाखाने के साथ जो केंचुए और कीड़े निकलते हैं उनमें भी तुम्हारा भगवान है?

"हां होता है और बिल्कुल होता है।"

मोहनकृष्ण का जवाब सुनकर रहमान और कादिर ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगे और तब तक हंसते रहे जब तक मोहनकृष्ण उनके थ्री व्हीलर से नहीं उतरा। उसके बाद भी शायद दोनों हंसते रहे होंगे और हंसते-हंसते दोनों के पेट में बल पड़े होंगे जिससे दोनों मुंह के बल सड़क पर गिर पड़े होंगे।

मोहनकृष्ण ने घर में प्रवेश करने पर देखा कि पिंकी किसी नवयुवक के साथ बतिया रही है जिसे पहचानने में उसे थोड़ी देर लगी। वह उसका अपना भांजा दुलारी जिगरी का बेटा संजय था जो बंगलौर में इंजीनियरिंग की ट्रेनिंग कर रहा था और छुट्टियों में अपने घर कश्मीर आया था। मोहनकृष्ण ने उसे गले से लगाया और फिर गिला किया कि उसे कश्मीर आए कोई दो हफ्ते हो गए और आज उसे अपने मामा की याद आई।

चपरासी की सूचना के बावजूद शांता पति के आने में देर होने के कारण बेकरार थी। अब पति के सकुशल घर पहुंचने पर उसके चेहरे पर शांति झलक रही थी। उसने नीरजा से कहा—"जाकर भैया से कहो कि डैडी आ गए। खाना पहले ही ठंडा हो गया है।"

नीरजा अशोक को बुलाने के लिए उठी तो संजय भी उठ खड़ा हुआ—"स्कालर साहब बेचारी पिंकी के कहने से थोड़े ही खाना खाने नीचे उतरेंगे? मैं ही जानता हूं कि उसे किस तरह ऊपर से नीच लाया जा सकता है।"

संजय अशोक को बुलाने गया और नीरजा बाथरूम चली गई। एकांत पाकर मोहनकृष्ण ने शांता को डांटा—"संजय अशोक की उम्र का है। उसका क्लास

फैलो रह चुका है। उसके पास न बैठकर यह यहां पिंकी के पास बैठकर क्या कर रहा था?"

"यहां आकर यह सीधे अशोक के पास ही गया था और फजूल बकवास करके उसका समय ज़ाया करने लगा था। मैंने सोचा खुद डोनेशन पर इंजीनियरिंग कर रहा है और यहां अशोक की पढ़ाई में जान-बूझकर हर्ज करना चाहता है। इसीलिए मैं उसे यहां ले आई।"

"पिंकी को शायद सरकारी नौकरी मिल जायगी। मीर साहब ने अपने सामने मुझ से उसका फार्म भरवाया।"

"अभी किसी से नहीं कहना। संजय से तो बिल्कुल ही नहीं। अमीर लोगों से गरीब रिश्तेदारों की खुशी कभी देखी नहीं जाती।"

"अभी तो सिर्फ फार्म भरा है। इसी बात पर क्या ढ़िढोरा पीटूंगा?"

नीरजा वापस कमरे में आई तो शांता ने धीरे से उसके माथे को चूमा। नीरजा बड़ी-बड़ी आंखों को और भी फैला कर हैरानी से मां की ओर देखने लगी। शांता बड़ी प्यार से बोली—

"पिंकी बेटी, शीट बिछा दो। मैं तुम लोगों के लिए खाना लगाती हूं। मुझे खुद भूख नहीं है। बस नींद आ रही है।"

मोहनकृष्ण भी हैरान होकर शांता की ओर देखने लगा। बहुत दिनों के बाद उसे पत्नी के चेहरे पर तृप्ति की असलता नज़र आई।

...तब नागों ने तरस खाकर उस शिशु को जल से बाहर निकालकर पाला पोसा। जल से उत्पन्न होने के कारण ही उसे जलोद्भव कहा गया।

तब उसने आराधना और तपस्या से पितामह ब्रह्मा को प्रसन्न किया और उससे जल में अमरता, मायावी शक्ति तथा अतुल विक्रम—ये तीन वर प्राप्त किए।

तब मायावी शक्ति, पराक्रम और अमरता का वर प्राप्त कर वह दैत्य सतीसर के आस-पास के क्षेत्रों में रहने वाले मानवों का भक्षण करने लगा।...

जलोद्भव ने नरभक्षप नरसंहार करके चारों ओर जो आतंक फैलाया उसका दोष सतीसर में उत्पन्न दैत्य को दिया जा सकता है या सर्वेश्वर, सर्वज्ञानी प्रजापति पितामह ब्रह्मा को जिसने वरदान और अभयदान देकर एक बर्बर अज्ञात-कुल- शील को कुछ भी करने की छूट दी थी?—अशोक पुस्तक से दृष्टि हटाकर सोचने लगा। कल दिन में उसने एकेडमी के "किताब घर" से कश्मीर में ही आठवीं शती में लिखा गया "नीलमत पुराण" खरीदा था। पहुंचते ही वह उत्साह और उत्सुकता से पुस्तक के पन्ने पलटने लगा था कि उसका फुफेरा भाई संजय जाने कहां से टपक पड़ा और उससे कश्मीर के बाहर की युनिवर्सिटियों

और कॉलेजों में जीन्स पहनकर जिन और चरस पीने वाली लड़कियों के बारे में बाते करने लगा। उसने पिंकी के साथ भी एक भद्दा मजाक किया था जिसका फल अच्छा ही निकला। मोहनकृष्ण ने शांता के शांत रहने के इशारों की अनदेखी करके संजय को इस तरह लताड़ा था कि वह जलभुन कर बिना कुछ खाए वापस अपने घर चला गया था। उसके चले जाने का फल भी अच्छा ही निकला था। रोज शाम को ही रूठ कर चली जाने वाली बिजली जाने कैसे पूरी रात टिकी रही थी और अशोक ने रतजगा करके नीलमत पुराण के आधे से अधिक भाग का अंग्रजी अनुवाद पढ़ डाला।

एक व्यक्ति चाहे कितना ही विक्रमी-पराक्रमी क्यों न हो, बिना लाइसेंस या छूट के ट्रॉउट मछली या मुर्गाबी भी मार नहीं सकता जो आदमी के स्वाद के लिए ही पैदा हुई हैं। वैसे लाइसेंस होने पर भी शिकारी शेर, चीते का नहीं, चिड़ियों का शिकार करते हैं और बलवान व्यक्ति अबल पर ही अपना बल आजमाता है। लेकिन यहां भी समाज, व्यवस्था और शासन पर रोक लगाता है। इसके बावजूद यदि कोई किसी को मारने का साहस करेगा तो उसे निश्चय ही सर्वोच्च सत्ता का वरदान-अभयदान प्राप्त होगा। क्या पता नीलमत पुराण के नीलनाग के पिताश्री कश्यप ऋषि द्वारा स्थापित कश्मीर भूमि में आजकल आए दिन जो हत्याएं हो रही है वे किस प्रजापति या राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री, या मुख्यमंत्री या गौण मंत्री या पुलिस या फौज के छोटे-बड़े अहलकार या अफसर या किसी भी प्रकार के उत्तरदायित्व से मुक्त किस अदृश्य सत्ता के समर्थन या हिमायत या रज़ामंदी या चश्मपोशी से हो रही है? पता नहीं अतीत का वह जलोद्भव भी यह सब क्यों करने लगा था। उसके शिकार उसके शत्रु तो नहीं थे और न ही उसका अकेला पेट सात समुंदर जैसा गहरा रहा होगा कि कभी भरता ही नहीं था। शायद वह अपने माता-पिता की हत्या का बदला लेना चाहता था। माता-पिता का ऋण चुकाना तो संतान का पहला कर्तव्य है। मगर उसकी कोई माता थी ही नहीं। या फिर सतीसर ही उसकी माता थी। सतीसर जो परम शिव की अर्धांगिनी सती का सर ही नहीं उसका सरस स्वरूप भी था। और जलोद्भव का पिता? वह तो उसके जन्म से पहले ही मारा गया था। अशोक पुराण के वे पन्ने फिर से पढ़ने लगा जिनमें जलोद्भव के जल से उदर्भव होने का वृतांत था।

...राजन्। एक बार देवराज इंद्र कमल लोचनी पौलोमी के साथ सतीसर के तट पर क्रीड़ा कर रहा था। उसी समय काल से प्रेरित होकर परम दुर्जय संग्रह उसी स्थान पर उपस्थित हुआ जहां देवराज इंद्र क्रीड़ा में मग्न था! शची को देखते ही संग्रह का सतीसर के जल में ही वीर्यपात हो गया। कामवश उन्मत्त होकर उसमें

शची का हरण करने की लालसा जगी। उसने इंद्र पर प्रहार किया और दोनों के मध्य एक वर्ष तक युद्ध चलता रहा। वर्षोपरांत देवराज इंद्र ने दैत्यराज संग्रह का वध किया। देवलोक लौटने पर वहां जय जयकार से उसका स्वागत किया गया। देवलोक वासी उसकी अराधना करने लगे। इधर दुरात्मा संग्रह के स्खलित वीर्य से सतीसर के जल में ही एक शिशु ने जन्म लिया...

अशोक किताब खुली छोड़कर पढ़ने के बदले सोचने लगा कि इंद्र और शची की काम क्रीड़ा देखकर संग्रह दैत्य के उत्तेजित होने में अस्वाभाविक क्या था? नीलमत पुराण का रचनाकार कश्मीर को भले ही पुण्य भूमि की पदवी दे या कश्मीर वासी इसे प्यार से "माज कशीर" (कश्मीर माता) कहें, गैर कश्मीरियों के लिए यह जगह आदिकाल में ही नहीं, आजकल भी ऐश-ओ-इशरत या आमोद प्रमोद का भोग विलास विहार ही रहा है जहां वे अपनी या पराई, अपने साथ ही लाई या वहीं प्राप्त "प्रोक्युर" की गई रमणियों के साथ हिन्दुस्तान की झुलसती गर्मी, भूनती धरती और खौलते पानी से दूर ठंडी हवा, ठंडे पानी और ठंडी-ठंडी रातों में जवानी ओर ज़नाना जिस्मों का सुख भोगते रहे हैं। चाहे वह देवराज इंद्र हो, मुगल शहंशाह हो या आज के देशी-विदेशी सैलानी हों या वी.आई.पी. हों। उसे कई वर्ष पहले की वह अजीब घटना याद आई जिसे वह भूल चुका था। मजीद के एम.बी.बी.एस. के फाइनल में कायवा लेने पी.जी.आई. में कार्डियोलॉजी का प्रोफेसर कोई डॉक्टर मल्लिक आया था जो डलगेट के पास ही एक हाऊस बोट में रहने लगा था। मजीद एक एम.पी. की सिफारिश लेकर हाऊस बोट में ही उससे मिलने गया था और अशोक को भी अपने साथ ले गया था। दोनों सेतु का काम देने वाले लकड़ी के फट्ट पर संभल-संभल कर चलने के बाद जब हाऊस बोट के पहले ही कक्ष में दाखिल हुए तो वहां डॉक्टर मल्लिक और मजीद की सीनियर एक लड़की, जिसने एक साल पहले एम.बी.बी.एस. पास किया था और उन दिनों हाऊस जॉब करने के साथ-साथ एम.डी. की सीट हासिल करने के लिए भी दौड़-धूप कर रही थी—मजीद के ही शब्दों में—"समझौते की सूरत हाल में" एक-दूसरे के साथ लिपटे ही नहीं चिपटे थे। इंद्र और शची की काम क्रीड़ा देखकर यदि संग्रह दैत्य का पौरुष सजग और सचेत हो गया था तो इसमें उसका क्या दोष था? अधेड़ डॉक्टर और सुघड़ डॉक्टरनी की क्रीड़ा देखकर अशोक का भी मन हुआ था कि वह दोनों पर इस तरह पिल पड़े जिस तरह गली में काम-कार्य में व्यस्त कुत्ते-कुत्तियां पर तीसरा कुत्ता आकर झपटता है। डॉक्टरनी ने अपनी बाहें डॉक्टर के गले में डाली थीं और डॉक्टर मल्लिक उस मल्लिका के ब्लाउज और बैस्त्री के भीतर अपना एक हाथ डालकर जाने कैसी "क्लिनिकल एग्ज़ामिनेशन"

कर रहा था। दूसरे हाथ से उसकी कोमल कमर थाम वह उसके होठों पर होंठ रखकर पता नहीं उन्हें चूम रहा था, चूस रहा था, चाट रहा था या काट रहा था।

"भैया।"

नीरजा की आवाज ने अशोक को चौंका दिया। उसने सामने खुली पड़ी पुस्तक तुरंत बंद की जैसे वह नीलमत पुराण न होकर पोरनोग्राफी का कोई पाइरेटिड एलबम हो। उसके बाद अंगड़ाई लेकर मुस्कुराते हुए उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से बहन की ओर देखा।

"अभी-अभी यह तार आया भैया।"

अशोक ने तार खोल कर पढ़ा। कुल पांच शब्द थे—कम इमिड्येटली सेव सेमिस्टर महापात्र।

"किसका तार है? सब ठीक है?" भाई की गंभीर मुखाकृति देखकर नीरजा ने पूछा।

"हां, सब शुभ है। मेरे रूम मेट महापात्र का तार है। मुझे तुरंत वापस जाना होगा। नहीं तो मेरा एक सेमिस्टर ज़ाया होगा।"

"कब जाओगे?" नीरजा ने उदास होकर पूछा।

"आज तो नहीं जा सकता। अब कल सुबह ही चला जाऊंगा।"

"पता नहीं कल के लिए बस का टिकट मिलेगा? दरबार मू के दिन है।"

"किसी न किसी बस में कोई न कोई खाली सीट मिल ही जाएगी। जम्मू से दिल्ली अगली सुबह सुपर फास्ट ट्रेन से जाऊंगा।"

"भैया मैं चाहती थी कि आप यहां आठ-दस दिन और रुकते। तब तक शायद मुझे टीचर की सरकारी पोस्ट का आर्डर मिल जाएगा।" नीरजा ने दाएं-बाएं चौकसी नज़र डालकर धीमे स्वर में कहा। उसके होठों पर मुस्कान और आंखों में आंसू थे।

"कंग्रैचुलेशन्स पिंकी। लेकिन तुझे कैसे पता चला?"

"मीर साहब से। उनकी मेहरवानी से ही सब कुछ हो रहा है। अच्छा भैया, मैं चलती हूं। मम्मी को आपके प्रोग्राम की खबर दूंगी। फिर कॉलेज जाकर बाकी रहे "लेसन" की नई डेट मालूम करके जल्दी वापस जाऊंगी। आपके कपड़ों को प्रेस और सामान को पैक करना होगा।"

नीरजा चली गई। उसके जाने पर अशोक सोचने लगा कि बसंती को इस नए प्रोग्राम की सूचना मिलनी चाहिए लेकिन मिलेगी कैसे?

हाथ में सूटकेस थामें और कंधे से झोला लटकाए अशोक सुबह साढ़े सात बजे टूरिस्ट रिसेप्शन सेंटर पहुंचा। मोहनकृष्ण भी उसके साथ था। अशोक नहीं चाहता था कि डैडी बिना कारण बस अड्डे तक आकर अपने को तकलीफ दें।

लेकिन नहीं चाहता था कि डैडी बिना कारण बस अड्डे तक आकर अपने को तकलीफ दें। लेकिन मोहनकृष्ण की ममता भरी गीली आंखों से आंखे चार होते ही अशोक को अधेड़ पिता से जवान बेटे को शुभ कार्य के लिए विदा करने का अधिकार छीनने का दुस्साहस नहीं हुआ था।

स्टेट ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की तीन-चार बसें पहले ही जम्मू के लिए निकल चुकी थीं। पांच-सात बसों की छतों पर सामान लादा जा रहा था या लदे सामान पर तिरपाल डालकर उसे रस्सियों से कसा जा रहा था। अशोक ने हर बस के कंडक्टर से पूछा मगर किसी बस में कोई सीट खाली नहीं थी। मोहनकृष्ण को लगा कि वहां एक बस के ड्राईवर ने उसे तो नहीं पहचाना लेकिन फिर भी आश्वासन दिया कि उसके बेटे को रामबन तक बोनिट पर बैठना मंजूर हो तो वहां से आगे जम्मू तक उसके लिए सीट का इंतजाम हो सकता है। यह खुशखबरी लेकर मोहनकृष्ण दौड़ा-दौड़ा गेट के निकट खड़े अशोक के पास आया जो उत्तर दिशा में गोल्फ कोर्स की ओर देखते हुए मंद-मंद मुस्कुरा रहा था। मोहनकृष्ण ने भी जब उस ओर दृष्टि डाली तो उसे अशोक से मन की बात न कहकर दूसरी ही बात कहनी पड़ी—"बेटे यहां न सीट मिल सकती है और न ही बोनिट पर बैठे-बैठे सफर करने का जुगाड़ हो सकता है। तुम ऐसा करो, लाल चौक से साढ़े दस बजे तक उधमपुर और जम्मू के लिए प्राइवेट बी-क्लास बसें चलती रहती हैं। तुम वहीं चले आओ। मैं भी चलता हूं। मेरा नौ बजे से पहले स्कूल पहुंचना ज़रूरी है।"

मोहनकृष्ण ने अशोक को गले से लगाया और फिर हाथ मिलाकर उससे विदा ली। उसके चले जाने के कुछ क्षण बाद ही हांफती हुई बसंती अशोक के पास पहुंची।

"थैंक गॉड। मुझे आशा नहीं थी कि तुम मिलोगे।"

"सीट मिली होती तो नहीं मिलता। लेकिन तुमसे यह किसने कहा कि मैं आज सुबह ही जा रहा हूं"

"नीरजा ने।"

"लेकिन उसने मुझे नहीं बताया कि तुम यहां आओगी?"

"तब बताती जब मैंने बताया होता। खैर छोड़ दो। यह बताओ कि अब क्या इरादा है?"

"लाल चौक से कोई प्राईवेट बी क्लास बस लूंगा। उसके लिए अभी काफी वक़्त है। चलो एक आध घंटे चर्च गार्डन में बैठते हैं।"

"कहां है यह गार्डन?"

"व्यथ के इस पार ही। क्लब से थोड़ा आगे। सिक्लूडिड जगह है—पांच-सात मिनट की ही दूरी है।"

दोनों बायें मुड़कर चौराहे तक गए और वहां से पूर्व की ओर जाने वाला रास्ता ले लिया है।

पोलोग्राउंड के जंग के साथ-साथ फुटपाथ पर चलता मोहनकृष्ण सोच रहा था कि शांता ग़लत नहीं कहती है कि ज्यों ही लड़की बीस पार करे मां बाप को उसके हाथ पीले करने चाहिए। नीरजा की आयु भी अपनी इस सहेली जितनी ही होगी उसके विवाह के लिए आज से ही दौड़-धूप शुरू होनी चाहिए। देवी की दया और मीर साहब की हमदर्दी से मुमकिन है सरकारी नौकरी मिल ही जाए। दहेज के लिए इससे धन क्या जुटेगा? हां, वर ढूंढने में थोड़ी आसानी ज़रूर होगी। अब इस मौसम में तो संभव नहीं, अगले मई जून में भाई बहन दोनों की शादी हो ही जानी चाहिए। भाई के लिए खैर दुलहन ढुंढने की कोई परेशानी नहीं। उसने मां-बाप की कम से कम यह एक जिम्मेदारी अपने ही कंधों पर उठा ली।

मोहनकृष्ण ने घड़ी देखी। सवा आठ बज गए थे। उसने अनुमान लगाया कि अगर वह यहीं से तारन नाव में व्यथ पार करेगा तो नियत समय से बीस-पच्चीस मिनट पहले ही ड्यूटी पर पहुंच जायेगा। उसकी यह सेंस ऑफ ड्यूटी देख कर बेगम साहिबा गदगद हो जाएंगी। "गदगद" शब्द दिमाग में आते ही मोहनकृष्ण को अपने ऊपर हंसी आई। जो आदमी जीवन भर अपनी ही पत्नी के होठों पर मुस्कुराहट की पतली-सी रेखा तक नहीं ला सका वह उस औरत को किस जादू से "गदगद" कर सकेगा जिसके साथ उसका मालिक मातहत का वह रिश्ता है जो दूसरे रिश्तों की तरह ही आवश्यकता पड़ने पर ही बताया जाता है। पति-पत्नी का रिश्ता भी शायद आवश्यकता की ही उपज होता है मगर वह दो व्यक्तियों को इस तरह बांध देता है कि आपस में गिले-शिकवे, लड़ाई-झगड़े के बावजूद एक को दूसरे के बिना अपना अस्तित्व अधूरा लगता है। मोहनकृष्ण को एकदम ध्यान आया कि अशोक के चले जाने से आज शांता पर कुछ ज्यादा ही उदासी छाई होगी। आज उसे उसी के पास बैठ कर घर गृहस्थी की, सुख-दुख की बातें करनी चाहिए। लंच के समय स्कूल के कैंटीन में चाय के साथ टोस्ट और आमलेट की जगह घर में ही शांता के हाथ का बना साग-भात खाना चाहिए। एक दिन स्कूल नहीं गया तो कयामत नहीं आ जाएगी। उसके हिसाब से अभी भी कैजुअल लीव बचे हैं।

रीगल चौक के पास पहुंच कर मोहनकृष्ण लैमूबर्ट लेन की ओर नहीं मुड़ा बल्कि मौलाना आजाद रोड पर आकर अपने घर की ओर चल पड़ा। गांवकदल अड्डे के एक मैटाडोर में पहले ही दो सवारियां बैठी थीं जिनमें से एक मोहनकृष्ण का पड़ोसी हीरालाल था जो एक्सचेंज में एक जान पहचान की आपरेटर की मेहरबानी से जम्मू और जालंधर मुफ्त में फोन करने आया था। अपनी झेंप मिटाने

या ज्ञान बघारने के लिए उसने मोहनकृष्ण से यह भी कहा—"वैसे जल्द ही हमारे यहां भी फोन लगेगा। साहबजादे दिलीप जी की कंपनी उसे ज़ोनल मैनेजर बना रही है और जोनल आफिस जालंधर में ही ठीक रहेगा और यहां वह अपना कैंप आफिस खोलेगा। कंपनी को मानना ही पड़ेगा।"

मैटाडोर में बैठा तीसरा आदमी अचानक घबड़ा कर इधर-उधर देखने लगा।

"क्या बात है भाई?" मोहनकृष्ण ने उससे पूछा।

"सामने आकर खड़ी पुलिस जीप और सी.आर.पी, बी.एस.एफ की गाड़ियां नजर नहीं आती हैं?"

"पुलिस या फौज की गश्त तो चलती रहती है।" हीरा लाल ने अपनी राय जाहिर की।

"मेरे ख्याल से पास ही कहीं क्रैक डाउन होने वाला है।" तीसरा आदमी मैटाडोर से कूद कर न जाने कहां चला गया। उसके जाते ही जैसे हीरालाल के कान भी अचानक खड़े हो गए। उसने डरते-डरते मोहनकृष्ण से पूछा—"तुमने कुछ सुना?"

"क्यों, कोई मामूली बम था या एटम बम?"

"नहीं। सीटी जैसी पतली आवाज थी।" हीरालाल की समझ में शायद मोहनकृष्ण का मजाक नहीं आया था। तभी मैटाडोर से कूदा व्यक्ति वापस आकर चिल्लाया—"बेवकूफ भट्टो। भागते क्यों नहीं हो सालो? फायरिंग हो रही है।"

हीरालाल मैटाडोर से कूद कर भागने लगा। पुल के निकट पहुंचते ही उसे पीछे से मोहनकृष्ण की चीख सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा कि मोहनकृष्ण अपनी दाहिनी जांघ को दोनों हाथों पर पकड़े पीछे आने की कोशिश कर रहा है। हीरालाल भौंचक्का होकर उसकी ओर देख ही रहा था कि वह लुढ़क कर धराशायी हो गया।

आपरेशन थियेटर के बाहर पुलिस सारजेंट मोहनकृष्ण के बारे में हीरालाल की दी गई जानकारी नोट कर रहा था कि एक नौजवान डॉक्टर थियेटर से बाहर आकर सारजेंट से पूछने लगा—

"कैजुअल्टी के साथ जो दूसरा आदमी था वो कहां है?"

"यहीं हैं।" पुलिस सारजेंट ने हीरालाल की ओर इशारा किया।

डॉक्टर उस "टिपिकल" पंडित जी के पास गया जिसके चेहरे पर दुख और पीड़ा से ज्यादा बेचैनी और परेशानी नज़र आती थी।

"आप कैजुअल्टी के क्या लगते हैं?" डॉक्टर ने हीरालाल से पूछा।

"कुछ भी नहीं डॉक्टर साहब। मैं भगवान मतलब खुदा की कसम खाकर सच

कहता हूं कि वह मुझे मैटाडोर में मिला था।" हीरालाल आर्त दृष्टि से डॉक्टर की ओर देखने लगा कि जैसे उसने इस नौजवान को कहीं देखा है। कहीं क्या अपने ही मुहल्लें में किसी पंडित लड़के के साथ देखा है।

"मगर आपने अभी कहा था कि उसे अच्छी तरह जानते हैं।" पुलिस सारजेंट ने हीरालाल को याद दिलाया।

"ज़रूर जानता हूं क्योंकि वह मेरा पड़ोसी है। लेकिन मैं फिर खुदा की कसम खाकर कहता हूं कि मैं उसका कुछ नहीं लगता हूं।" हीरा लाल ने सारजेंट और डॉक्टर दोनों के आगे हाथ जोड़ते हुए कहा।

"ठीक है।" डॉक्टर बोला—"अभी हम हतमी तौर पर तो नहीं कह सकते, लेकिन लगता है कि पेशेंट शायद बच जाएगा। एक्सरे दाहिनी जांघ में गोली दिखाता है। खून काफी ज़ाया हुआ है। आपरेशन में और भी ज़ाया हो सकता है। आप दो-तीन प्वाइंट बल्ड का इंतज़ाम कीजिए।"

"मै कहां से इंतज़ाम करूंगा?" हीरा लाल ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"आप फिलहाल अपना खून डोनेट कीजिए।" सारजेंट ने पुलिस लहजे में कहा।

"ज़रूर करता मगर क्या करूं डाइबिटीज का पेशेंट हूं।" हीरा लाल ने कातर दृष्टि से डॉक्टर की ओर देखते हुए कहा और उसी समय उसकी अपनी सोई स्मृति जैसे अचानक जाग गई। बात को आगे बढ़ाते हुए वह डॉक्टर से बोला—"वैसे आप भी मोहनकृष्ण जी मतलब पेशेंट को जानते हैं।"

"मै पेशेंट को जानता हूं?" डॉक्टर हैरान हो गया।

"हां। मैंने खुद आपको एक बार उनके घर आते देखा है। उनका बेटा आपका दोस्त है।"

"कौन है वह?" डॉक्टर ने कुछ झुंझला कर कहा।

"अशोक भान। रिसर्च स्कालर जे.एन.यू.।"

"जय श्री राम। जय श्री देवी।" डॉक्टर के मुंह से धीमे स्वर में अटपटे शब्द निकले जिन्हें न हीरा लाल समझ सका और नहीं पुलिस सारजेंट। उसने व्यग्र होकर हीरालाल से पूछा—"अशोक कहां है?"

"आज सुबह ही दिल्ली चला गया। इन हालात में भी अपने बूढ़े मां-बाप और कुंआरी बहन को खुदा के हवाले छोड़ कर। "हीरालाल के गंभीरता से भिंचे होठों के पीछे उसकी दुष्ट मुस्कुराहट छिप नहीं रही थी।

"आप उनके घर वालों को बता दीजिए कि हमारी कोशिश रहेगी कि पंडित जी जल्द से जल्द ठीक हो जाएं।" इतना कहकर डॉक्टर तेज़-तेज़ कदमों से आपरेशन थियेटर के भीतर जाने लगा। लेकिन कुछ कदम चलकर ही वह वापस आया।

"देखिए इस बारे में अशोक को अभी कोई खबर देने की ज़रूरत नहीं है। वह ख्वामख्वाह परेशान हो जाएगा।" हीरालाल को हिदायत देकर डॉक्टर वापस जाने लगा।

"लेकिन खून का इंतज़ाम कैसे होगा?" हीरालाल ने दीन भाव से पूछा।

"अगर ज़रूरत पड़ी तो मैं अपना खून दूंगा। नो प्रोब्लम।"

डॉक्टर मजीद तेज़-तेज़ कदमों से आपरेशन थियेटर के भीतर चला गया।

(To change the Subject)

चर्च गार्डन से बाहर आकर अशोक ने बसंती से कहा—"मैं आटो लेकर लाल चौक जाऊंगा और उधमपुर, जम्मू जाने वाली किसी भी बस में बैठ जाऊंगा। डल गेट से तुझे रैनावारी के लिए बस मिल ही जाएगी।"

"मैं सोच रही हूं कि सीधे अपने घर जाने के बदले क्यों न मैं तुम्हारे घर से होकर जाऊं? तुम्हारे बिना तुम्हारी मम्मी खाली-खाली महसूस कर रही होगी। नीरजा से चाइल्ड साइकालोजी की किताब भी मांगनी है।

"नीरजा ने तुझे अपने बारे में कुछ बताया?" अशोक का सहसा पिंकी के साथ हुई कल की बात याद आई।

"क्या बताना था उसे?" बसंती ने पूछा।

"यही कि उसे सरकारी नौकरी मिलने वाली है।"

"नहीं, मुझे तो नहीं बताया।"

"शायद याद नहीं रहा होगा।" कहने को तो अशोक ने कह दिया, मगर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अगर पिंकी, बसंती से भाई के अचानक दिल्ली वापस चले जाने की बात कहना नहीं भूली तो फिर उसे अपनी सहेली से अपनी नौकरी की बात कहना क्यों याद नहीं रहा?

"वैसे मुझसे यह बात न कहकर उसने अच्छा ही किया।"

"सो कैसे?" बसंती की टिप्पणी में निहित अर्थ अशोक (Important berosnal name which is unfortunataly ignored) के पल्ले नहीं पड़ा।

"मेरे मामाजी ने कल एक चुटकुला सुनाया।"

"मैं पूछता हूं कि पिंकी ने तुझसे नौकरी लगने की बात छिपाकर अच्छा कैसे किया?"

"वही तो बता रही हूं। मामाजी ने सुनाया कि कश्मीर के ही खतरनाक कैदियों को किसी जेल की तीन अंधेरी कोठरियों में रखा गया था जिनमें खिड़की के नाम पर बस सवा फुट ऊंचा और पौन फुट चौड़ा एक रोशनदान था जो नौ दस गज ऊंची छत से सिर्फ एक फुट नीचे था। एक कोठरी में सिर्फ मुसलमान कैदी थे। दूसरी में सिर्फ सिख कैदी थे। तीसरी में भट्ट मतलब सिर्फ कश्मीरी पंडित

कैदी थे। पहली दो कोठरियों के बाहर दस-दस सिपाही बंदूकें लेकर पहरा दे रहे थे। लेकिन तीसरी कोठी के बाहर कोई पहरेदार नहीं था। एक दिन सेक्यूलर पार्टियों और ह्यूमन राइट्स वालों का एक डेलिगेशन जेल का मुआइना करने आया। डेलिगेशन ने तीन कोठरियों का जायजा लिया और रिपोर्ट तैयार करने से पहले ही जेलर के कमरे के सामने प्रोटेस्ट डेमान्ट्रेशन और नारेबाजी की कि जेल में कश्मीरी पंडित कैदियों को मुसलमान और सिख कैदियों के मुकाबले में कम सज़ा और ज्यादा सुविधाएं दी जाती हैं। जेलर ने जब आरोप को आधारहीन बताया तो डेलीगेशन ने अखबार वालों की उपस्थिति में जेलर के सामने ठोस सबूत रखा कि दूसरे संप्रदायों की कोठरियों के बाहर बंदूकें लेकर दस-दस सिपाही पहरा देते रहते हैं जबकि कश्मीरी पंडित कैदी अपनी कोठरी में किसी पहरेदार या सिपाही के खटके के बिना चैन की नींद सोत रहते हैं। सांप्रदायिक पक्षपात और भेदभाव का इससे बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है। इस पर जेलर ने सफाई दी कि जो व्यवस्था की गई वह किसी भेदभाव की नीयत से नहीं बल्कि "फाइनैंशल क्रंच" की मजबूरी से की गई है। बजट में खतरनाक कैदियों के लिए सिर्फ बीस पहरेदारों का प्राविजन है। कैदी इतने खतरनाक हैं कि एक दूसरे के कंधे पर चढ़कर एक-एक करके सब के सब रोशनदान के रास्ते रफूचक्कर हो जाएंगे। कश्मीरी पंडित कैदी भी भागना चाहते हैं। मगर भाग नहीं पाते हैं। भागने के लिए रोशनदान की ऊंचाई तक पहुंचना ज़रूरी है। मगर अतीत का इतिहास तथा वर्तमान में आए दिन होने वाली घटनाएं साक्षी हैं कि जब भी किसी कश्मीरी पंडित ने कभी ऊंचा उठने की कोशिश की, दूसरे पंडित ने उसकी टांगे खींची और उसे ऊंचाई से फिर नीचे ले आया है। इसीलिए हमने तीसरी कोठरी के लिए पहरेदारों की कोई ज़रूरत नहीं समझी।"

"और इसीलिए पिंकी ने तुझसे अपनी नौकरी की बात छिपाकर रखी कि क्या पता तू भी उसकी टांगे खींचकर उसे नीचा दिखाती हो। अशोक ने कहा और ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा।

"वैसे तेरे मामाजी ने कुछ गलत नहीं कहा।" अशोक ने बात आगे बढ़ाई—"हम कश्मीरी पंडित हमेशा ही ऐसे थे। कल्हण पंडित की राजतेरगिनी का अंग्रेजी अनुवाद मैं घर में ही भूल गया। पिंकी से मांग कर पढ़ लेना।"

"ज़रूर मांगूगी और पढ़कर वापिस नहीं करूंगी। तुम्हारा प्रेमोपहार प्रेजेंट, टोकन, मोमेंटो सब कुछ समझ कर उसे सीने से लगाए रखूंगी।"

बसंती के पतले-पतले होंठों को फड़काती मुस्कुराहट उसकी बड़ी-बड़ी आंखों को चमकाती आर्द्रता को छिपा नहीं पा रहीं थी। पता नहीं अशोक का ध्यान इस

ओर गया या नही। मगर उसके मन में देर से ही सही यह विचार ज़रूर आया कि जाने से पहले उसे बसंती को प्रेम निशानी के रूप में कुछ न कुछ देना चाहिए था। लेकिन यह विचार तब आया जब वह समय अभाव के कारण कुछ भी खरीद नहीं पाएगा और बसंती का आहत अहं उसे एक तिनका भी स्वीकार करने नहीं देगा।

अशोक लाल चौक देर से पहुंचा। फिर भी उसे उधमपुर की बस और बसें में सीट मिल गई। उसकी साथ वाली सीट पर बैठे सरदार जी ने उसे बताया कि बस नियत समय से तीस पैंतीस मिनट देर से निकली। गांवकदल के मैटाडोर अड्डे में बी.एस.एफ और आतंकवादियों की क्रांस-फायरिंग में एक बंदा मारा गया जिससे इलाके में दहशत फैल गई।

"मरने वाला आतंकवादी था या बी.एस.एफ. का जवान?" अशोक ने पूछा।

"दोनों में से कोई नहीं।" सरदार जी ने जवाब दिया—

"बेचारा मैटाडोर में बैठा कोई पंडित था। जान बचाने के लिए कूद कर भाग रहा था कि पता नहीं कहां से गोली आकर बेचारे को लग गई।"

एक पंडित मैटाडोर से कूद कर भाग रहा था कि गोली का शिकार हो गया—अशोक ने परेशान होकर सरदार जी की बात को मन में दोहराया। लेकिन यह सोचकर उसने राहत की सांस ली कि पापा जी शिकारे में व्यथ को पार करके सीधे स्कूल चले गए होंगे। लाल चौक या गांवकदल मैटाडोर स्टैंड में उनके होने का सवाल ही पैदा नहीं होता है।

(10)

अभी आठ ही बजे थे मगर रमज़ान जू की दुकान में दूध और दुकान के सामने लोगों की भीड़ खत्म हो गई थी। वह दीवार के साथ टेक लगाए अपनी कमर सीधी कर रहा था कि एक पंडिताइन आकर उसकी दुकान के सामने खड़ी हो गई।

"दूध अब दो बजे ही मिलेगा।" रमज़ान जू बिना पंडिताइन की ओर देखे बोला।

"ठीक है। मैं दो ढाई बजे ही आऊंगी। आप यह लौटा रखिए।"

रमज़ान जू ने लोटा लेने के लिए हाथ बढ़ाया। लोटा पहचानते ही उसने लोटा लेकर आई औरत के चेहरे पर दृष्टि डाली और भौंचक्का रह गया—"आप मास्टर जी की...?"

"जी।" पंडिताइन ने धीमे स्वर में कहा और साड़ी की पल्ले से अपनी भीगी आंखे पोंछ लीं।

"खैरियत तो है? घर में सब ठीक-ठाक है?" रमज़ान जू ने बेताबी और बेकरारी से पूछा।

"जी।" शांता ने वैसे ही धीमे स्वर में कहा—"उनकी हालत भी पहले से बेहतर है। कल ही टांके खोले गए।"

"टांके?"

"जी हां। उन्हें गोली लगी थी।"

"गोली!!"

"जी। पिछली बुधवार को मायसुमा में।"

"मगर मायसुमा में वहां के थानेदार सैदुल्लाह को गोली मारकर हलाक किया गया।"

"वह परसों की बात है। मास्टर जी को एक हफ्ते पहले मायसुमा के मैटाडोर अड्डे में गोली लगी थी। दो-ढाई बजे दूध लेने आऊंगी।"

रमज़ान जू ने शर्मिंदगी से नजरें झुकाकर सफाई दी—"अल्लाह कसम मुझे किसी ने खबर नहीं दी। असल में मैं खुद परेशान था और कुछ दिन शहर के बाहर भी रहा। मैं आज ही मास्टर जी से मिलने आऊंगी।"

शांता चली गई। रमज़ान जू को बशीर पर गुस्सा आया। जाने कहां मर गया। ताकीद की थी कि साढ़े सात से पहले ही दुकान पर पहुंच जाना। छोटे नालायक के गायब होने का राज जानने के लिए दस बजे से पहले ही जड़ीबल के इमाम के पास पहुंचना ज़रूरी था। अब तो मास्टर जी का हाल पूछने के लिए उसके घर जाना भी ज़रूरी है। पता नहीं किस हरामी ने उसे गोली मारी? भट्टों में भी उस जैसा सीधा शरीफ आदमी नहीं मिलता है। सुअर की औलादों, अगर भट्टों को ही गोली मारनी थी तो करफली मुहल्ले का नंदलाल क्या मर गया था जिसने जुलाई में बेटी की शादी पर पचास किलो पनीर उधार ली थी और इन पांच महीनों में पचास रूपये भी नहीं चुकाए...

सहसा रमज़ान जू को याद आया कि उसने न आज का "सिरी नगर टाइम्स" ही पढ़ा है और न ही "अफताब"। रोल किए गए दोनों अखबार पेटी के पीछे वैसे ही पड़े थे। रमज़ान जू ने एक अखबार उठाया। पहले ही सफे पर उसे माफीनामे के दोनों इश्तिहार दिखाई दिए। दोनों की सुर्खी "कांग्रेस से इस्तीफा" थी। एक इश्तिहार किसी गुलाम अहमद गिलकार वल्द मुहम्मद सुबहान गिलकार साकिन फतेह कदल सिरी नगर का था जिसमें ऐलान किया गया था—"मैं नौजवानाने कश्मीर को मुतल्ला करता हूं कि अब मेरा किसी सियासी पार्टी के साथ कोई ताल्लुक नहीं है। साथ ही कांग्रेस (आई) की बुनियादी मेंबरशिप से भी इस्तीफा देने का ऐलान करता हूं।" दूसरा इश्तिहार किसी अब्दुल अज़ीज वानी वल्द अब्दुल्ला जू वानी साकिन काकपोर पुलवामा का था। लिखा था—"मैं। इंडियन नेशनल कांग्रेस (आई) की बुनियादी मेंबरशिप से हमेशा-हमेशा के लिए इस्तीफा दे रहा हूं। आइंदा किसी भी कौम फरोश जमात के साथ मेरा कोई ताल्लुक नहीं रहेगा। मैं बस एक दुकानदार शख्स हूं और अब से मुझे अपने काम से काम रहेगा।"

रमज़ान जू ने अखबार से नज़र हटाई तो बशीर को अपने सामने खड़ा पाया।

"हरामी कहीं के। कहां थे अभी तक?" बशीर की ओर देखकर गुस्से में कहा।

"घर में ही तो था।" बशीर ने सफाई देने के लहजे में जवाब दिया। "फारूक आ गया।"

"लेकिन तू अभी तक घर में बैठा था। क्या कर रहा था। उस हरामी की तरह तू भी "ट्रेनिंग" पर जाने का कोई वसीला तो नहीं खोज रहा है?— रमज़ान बौखलाया।

"मैंने एक आसामी से सौदा तय किया। पुआल का।"

"पुआल का।" रमज़ान की बौखलाहट और बढ़ गई। लेकिन बशीर ने बाप के सामने सारी बात विस्तार से रखी। बताया कि जिस वक़्त फारूक मां के साथ बात कर रहा था दो अजनबी देहाती बशीर के पास आए और बोले कि वो पटन इलाके के जमींदार हैं। अल्लाह के फज़ल से उनके यहां भी अच्छी फसल हुई थी। फालतू धान तो वो पहले ही बेच चुके हैं और बिगड़ते हालात को देखकर वो पुआल को भी औने-पौने दाम बेचकर घासफूस की नगदी में बदलना चाहते हैं। वो बाजार भाव से आधे दाम पर माल बेचने को तैयार हैं और पूरी रकम को किस्तों में लेने के लिए भी तैयार हो गए हैं। उनके न मांगने पर भी बशीर ने उन्हें पच्चीस रूपए पेशगी दिए ताकि सौदा पक्का हो जाए और सनद रहे। माल आज दिन में ही चार बजे के बाद किसी वक़्त आ सकता है।

रमज़ान जू ने थोड़ी देर मामले पर गौर किया। उसे लगा कि बशीर की बातों में दम है। अल्लाह की करामत से गायब फारूक जाने कैसे घर में फिर फट पड़ा था। उसके लापता होने का राज़ अब जड़ीबल के पीर से नहीं, खुद उसी से मालूम करना होगा। रहा सवाल मास्टर जी का। उसकी खैर खबर पूछने वाला काम कल भी हो सकता है। अभी घर में रहना ज़रूरी है। क्या पता माल चार बजे से पहले ही आ जाए। रमज़ान जू ने बशीर को चार बजे से पहले ही दुकान बंद करके घर लौटने की ताक़ीद की और खुद भी जड़ीबल के पीर या मास्टर जी के घर न जाकर अपने ही घर की ओर चल पड़ा।

"सुना फारूक आया है?" रमज़ान ने जून की ओर खूनी नज़रों से देखते हुए पुछा।

"आया था और चला भी गया।" जून से सपाट-सा जवाब दिया।"

"बेटा हो तो ऐसा हो। इंजीनियरी की ट्रेनिंग करके अब क्या डाक्टरी की ट्रेनिंग करने गया?" रमज़ान ने व्यंग्य किया।

"छुट्टी पर आया है। एकाध महीना रहेगा।" जून ने रमज़ान की तरफ देखे बिना कहा और गाय, बछड़े को सानी-पानी डालने गई।

"मेरे जाने के बाद आया और मेरे आने से पहले चला गया—नालायक। नाफलक।" रमज़ान जू बड़बड़ाता गोशाला के पिछवाड़े पुआल का गांज खड़ा करने की जगह ढूंढने गया। गोशाला और कीकर के पेड़ के बीच की जगह देखकर उसे तसल्ली हुई कि पुआल वहीं आसानी से जमा सकता है। पुआल भी तो ज़रूरत का ही खरीदना है। घर में बस एक गाय और एक बछड़ा है। गाय कुसुम के लिए ही दूध देती है। असली दूध तो अमृतसर से आने वाले पाउडर से निकलता है। तभी उसकी नज़र जून पर पड़ी जो एक ओर बछड़े को प्यार से सहला रही थी। रमज़ान जू के मन ने कहा कि जून खुद ही उससे फारूक का जिक्र छेड़ेगी। मगर वह बछड़े को सहलाने और थप-थपाने में इतनी मगन थी कि रमज़ान पर उसकी नजर ही नहीं पड़ी। उस समय भी नहीं जब वह बछड़े को उसकी मां के पास छोड़ कर अपने चूल्हे चौके की ओर जाने लगी। रमज़ान जू को उसकी चाल से जान बूझकर प्रकट की गई अपेक्षा और अवज्ञा ही प्रतीत हुई, अनजान अनमनापन या असावधानी नहीं। वह बैठक में जाकर बैठ गया। दो ढाई घंटे के बाद जून ने आकर बिना कुछ बोले उसके आगे खाना रखा और खुद टोकरी में टिफन लेकर घर के बाहर जाने लगी।

"कहां जा रही हो?" रमज़ान ने पूछा।

"बशीर के लिए खाना ले जा रही हूं।"

"वह यहीं आकर खाएगा।"

"दुकान पर कौन रहेगा?" जून से आंखे तरेर कर पूछा।

"तू रहेगी। बशीर को अभी इसी वक़्त यहां भेज देना। जो खाना ले जा रही हो उसे दुकान पर बैठकर खुद खा लेना।"

जून जल-भून कर चली गई। अभी फाटक से पांच कदम भी बाहर नहीं आई थी कि सुंदरी मिल गई।

"किसके लिए खाना ले जा रही हो? खाने वाला तो घर में ही बैठा है। गली से गुजरते अभी मेरी नजर उस पर पड़ी।"

जून का जी जल रहा था। सुंदरी की बात ने उस पर एक साथ तेल और हवा का काम किया। वह भड़क उठी—"हां घर वाला घर में ही बैठा है। मगर दुकान में बैठे उस सांड का शिकम भी भरना है जो तेरे ही शिकम से निकला है। बाप से दुगना खाना खाता है फिर भी पेट नहीं फटता है।"

"पेट फटे उसके दुश्मनों का। पानी को सफेद पौउडर से रंग कर, उसे ही दूध,दही, पनीर बनाकर बेचकर जमा की गई दौलत तू हड़प कर गई। माल मलाई तू खाएगी, तेरे शिकम से निकला लफंगा खाएगा और गालियां खाएगा बशीर बेचारा।"

सुंदरी लड़ने पर उतारू हो गई थी लेकिन जून भी कहां पीछे हटने वाली थी? बोली—"अरी जा जा। बुढ्ढे के पास जो कुछ भी था उसे तूने ही जवानी में चूस लिया और निचुड़ा हुआ भूसा मेरे लिए छोड़ गई।"

"अरी उस निगोड़े के पास तब था ही क्या? ऐश तो मैं अब कर रहीं हूं। एक लड़का तुझे दिया है वही मुझे भी दिया था और उसे भी छीन कर ले गया। लेकिन अल्लाह अंधा नहीं है। उसने मुझे एक के बदले तीन साले दिए।"

'तीसरा खसम ढूंढ। शिकम से चार-पांच पिल्ले और फूटेंगे।"

सुंदरी शायद ईंट का जवाब पत्थर से देती है मगर जून ने उसे मौका ही नहीं दिया। वह तेज-तेज कदमों से सुनसान गली से निकल कर भीड़ भरी सड़क पर आ गई जहां सुंदरी जैसी औरत भी अपनी बेहयाई छिपाने के लिए मजबूर थी।

रमज़ान जू खाना खाकर एकाध झपकी ले भी चुका था कि बशीर आ गया। उसके आने और आकर खाना खाने के बाद बाप-बेटे दोनों आंगन की धूप में फाटक के पास खाट डालकर आने वालों का इंतजार करने लगे क्या पता बाप बेटे में कौन पुआल बेचने वालों की प्रतीक्षा कर रहा था और कौन फारूक की? या हो सकता है दोनों, दोनों की प्रतीक्षा कर रहे हों।

बशीर के साथ वादा किया गया था माल चार बजे के बाद किसी भी वक़्त आ सकता है। चार बजे के बाद पांच छः और सात भी बज गए। मगर माल नहीं आया। आठ बजे इसी इलाके में ही नहीं, पूरे शहर की बिजली चली गई। नौ बजे जून भी दुकान बंद करके लौटी। लेकिन पुआल का ट्रक नहीं आया। फारूक भी नहीं आया मगर उसका आना कुछ पक्का भी नहीं था। ग्यारह बजे के करीब तीनों ने खाना खाया और सो गए।

अभी एक घंटा भी नहीं हुआ था कि बशीर ने रमज़ान जू को जगाया—"बाबा ट्रक आ गया। माल सड़क पर ही उतारा जा रहा है।"

रमज़ान जू माल लाने वालों को गालियां देते हुए बिस्तर छोड़कर उठा। "खंज़ीर की औलाद। इस अंधेरे में माल क्या उतारेंगे और उसका गांज क्या बनाएंगे? बड़बड़ाते रमज़ान को भीतर से बंद फाटक खोलकर दोनों ने देखा कि ट्रक में घुसे दो आदमी भीतर के सामान को नीचे खड़े दो आदमियों को थमा रहे हैं...और वे उन्हें बड़ी एहतियात से जमीन पर रख रहे हैं।

"हराम खोरों। दिन में आना था, आ गए अंधेरी आधी रात को और काम ऐसे कर रहे हो जैसे ट्रक से पुआल नहीं, पालकी से नवेली दुल्हन को संभाल-संभाल कर बाहर ला रहे हो कि कहीं नाज़नीन की लचकीली कमर ऐंठ कर अकड़ न जाए। काम चोरो, चार-पांच गट्ठे एक साथ उठा कर तड़ाक से नीचे पटक दो।"

ट्रक से माल उतारने वालों ने रमज़ान की बात का कोई जवाब नहीं दिया सड़क पर खड़े गट्ठे थामने वाले ने अपने जोड़ीदार से पूछा—"माल कहां रखना है?"

"जहां पुआल रखा जाता है। मेरे साथ आओ मैं दिखाता हूं।" सिर पर तिकोनी टोपी पहने उसके जोड़ीदार ने कहा।

"यहां क्या इसके बाप का घर है जो रास्ता दिखाएगा?" रमज़ान ने कड़क कर कहा और झपट कर उससे पुआल का गट्ठा छीन लिया।

साथ खड़े तिकोनी टोपी वाले ने बायें हाथ से रमज़ान का गिरेवां पकड़ लिया और दाहिने हाथ की उंगली अपने मुख पर रख कर उसे खामोश रहने का हुक्म दिया। कुछ ज्यादा ही भारी पुआल को हाथ में लिए रमज़ान की बोली बंद हो गई और पांव थर्राने लगे। उसने डरते हुए गिरेबान पकड़ आदमी की ओर नज़र डाली। वह कोई ओर नहीं तिकोनी टोपी पहन देहाती के वेश में फारूक था।

"माल वापस करो।" फारूक के हुक्म पर रमज़ान ने चुपचाप माल वापस किया। वह ने सिर्फ हाथों से माल का वजन आंक चुका था बल्कि उंगलियों से टटोलकर उसका राज भी पा चुका था।

पता नहीं फारूक ने ट्रक में खड़े दो साथियों को इशारा किया या वे खुद ही कूद पड़े। एक ने रमज़ान की कनपटी पर पिस्तौल और दूसरे ने बशीर की पीठ पर बंदूक की नली रखी और दोनों को निचले तल्ले की उसी कोठरी में बंद कर दिया जहां सुखे पाउडर से तरल दूध और तरल दूध से ठोस पनीर तैयार होती थी। कोठरी को सांकल चढ़ा कर बंद करने से पहले फारूक ने रमज़ान से कहा—"माल यहां कल शाम तक ही रहेगा। या मुमकिन है कि सुबह होने से पहले ही सही जगह पहुंचा दिया जाएगा।"

जिस समय बशीर की पुकार ने रमज़ान को जगाया था, उसी समय जून की नींद भी उलट गई थी। फिर भी उसने नींद का स्वांग रचा था और धीमे स्वर में बुड़बुड़ाने लगी थी— बाप बेटे दोनों को बस पुआल और पैसों की फिक्र है। मेरा लाल इतने दिनों के बाद घर लौटकर जाने फिर कहां चला गया। इस बारे में दोनों को कोई परेशानी नहीं है। अब जब रमज़ान और बशीर को कोठरी में बंद करके बाहर से सांकल चढ़ाई गई, जून का स्वांग सच्ची और गहरी नींद में बदल गया था।

मोहनकृष्ण का घाव भर गया है और वह बैसाखियों के सहारे चलने भी लगा है। आज घर से निकल कर वह अखबार लेकर और अशोक के नाम खत डालकर लौटा। अशोक के दिल्ली चले जाने के बाद उसका पहला खत कल आया था। खत के पहले दो सफों में उसने क्रॉस फायरिंग की जड़ में आकर मोहनकृष्ण के गोली लगने से आहत होने पर अपनी पीड़ा और परेशानी और यह बात उससे

जानबूझ कर छिपाने पर घर वालों से नाराजगी तथा डैडी की असली हालत जानने के लिए बेताबी प्रकट की थी। साथ ही तुरंत कश्मीर वापस आने की इच्छा ही नहीं इरादा भी प्रकट किया था। शेष बचे खुचे में मोहनकृष्ण की दिलचस्पी के लिए उसने यह सूचना दी थी कि हिंदुस्तान की अधिकांश जनता सरकार बदल जाने से खुश है। लेकिन होम मिनिस्टर मुफ्ती सईद की बेटी के अपहरण के बारे में अशोक ने दिल्ली वालों की किसी प्रतिक्रिया का काई संकेत नहीं दिया था। मोहनकृष्ण ने पहले यह सोचा था कि हो सकता है कि वहां के लोगों तक यह खबर पहुंची ही न हो। तभी उसे ख्याल आया था कि खबरें एक जगह से दूसरी जगह पहुंच ही जाती है। न पहुंचाए जाने या रोके जाने पर भी। मोहनकृष्ण ने भी अपने घायल होने की बात अशोक से छिपा कर रखी थी। पता नहीं उसके भानजे संजय को यह बात कैसे और कहां मालूम हुई और उसने किस फोन, किस फैक्स, किस ई-मेल, किस इंटरनेट, किस सैटेलाइट से यह बात अशोक तक पहुंचाई। केवल अशोक को परेशान करने के लिए। यहां न तो संजय, न दुलारी बहन और न ही उसका बहनोई भाई प्यारा उसका हाल जानने के लिए एक मिनट के लिए भी उसके घर या अस्पताल आया। ऐसे रिश्तेदारों से उसका पड़ोसी हीरालाल अच्छा था जिसने ज़ख्मी मोहनकृष्ण को अस्पताल पहुंचाया था और वहां उसके लिए खून का इंतजाम किया था—मोहन जी खुश था कि हीरालाल के घर में फोन लग गया है, उसकी अपनी नेक नीयती की बदौलत। मोहनकृष्ण ने अशोक को लिखे जवाबी खत में उसे यह सूचना दी थी। हीरालाल का फोन नंबर भी दिया था और ताकीद की थी कि ज़रूरत पड़ने पर वह हीरालाल के घर फोन करके अपने घर वालों को बात करने के लिए बुलवा सकता है।

मोहनकृष्ण "श्रीनगर टाइम्स" उठाकर पढ़ने लगा ही था कि शमीमा जी और मीर साहब उसके "सेहतयाब" होने पर उसे मुबारकबाद देने आ गए। दुआ सलाम के बाद बातचीत शुरू करने के लिए मोहनकृष्ण के पास "बार्निंग टॉपिक" तो था ही। उसने मीर साहब से पूछा—"आपको क्या लगता है? मतलब यह जो नया मसला पैदा हो गया।"

बात सचमुच जलता विषय थी। मीर साहब ने मोहनकृष्ण का आशय समझ लिया। उसने कहा—"जिसे अगवा किया गया है, उसे हर हालत में छोड़ दिया जाएगा। देखना है कि जीत किसकी होती है। सरकार की या अगवा किए गए शख्स और उसे अगवा करने वालों की।"

"आपने एक तरफ अगवा की गई लड़की और उसे अगवा करने वालों को रखा और दूसरी तरफ सरकार को।" मोहनकृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा—

"आप शायद यह कहना चाहते हैं कि यह एक साजिश है जिसमें वह मासूम लड़की भी शामिल है। क्या यह मुमकिन है?"

"नामुमकिन भी नहीं है।"

"मैं आपके साथ इतिफाक नहीं करता हूं। अगर होम मिनिस्टर की अपनी बेटी हो..."

"मुफ़्ती सैईद होम मिनिस्टर का नहीं, उस मौकापरस्त को मुसलमान नाम है जिसे हिंदुस्तानी मुसलमानों की आंखों में धूल झोंकने के लिए इतना बड़ा ओहदा दिया गया है। कश्मीरी मुसलमान इस सियासी गिरगिट को बखूबी जानते हैं जो हर मौसम में रंग बदलता है।"

"आप नैशनल कांफेसी मतलब शेख अब्दुलाई हैं ना। शायद इसीलिए ऐसा कहते हैं।"

"न मैं नेशनल कांफेसी हूं और न ही मैंने कभी कहा है कि" लौकी करेगा चाहे बैंगन करेगा– जो भी करेगा बाबा अब्दुल्ला ही करेगा। मगर पंडित जी, मैं डंके की चोट से कहूंगा कि अगर शेख अब्दुल्लाह नहीं होता तो मुझ जैसे हजारों कश्मीरी मुसलमान आज बड़े-बड़े ओहदेदार नहीं होते, बल्कि तुम जैसे भट्टों के घरों में पनिहारों का काम करते होते और तुम्हारी इंडियन आर्मी और हरी सिंह के इलहाक के बावजूद न तो कश्मीर हिंदुस्तान का हिस्सा होता है और न ही इस वक़्त कश्मीर में भट्टों का ही कोई वजूद होता है।"

मोहनकृष्ण खामोश हो गया। शमीमा जी को लगा कि माहौल में तनाव-सा पैदा हो गया है। उसने अपने मियां को डांटा–"हर वक़्त सियासत ही सियासत। जैसे दुनियां जहान में करने के लिए और कोई बात बची ही नहीं है। पता नहीं आज भान साहब को भी क्या हुआ? इन्हें मैंने कभी भी किसी से भी सियासी गुफ्तगू करते नहीं देखा है।"

शांता और उसके पीछे-पीछे पिंकी चाय का सामान लेकर आई। शांता ने हर तेज़ और होशियार औरत की तरह कमरे के बाहर ही कमरे के भीतर हो रही बातें सुनी थीं। उसने आते ही शमीमा जी से कहा–"आपसे किसने कहा है कि यह सियासत की बातें नहीं करते हैं? इन तीस बरसों में मैंने इनके मुंह से सियासत को छोड़कर और कोई बात सुनी नहीं है।"

शमीमा ही नहीं सभी खुश हुए कि तनाव हंसी मजाक में बदल गया। चाय पीकर कुछ देर के लिए बैठने के बाद शमीमा जी और मीर साहब चले गए। जाने से पहले शमीमा ने मोहनकृष्ण से कहा कि उसे न अभी और न ही विंटर वकेशन में स्कूल जाने की ज़रूरत है। वह अपनी सेहत का ख्याल रखे और फिलहाल घर

पर रहकर ही आराम करे। काम घर पर भी हो सकता है। चपरासी उसके पास डाक और कागजात पहुंचाता रहेगा। मीर साहब ने मोहनकृष्ण को अगले महीने की तनख्वाह भी पेशगी दी।

मीर साहब और शमीमा जी के आने पर मोहनकृष्ण को कोई आश्चर्य नहीं हुआ था। लेकिन उनके चले जाने के बाद जब रमज़ान जू आया तो वह सचमुच हैरान हुआ। रमज़ान देर तक उसे आंखें टिकाए बस खामोशी से देखता रहा। मोहनकृष्ण ने उसका हाथ अपने हाथों में लेकर उसे आने के लिए शुक्रिया अदा किया और कहा कि उस जैसे खुदा दोस्त लोगों की दुआ से वह अब बिल्कुल ठीक है। रमज़ान ने उसके हाथों से अपना हाथ छुड़ाया और दोनों हाथ ऊपर उठाकर क्षीण और दुर्बल आवाज में दुआ मांगी–"या अल्लाह। हम पर रहम कर।"

शांता ने कमरे में आकर रमज़ान जू को चाय के लिए पूछा। लेकिन वह नहीं माना, मोहनकृष्ण के आग्रह के बावजूद शांता वापस चली गई उसके जाने पर मोहनकृष्ण ने नीचे बिखरे पड़े अखबार रमज़ान जू के सामने रखे और बेताबी से रमज़ान के चुभते व्यंग्य की प्रतीक्षा करने लगा। मगर कुछ कहने की बात तो दूर, रमज़ान जू ने अखबारों की तरफ देखा तक नहीं। वह तीन चार मिनट चुपचाप बैठा रहा। फिर मोहनकृष्ण के कंधे पर हाथ रखकर उठ खड़ा हुआ और एक बार फिर हाथ उठाकर दुआ मांगी–"या अल्लाह। हम पर सब पर रहम कर" और चला गया।

रात के नौ बज गए थे कि हीरालाल भी मोहनकृष्ण से मिलने आया और हाल पूछने के बजाय आते ही चिल्लाया–"मुफ्ती की बेटी को छोड़ा जाएगा। डॉक्टर गुरु और जस्टिस एम.एल.भट्ट की कोशिशें कामयाब हो गई।"

"चलो अच्छा ही हुआ।" मोहनकृष्ण ने खुश होकर कहा– "समझौता कराने वालों में मुसलमान के साथ एक हिंदू भी था। यह और भी अच्छा हुआ। लेकिन तुमसे किसने कहा? हमने कुछ नहीं सुना। एक तो सुबह से ही बिजली बंद है और दूसरे हमारे ट्रांजिस्टर में सेल खत्म हो गए हैं।"

"मैंने भी रेडियों ट्रांजिस्टर कुछ नहीं सुना। मुझे एक दोस्त ने फोन पर बताया।"

फोन की बात सुनकर मोहनकृष्ण के मन में एक विचार आया और जब हीरालाल जाने लगा तो वह भी लाठी और टार्च लेकर उसके साथ ही उसके घर गया और वहां से फोन पर मीर साहब को चिकोटी काटी–"मीर साहब, मुबारक हो। मगर जीत सरकार की ही हुई। रूबैया को रिहा किया गया है या किया जा रहा है।"

"हां पंडित जी, मैंने भी सुना।" मीर साहब ने जवाब में कहा–"एक नॉन

एंटिटि लड़की के एवज में पांच खतरनाक दहशतगर्दों को रिहा किया गया। अगर यही जीत है तो हार किसे कहेंगे?"

"यह नहीं हो सकता कि उन्होंने सरेंडर किया हो?" मोहनकृष्ण ने फिर सवाल किया। हीरालाल बेकरार हो गया और भीतर ही भीतर मोहनकृष्ण को कोसने लगा कि पता नहीं इन फजूल बातों में उसका यह पड़ोसी फोन का जाने कितना बिल चढ़ाएगा।

"हो सकता है कि सरकार ही झुकी हो। उसी ने सरेंडर किया हो।" मीर साहब के पास जवाब तैयार था—"और देख लेना पंडित जी। सरकार इस पहले ही खेल में झुक गई। अब वह हमेशा झुकती ही रहेगी।"

"नहीं मीर साहब। असल में...हैलो...हैलो...फोन तो नहीं कट गया? हैलो। हैलो।.

मोहनकृष्ण ने फोन रख दिया। वह समझ गया कि हीरालाल ने ही चुपके से फोन की खड़ी चिप्पी दबा दी है। हीरालाल ने संतोष की सांस लेकर मोहनकृष्ण से पूछा—"क्या कहता था?"

"कहता है कि सरकार ने समझौता करके गलत किया। लगता है कि सेंट्रल में नई सरकार बनने से खुश नहीं है।"

"कैसे होगा?" हीरालाल बोला—"जो भी हो आखिर मुसलमान ही तो है। उस सरकार से कैसे खुश होगा जिसे भारतीय जनता पार्टी भी सपोर्ट दे रही हो।"

मोहनकृष्ण कुछ नहीं बोला। केवल मुस्कुराया।

"एक और बात कहूं" हीरालाल ने इधर-उधर देखकर धीमे स्वर में कहा—"हमारे शास्त्रों में लिखा है कि किसी भी देश में किसी भी काल में राजा क्षत्रिय ही होना चाहिए और आजादी के बाद हमें पहली बार राजा के रूप में वी.पी.सिंह जैसा क्षत्रिय मिला है।"

मोहनकृष्ण पहले की तरह ही चुप रहा। इस बार वह मुस्कुराया भी नहीं।

बसंती राजतंगिनी में तह करके रखा अशोक का पत्र निकाल कर फिर से पढ़ने लगी। अशोक ने लिखा था कि उसका सेमिनार पेपर बहुत सराहा गया। डॉक्टर कुलकर्णी का सुझाव था कि पर्सपेक्टिव बढ़ा कर इसी टॉपिक को डिसअटेशन के लिए भी चुना जा सकता है। उसके रूममेट महापात्र ने यार दोस्तों के साथ बियर पार्टी का वादा करके ही पटा दिया था। इसीलिए किसी ने भी सेमिनार में फजूल के सवाल पूछकर अशोक की टांगे नहीं खींची। इसी लंबे पत्र के पोस्ट स्क्रिप्ट में अशोक ने लिखा था कि उसी महापात्र ने इसी पत्र के कारण उसे यार दोस्तों के मज़ाक का पात्र बताया। अशोक ने यह पत्र उस

समय लिखना शुरू कर दिया था जब महापात्र कमरे में नहीं था। लेकिन पत्र अभी पूरा भी नहीं हूआ था कि रास्कल अचानक टपक पड़ा और पत्र छीन कर कहने लगा कि अब यह किस नए टॉपिक पर कौन सा नया सेमिनार पेपर लिखा जा रहा है? अशोक ने कसम खाकर कहा कि वह कोई पेपर नहीं, बल्कि एक "प्राइवेट" और "इंटिमेट" लेटर लिख रहा है। महापात्र के लिए इशारा ही काफी था। उसने अशोक की गर्दन पकड़ कर कहा कि अशोक के बच्चे तुम कश्मीरियों की क्या कोई अपनी भाषा नहीं है? तुम कौन-से शैली, कीट्स, बायरन हो जो अपनी स्वीट हार्ट को अपनी इंटिमेट बातें इंगलिश में एक्सप्रेस कर पाओगे? और यह बात अपने तक ही सीमित न रखकर महापात्र ने पूरे कैंप्स में इसका ढिंढोरा पीटा था...

बसंती पत्र से दृष्टि हटा कर सोचने लगी कि क्या लज्जित किए जाने पर भी अशोक को अपनी भूल का एहसास हुआ हो? जो आदमी अपने कश्मीरी होने की डींगे मारता है, डंका-बजा-बजाकर कहता है कि चाहे उसे खाने को रूखा-सूखा ही मिले, वह कश्मीर छोड़कर कहीं नहीं जाएगा। वहीं अपनो से अपने दिल की बात अपनी भाषा में नहीं कह पाता है। बसंती ने निश्चय किया कि वह अशोक की चिट्ठी का जवाब कश्मीरी में ही देगी। दुर्भाग्य से वह उर्दू लिखना नहीं जानती है। वह रोमन या नागरी लिपि से ही काम चलाएगी।

जानकीनाथ ने बसंती के कमरे के अधखुले दरवाजे से भीतर झांककर आवाज दी—"मैं ऑफिस जा रहा हूं बेटी। तू क्या पढ़ रही थी?"

"राजतरंगिनी पढ़ रही थी, डैडी।"

"मगर राजनीति मतलब पालिटिक्स तेरा सब्जेक्ट नहीं है।"

"डैडी, मैंने राजनीति नहीं, राजतंरगिनी कहा। बारहवीं सदी में कल्हण पंडित के लिखे कश्मीर के इतिहास का नाम लिया।"

"बेटी, अभी तू इतिहास और राजनीति शास्त्र पढ़कर एम.ए. के लिए तैयारी करना छोड़ दे। तू अखबार और खासकर लोकल अखबार पढ़ना शुरू कर।" जानकीनाथ कमरे के भीतर आकर बसंती को समझाने लगा—"मुझे पता चला है कि एजुकेशन डिपार्टमेंट में टीचरों के तीन सौ पोस्ट भरे जाने वाले हैं। एक-दो दिनों में अखबारों में एडवरटाइजमेंट आएगा।"

"मगर डैडी..."

"मैं जानता हूं कि तूझे उर्दू नहीं आती है।" जानकीनाथ ने बसंती को बात पूरी करने नहीं दी—"मगर उर्दू अखबारों में भी सरकारी इश्तिहार और नोटिस अंग्रेजी में छपते हैं।"

"मगर डैडी उन पोस्टों को पहले ही "फिल" किया गया है। आर्डर जल्दी निकलने वाले हैं। हो सकता है निकल भी गए हों।"

जानकीनाथ बेटी की बात मानने के लिए तैयार नहीं था। "तूने गलत सुना है।" उसने बसंती से इतना ही कहा और कमरे से निकलकर संकल्प किया कि वह लंच ब्रेक में आटो लेकर मुहम्मद अशरफ से उसके ऑफिस में ही मिलेगा।

मुहम्मद अशरफ जानकीनाथ को अपने ऑफिस में नहीं मिला। जानकीनाथ भी दफ्तर बंद होने पर घर लौटने से पहले मुहम्मद अशरफ के ही घर गया। उसकी खुशकिस्मती से वह घर पर ही था। कुछ-कुछ शर्मिंदा होकर उसने जानकीनाथ से कहा कि जान-पहचान के सभी लोगों से पूछताछ करने पर भी उसे एजुकेशन डिपार्टमेंट में नई भर्ती के बारे में कुछ पता नहीं चला।

"लोगों से पूछने की क्या ज़रूरत थी। आप अपने खास रिश्तेदारों से पूछते।"

मुहम्मद अशरफ को जानकीनाथ के लहजे में साफ-साफ गिला नजर आया। उसने कहा—"मैने आप से ईमान की बात कही कि मेरा कोई रिश्तेदार महकमा तालीम में अफसर नहीं है।"

"आप नज़ीर अहमद साहब को भूल रहे हैं जो डायरेक्टर ऑफ एजुकेशन के पी.ए. और आपके हमजूल्फ के छोटे भाई हैं।"

"अरे हां जानकीनाथ जी, मैं तो उसे भूल गया।" मुहम्मद अशरफ का माथा ठनका कि उसके सामने खड़ा सीधा-सादा पंडित जी असल में अव्वल दर्जे का काइर्या है। ऐसा कंप्यूटर है जिसे हर तरह की इन्फोर्मेशन से फीड किया गया है। उसने मांफी मांगने के लहजे में बात आगे बढ़ाई—"पता नहीं नज़ीर अहमद मेरे ज़हन में क्यों नहीं आया? हालांकि मेरे सादू सिद्दीक साहब उसे भाई नहीं, बेटा मानते हैं।"

मुहम्मद अशरफ ने उसी समय जानकीनाथ से उसकी लड़की के बारे में सारी डिटेल्स पूछी और तब सिद्धीक साहब का नंबर मिलाया। संयोग से फोन नज़ीर अहमद ने ही उठाया। छोटी-सी भूमिका बांधने के बाद मुहम्मद अशरफ ने नज़ीर अहमद के सामने असली बात रखी। नज़ीर जवाब में जाने क्या कर रहा था। दो-ढाई मिनट के बाद उसने "इस्लाम एलेकुम" कहकर फोन नीचे रखा और जानकीनाथ से कहा—"पंडित जी सिलेक्शन हो चुका है। हफ्ते दो हफ्ते में आर्डर भी इशू होंगे।"

जानकीनाथ का चेहरा फीका पड़ गया और वह उठकर जाने वाला ही था कि मुहम्मद अशरफ ने उसे रोका—कहा कि अभी दस-पंद्रह बैकेंसियां है। आप कल ही उससे उसके दफ्तर में मिल लीजिए। उसने मुझे यकीन दिलाया कि अल्लाह ने चाहा तो आपकी लड़की का नाम पहली ही लिस्ट में होगा।"

जानकीनाथ ने गदगद होकर मुहम्मद अशरफ का शुक्रिया अदा किया और

कुछ ज्यादा ही झुक कर उसे आदाब अर्ज़ करके घर की ओर भागा। बसंती से उसके सारे सर्टिफिकेट, मार्क्सशीट, टेस्टेमोनियल मांग कर और देर रात तक बैठकर उसने नौकरी की एप्लीकेशन खुद ड्राफ्ट की। अगले दिन दफ्तर जाने से पहले उसने कोरे सफेद कागज के निचले दाहिने कोने पर बसंती से दस्तखत लिए और दफ्तर में उसी कागज़ पर बसंती की एप्लीकेशन खुद टाइप की। एप्लीकेशन के साथ सर्टिफिकेट की फोटोस्टेट कापियां नत्थी करके उसने डायरेक्टर ऑफ एजुकेशन के दफ्तर जाकर परिचय दिया। नज़ीर अहमद ने उसकी बहुत इज्जत की। जानकीनाथ ने बसंती की एप्लीकेशन दिखाई। नज़ीर अहमद ने उस पर सरसरी नजर डालकर जानकीनाथ से कहा कि उसकी बेटी का अच्छा मेरिट है लेकिन सादे कागज पर टाइप की गई यह एप्लीकेशन नहीं चलेगी। उसने आलमारी से एक फार्म निकाल कर जानकीनाथ को दिया और कहा—"आप यह एप्लीकेशन फार्म ले जाइए और इसे भरवा कर कल एप्लीकेंट मतलब अपनी बेटी के हाथ भिजवा दीजिए।"

जानकीनाथ ने बेमन से फार्म लिया। नज़ीर अहमद ने भांप लिया कि जवान बेटी के हाथ एप्लीकेशन भेजने की बात पंडितजी को अच्छी नहीं लगी। जानकीनाथ की ओर सहानुभूति की दृष्टि डालकर वह बड़े ही नर्म लहजे में बोला—"अगर आप रैनावारी से यहां भेजकर अपनी बच्ची को तकलीफ क्यों देंगे? आप ऑफिस तो आते ही हैं। आप ही अपने साथ एप्लीकेशन को ले आइए और किसी चपरासी के हाथ यहां भिजवा दीजिए।"

जानकीनाथ ने ऐसे शरीफ और मददगार लोग बहुत कम देखे थे। उसने गरमजोशी के साथ नज़ीर अहमद से हाथ मिलाकर तहे दिल से उसका शुक्रिया अदा किया और जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। लेकिन उसी समय नज़ीर अहमद को जाने क्या सूझी। वह हठात अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और थोड़ी देर रुकने की गुजारिश करके वह कमरे से बाहर चला गया। जानकीनाथ के मन ने उससे कहा कि शरीफ और हलीम मुसलमान लड़के की हमदर्दी से बसंती को जॉब मिल ही जाएगा। अगर इसी की जगह कोई भट्ट लड़का होता तो मदद करने की बात तो दूर, उसने सीधे मुंह बात भी नहीं की होती।

नज़ीर अहमद कोई दस पंद्रह मिनट के बाद लौटा। अपनी कुर्सी पर बैठने के बजाय वह जानकीनाथ के पास खड़े होकर उससे धीमी आवाज में कहने लगा—"पंडित जी आप सोचते होंगे कि यह बंदा कहां चला गया। मैं साहब मतलब डायरेक्टर साहब के पास गया था। उन्हें यह एप्लीकेशन दिखाई। उन्होंने क्या कहा, वह मैं आपसे नहीं कह सकता। आप ऐसा कीजिए एप्लीकेशन का फार्म भरवा कर किसी

भी सूरत में मेरे पास दस बजे से पहले भिजवा दीजिए और कैंडिडेट को पूरे तीन बजे यहां प्रजेंट होने के लिए कहिए। डायरेक्टर साहब उसका इंटरव्यू लेंगे।

अगले दिन जानकीनाथ सुबह सवेरे उठा और ध्यान-स्नान, पूजा-पाठ करके बसंती के सामने एक बार फिर बुद्धिमता दोहराई कि वह खाना खाकर एक बजे से पहले घर से निकले और तीन बजे से पहले डोयरेक्टर ऑफ एजुकेशन के ऑफिस पहुंचे और पहुंचकर उस रूम के बाहर खड़ी रहे जिसके दरवाज़े पर डायरेक्टर साहब का नेम प्लेट लगा होगा। साहब का चपरासी दरवाजे के बाहर ही स्टूल पर बैठा होता है। एप्लीकेशन की जो दूसरी कापी उसके पास है उसे वह उस चपरासी के हाथ ही साहब को भेजे। इतना समझा कर जानकीनाथ ने चुपके से बेटी के कान में कहा..पहली कापी मेरी अपनी पॉलिसी से उन के पी.ए. के हवाले की गई होगी। डायरेक्टर साहब तुझे अपने रूम में बुलाएंगे और कुछ सवाल पूछेंगे जिन के जवाब तुझे होशियारी से देने होंगे।

बसंती पूरे पौने तीन बजे डायरेक्टर ऑफ एजुकेशन के ऑफिस पहुंची लेकिन सवा तीन बजे तक उसे न डायरेक्टर नज़र आया और नहीं उसके ऑफिस के सामने ड्यूटी देने वाला उसका चपरासी ही। इतना ही नहीं उसे पूरा दफतर ही खाली लगा। कोई चार-पांच मिनट बाद खुशकिस्मती से उसे ऊपर वाली सीढ़ी से उतरता एक शख्स मिला जिससे उसे मालूम हुआ कि डायरेक्टर साहब ऑफिस में नहीं हैं और "जुम्मह" होने की वज़ह से लगभग सभी अफसर, क्लर्क, चपरासी निमाज़ पढ़ने गए होंगे। इतना कह कर वह आदमी खुद भी चला गया।

बसंती परेशान होकर सोच रही थी कि क्या करे, एक नौजवान पास के कमरे से निकल कर उसके सामने आ खड़ा हो गया और बड़ी नरमी से उसे पूछने लगा—"आप डायरेक्टर साहब से मिलने तो नहीं आई हैं?"

"जी हां।" बसंती ने नौजवान को अनजान आफिस में अपना सहारा समझकर उसे दो शब्द बड़ी नम्रता और शिष्टता से कहे।

"आप ही मिस बसंती ग़ंजू तो नहीं हैं?" नौजवान ने मुस्कुराते हुए बसंती से पूछा।

"जी हां!" बसंती ने आश्चर्य और आशा से गदगद होकर कहा।

"आप सोचती होंगी कि मैं कौन हूं? लेकिन मैं आपको सोचने नहीं दूंगा। बस सीधी बात कहूंगा कि मैं डायरेक्टर एजुकेशन का पी.ए. नज़ीर अहमद हूं और आज सुबह आपके वालिद साहब मुझे एप्लीकेशन फार्म दे गये जो मैंने उसी वक़्त डायरेक्टर साहब के हवाले किया।"

"आपका बुहत-बहुत धन्यवाद—मतलब शुक्रिया। डायरेक्टर साहब क्या इस वक़्त यहां नहीं हैं?"

"इस वक़्त यहां है लेकिन थोड़ी देर तक आ जाएंगे।"

"डायरेक्टर साहब भी निमाज़ पढ़ने गए होंगे?"

"नहीं। हमारे साहब निमाज़ पढ़ने कम ही जाते हैं। उनके और भी बहुत से काम होते हैं। रहा मैं? मेरे सारे काम तो बस इसी ऑफिस में हैं। इसीलिए मैं निमाज़ पढ़ने नहीं जा पाता। या यह कहूं कि मेरी निमाज़ भी यही है।"

बंसती के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कुराहट देखकर नज़ीर ने आगे बात बढ़ाई—"आप के चेहरे का मूंड मेरी साफ गोई की तारीफ कर रहा है। मगर आपको मेरी बदतमीजी पर गुस्सा भी होना चाहिए।"

"जी?" बसंती की आवाज में भ्रम का आभास सा था।

"अरे आप डरने क्यों लगी? मैंने अपनी बदतमीजी को खुद कोसा। आप जो एजुकेटिड और कल्चर्ड लेड़ी को अपने ऑफिस में न ले जाकर अपने ऑफिस के सामने भिखारियों की तरह खड़ा रखा। आइए, डायरेक्टर साहब के आने तक मेरे कमरे में आराम से बैठकर अभी-अभी आये दिल्ली के "डेली"अखबार पढ़िए।"

बसंती चुप रही। नज़ीर अहमद ने उसका हाथ पकड़ा और अपने कमरे में ले गया। वहां उसे सामने वाली कुर्सी पर "तशरीफ रखने" को कहा और खुद अपनी सीट पर बैठ गया।

"क्या पता डायरेक्टर साहब कब आएंगे?" कुर्सी पर बैठते ही बसंती ने तनिक परेशान होकर पूछा। "इन्टर्व्यू करेंगे और चले जाएंगे।" नज़ीर ने घड़ी देखकर बात को आगे बढ़ाया—"मतलब आप को सिलेक्ट करके यानी नौकरी में लगाकर।"

बसंती का चमकता चेहरा देखकर वह बोलता ही गया— "वैसे डायरेक्टर सिर्फ उन्हें "अप्पॉयन्ट" करते हैं जो ऊंचे घरों के हों या जिनका किसी वी.आई.पी. से रिश्ता हो।" और फिर अजीब नज़रों से बसंती की ओर देखकर नज़ीर ने चार शब्दों में बात पूरी की—"या खास "इंट्रस्ट" हो।"

बसंती ने शर्म से आंखे झुकाई।

"अरे, मैं भी कैसा आदमी हूं?" नज़ीर ने अपना माथा ठोक कर बसंती से माफी मांगी—"मैंने आपको कमरे में बिठाया मगर वादे के मुताबिक आपके सामने अखबार नहीं रखे।"

नज़ीर ने उठकर पास ही पड़े पेपर बसंती के हवाले किए। फिर अपने ही हाथ से अखबार के पन्ने खोलकर बसंती का हाथ पकड़ा और उसे मश्वरा दिया कि वह इस चौथे पेज का तीसरा कालम पढ़े।

"थैंक यू। मैं पढ़ लूंगी।"

"पढ़कर देख लीजिए कि आदमी अपने लालच या खुशी या जवानी या जनून

के लिए क्या नहीं करता?

ऐसी बेशर्मी की बातें सुनकर, कोई भी व्यक्ति शर्मिंदा होता।

लेकिन नज़ीर ने बसंती के हाथ पर रखा अपना हाथ नहीं हटाया बल्कि उसे उसकी कलाई और फिर कोहनी तक ले गया। लेकिन जब उसने उसे कोहनी से भी ऊपर ले जाने की कोशिश की तो बसंती ने दाहिने हाथ से उसका हाथ हटाकर अपनी दाहिनी बांह छुड़ा ली।

"बसंती जी, इस में हंसने की कोई बात नहीं है।"—नज़ीर ने अपने एकालाप को आगे बढ़ाया—"आदमी जब भी किसी का भला करता है तो अपने भले और फायदे के लिए ही करता है। कोई पागल ही मुफ्त में किसी का भला करेगा। बीस हज़ार की बात तो दूर, मैं बीस या तीस रुपये भी नहीं लेता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं पागल हूं। आपको क्या मैं पागल जैसा लगता हूं? अरे शर्माइए नहीं, साफ-साफ बताइए।

बसंती मुस्कुराई। उसने इन्कार में सिर हिलाया।

"आपने ठीक ही समझा।" नज़ीर ने बसंती के दाहिने कंधे पर हाथ रख कर बात जारी रखी। "मैं जानता हूं कि सभी लड़कियों के पास इतने रुपये नहीं होते कि हज़ारों रिश्वत में दे सकें। मैं वही लेता हूं जो वो दे सकती हैं— रिश्वत नहीं बल्कि मुहब्बत के तौर पर।"

नज़ीर बंसती की प्रतिक्रिया जानने के लिए रुका। बसंती ने अपनी कुर्सी बायीं ओर सरका कर नज़ीर को अपने कंधे से उसे उसका हाथ उठाने पर मजबूर किया। नज़ीर के चेहरे पर एक दुष्ट मुस्कुराहट उभर आई। लहजे में नुकीलापन लाकर वह बोलता गया—"मैं नक़द नहीं जिस्म, सॉरी जिन्स लेता हूं। जिन्स नहीं समझी? नकद का अपोजिट जिन्स है। अरे जिन्स से ही तो जिन्सी लफ़्ज बना है— जिन्सी ख्वाहिशात, जिन्सी तालुकात..."

क्रोध से उफनती बसंती कुर्सी से उठ खड़ी हुई। नज़ीर ने उसके तमतमाते चेहरे को देखकर भी अनदेखा किया और खुद भी खड़े होकर उसके कंधे पर फिर हाथ रखा—"आप को शायद टायलेट जाना होगा? चलिए, मैं आपको "लेडीज" दिखाता हूं।" इतना कहकर उसने बसंती के कंधे से बांह हटा कर उसकी कमर में डाली। बसंती ने आव देखा न ताव। दोनों हाथों की पूरी शक्ति लगाकर उसने नज़ीर को एक ओर धकेल दिया और बिना आगे पीछे देखे तेज़ी से सीढ़ियां उतर कर तीर की तरह ऑफिस से बाहर चली गई।

शाम के छः बजे वह घर पहुंची, जानकीनाथ आंगन के फाटक पर खड़ा उसकी राह देख रहा था। बसंती को गली में घुसते देखकर उसकी जान में जान

आ गई। बेटी के आंगन में क़दम रखते ही उसने पूछा—"बेटी, तेरे चेहरे से ही लगता है तू काफी थकी मांदी है। जाकर आराम कर। लेकिन पहले मुझे यह बता कि इन्टरव्यू कैसा रहा?"

"अच्छा रहा डैडी।" संक्षिप्त सा जवाब देकर बसंती अपनी पढ़ाई के कमरे में चली गई। बिना कपड़े बदले वह निढाल सी बेड पर गिर पड़ी और फिर तकिये में मूंह छिपाए सुबकने लगी।

बेटी के सुकुशल घर लौटने से जानकीनाथ का मन हल्का हुआ था और आंगन में घर के बरामदे पर बैठा वह अपनी बुद्धि को दाद दे रहा था कि किस तरह उसने मालूम किया कि मीर साहब बस नाम का डायरेक्टर है। असली "पॉवर" तो उसके पी.ए. नज़ीर के पास है। कैसे उसने खोज निकाला कि रेंज ऑफिसर मुहम्मद अशरफ इसी नज़ीर अहमद का रिश्तेदार है। नज़ीर को देखते ही उसे विश्वास हुआ था कि आदमी शरीफ ही नहीं मदद करने वाला भी है। बंसती कहती है, कि इंटरव्यू भी अच्छा हुआ। इसका मतलब है कि उसकी अपॉयंटमेन्ट पक्की है।

अंदर के कमरे में बसंती अपनी मां रूपा के गले से लिपट कर ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी। पास खड़ी कुसुम भौंचक्की होकर चुपचाप यह दृश्य देख रही थी।

(13)

पुआल प्रसंग के बाद फारूक़ आज घर आया— पूरे सात दिन बाद। रमज़ान जू दुकान से लौटकर खाना खाने के बाद आराम कर रहा था कि मोटर साइकिल की आवाज़ ने उसे चौंका दिया। उसने खिड़की से झांक कर देखा। जीन्स और जैकेट पहने कोई तगड़ा मुस्टंडा मोटर साइकिल पर सवार था और पीछे दूसरा नौजवान बैठा था। मोटर साइकिल बरामदे के सामने रुकी। रमज़ान अब ठीक-ठीक देख पाया कि पिछली सीट पर बैठा नौजवान कोई और नहीं, फारूक ही है और उसके कंधे से एक बड़ा-सा बैग लटक रहा है। उसके मुस्टंडे साथी ने कैरियर से कुछ पार्सल निकाले और दोनों घर में घुस कर सीधे फारूक के कमरे में चले गए। रमज़ान का दिल दहल गया-साहबजादे ने उस रात पुआल के गट्ठों में छिपाया माल निकाल कर कहीं और दबा दिया था। पता नहीं आज कौन-सी मुसीबत लेकर आए हैं? कुछ देर तक सोचने और अपनी किस्मत को कोसने के बाद रमज़ान उठा और चुपके से फारूक के कमरे के पास जाकर अधखुले दरवाजे से भीतर झांकने लगा। फारूक अपने बैग से वीडियों कैसेट निकाल रहा था और यह नया माल भर रहा था। रमज़ान दबे पांव वापस अपने कमरे में आया। वह हैरान हुआ कि हरामी इन कैसेटों का क्या करेंगे? कहीं ये कैसेटों के रूप में बम तो नहीं

है। या हो सकता है कि फारूक का साथी कैसेट बेचने या किराये पर देने का धंधा कर रहा हो जो सिनेमा हाल बंद होने पर काफी चल पड़ा है। तभी उसके दिमाग में अचानक एक शक कौंधा कि वीडियो कैसेट का धंधा हमेशा सीधा नहीं होता। कैसेट सिनेमा हालों में दिखाई जाने वाली आम फिल्मों के ही नहीं, उन नंगी फिल्मों के भी होते हैं जिन्हें देखना दिखाना ही नहीं, अपने पास रखना भी संगीन जुर्म है। रमज़ान परेशान और बेक़रार हो गया। वह एक बार फिर उठा और दबे कदमों से फारूक के कमरे के अधखुले दरवाज़े की ओट से भीतर का दृश्य देखने लगा। बैग के सारे कैसेट शायद गत्ते के डिब्बों में बंद किए गए थे और फारूक उन्हें गिनकर अपने बैग में रख रहा था। तभी किसी के सीढ़ियां चढ़ने की आवाज़ आई। रमज़ान तुरंत हट कर अपने कमरे की दहलीज पर खड़ा हो गया। जून नीचे से फारूक और उसके साथी के लिए चाय और नाश्ता लेकर आई थी। जो फारूक रमज़ान से बात करने से कतराता था वही जून से खुल कर बातें करने लगा। वही नहीं उसका साथी भी कुछ देर बाद जून सभागर और खाली प्याले-प्लेट लेकर कमरे से निकली और सीढ़ियों से नीचे उतरी। थोड़ी देर बाद फारूक और उसका साथी भी निकल कर नीचे आंगन में आए। फारूक के कंधे पर इस वक़्त भी वही भारी बैग लटक रहा था। रमज़ान ने राहत की सांस ली और जब मोटर साइकिल की फट-फट से उसे यकीन हुआ कि दोनों फाटक से बाहर चले गए तो वह फारूक के कमरे में घुसा। कमरे में उसे कोई कैसेट नज़र नहीं आया। लेकिन खूंटी से लटकती पतलून की पिछली जेब में रमज़ान को कैसेट जैसी ही किसी चीज़ का शक हुआ। फारूक ने जाने से पहले शायद पतलून बदली थी और पिछली जेब में रखी चीज को बाहर निकालना भूल गया था। रमज़ान ने पतलून की जेब को बाहर से टटोल कर देखा। छिपी चीजें विडियो कैसेट नहीं, किताब जैसी लग रही थी। रमज़ान ने पतलून की जेब में हाथ डाला तो वहां से कोई किताब भी नहीं, एक डायरी सी निकल आई। डायरी फारूक के हाथ से ही लिखी गई थी और जो कुछ लिखा गया था वह उर्दू में ही था। कहीं-कहीं अंग्रेजी के अलफाज़ और जुमले भी थे और हां, कुछ सफों पर पिस्तौल, बंदूक और दूसरे हथियारों की तस्वीरें भी थी। रमज़ान की जिज्ञासा बढ़ गई। वह डायरी लेकर अपने कमरे में आया और पन्ने पलट-पलट कर कहीं इबारत भी पढ़ने लगा। ज्यों-ज्यों वह पढ़ता गया, उसके दिल की धड़कन बढ़ती ही गई। एक सफे पर पिस्तौल बना था और नीचे लिखा था:—

...786-सबक=पिस्टल, 7.62 मिली मीटर, मेड इन चायना, वज़न=750.13 ग्राम, कारगर रेंज=50 मीटर भरे हुए मैगजीन का वज़न=170.10 ग्राम, खाली मैगजीन का वज़न=85.5 ग्राम, गोली की रफ्तार=426.7 मीटर फी सेंकड, फायर

की शरह (एक मिनट में =24 फायर...)

रमज़ान ने पन्ना पलटा। लिखा था:—

पिस्टल खोलने का तरीका=पिस्टल से फायर करने वाला बहादुर और बे-रहम होना चाहिए। उसमें यह भी खूबी होनी चाहिए कि दुश्मन के वार करने से पहले खुद वार करे। उसको अपने पिस्टल पर भरोसा होना चाहिए। लेकिन सब से पहले अल्लाह पर भरोसा होना चाहिए...

इबारत मैं पिस्तौल के बारे में जाने और क्या लिखा था। लेकिन नीचे मोटे हरफो में एक और लिखा था:—

कटके मर जा, मगर गुलामी न कर।

परचमें ग़ैर हिलाली की सलामी न कर।।

रमज़ान फिर पन्ना पलट कर अगला सफा पढ़ने लगा...'सब से पहले मैगज़ीन को खोल देते हैं और इसके बाद बॉडी लॉकिंग पिन निकालते हैं। निकालने के बाद बॉडी कवर खोल लेते हैं। इसके बाद एक हिस्से को अलग और दूसरे हिस्से को भी अलग रखते हैं और तब स्प्रिंग को खोल देते हैं। फिर बोल्ट नट को...

रमज़ान ने कुछ ओर पन्ने पलटे। जिसमें कुछ और "सबक" लिखे गए थे जैसे बारूद, बारूद का इस्तेमाल और हिफाज़ती लदाबीर, इलेक्ट्रिक फायर, मिस फायर और वजूहान.. रमज़ान पन्ने पलटता गया। लेकिन कलाशनिकोफ नाम देखकर वह पूरी इबारत पढ़ने लगा—

"...सबक=क्लाइनिकोफ, 7.62 एम एम, मेड इन चायना, खूससियान= यह हलका भी है और छोटा भी। यह फोल्ड भी हो सकता है। यह आटोमैटिक भी है और सेमि आटोमैटिक भी। इसे मुख्तसर में केके कहते हैं...के के से फायर करने का तरीका= सबसे पहले भरा हुआ मैगज़ीन जोड़ना चाहिए। इसके बाद कॉक करना चाहिए। सिर्फ एक बार। फिर सिलेक्टर को अगर आप ब्रस्ट करोगे तो ट्रिगर पर शहादत की उंगली रखते ही 30 गोलियां एक ही वक़्त निकल जाएंगी। अगर सिलेक्टर को आप वन बाय वन जगह रखोगे तो जिस वक़्त आप ट्रिगर को उंगली से खींचोगे उसी वक़्त गोली निकलेगी..."

डायरी में लिखी इबारत पूरी तरह रमज़ान की समझ में नहीं आई। लेकिन जो बात डायरी में लिखी नहीं थी, उसे वह पूरी तरह समझ गया। मां का लाडला सचमुच ट्रेनिंग करके आया है। गुस्से और नफरत से उसका सारा बदन थर्राने लगा। मन में आया कि डायरी को वरक़-वरक़ करके खिड़की से बाहर फेंक दे या साबूत डायरी को चूल्हें में फूंक दे। लेकिन तभी उसकी नज़र डायरी के खुले सफे पर स्याही से खींची क्लानकोफ बदूंक की शक्ल पर पड़ी और उसका गुस्से से

थर्राता बदन दहशत से कांपने लगा। वह उठकर दबे कदमों से फारूक के कमरे में गया और डायरी को वापस खूंटी से लटकती पतलून की पिछली जेब में रखा।

रमज़ान जू को रात भर नींद नहीं आई सुबह बड़गाम से दूध लाने वाला तांगा भी नहीं आया। रमज़ान उनींदी आंखे लेकर ही मस्जिद से हाथ मुंह धोकर और निमाज़ पढ़कर घर लौटा। गांव से दूध न आने के कारण आज दुकान में उसका कोई काम भी नहीं था। लसा रोज की तरह मुंह अंधेरे ही हाज़िर हुआ। बशीर ने उसे छुट्टी दी और खुद रमज़ान के मस्जिद से लौटने के पहले ही दुकान पर चला गया। अन्य दिनों के विपरीत इस दिन बंद दुकान के सामने कोई भी खरीदार दूध के लिए इंतजार नहीं कर रहा था। दुकान में भी सिर्फ दही के दो "डुल" पड़े थे। बशीर चाहता था कि दोनों जल्दी-जल्दी बिककर खाली हो जाएं तो वह भी नौ बजे तक वापस घर जाकर बिना किसी परेशानी के आराम करे। लेकिन दुकान खुलने के बाद भी देर तक कोई आदमी दूध या दही लेने नहीं आया। जो पहला खरीदार आया उसके चेहरे पर और लहजे में घबराहट साफ-साफ दिखाई दे रही थी। वह एक लिटर दूध लेने आया था लेकिन दूध के न होने पर उसी बरतन में आधा किलो दही लेकर चला गया। खरीदारों का इंतजार कर रहे बशीर की नज़र सहसा सड़क पार के मकानों पर पड़ी। मकानों में रहने वाले खिड़की के दो पल्लों के बीच खुली छोड़ी दरारों से "कनिकदल" पुल की ओर जाने क्या देख रहे थे। कुछ ही मिनट बीतने के बाद उन मकानों के नीचे की दुकानें भी अचानक बंद हो गई। बशीर ने भी तुरन्त दुकान का शटर गिराया और सड़क पार करके आस-पास दृष्टि डाली। जाने पुल के उस पार क्या था कि इस पर खड़े भयभीत जवान बूढ़े उसी ओर देख रहे थे। बशीर भी सहमे कदमों से पुल तक गया। उसने देखा कि पुल के पार बायीं ओर के बंड पर मस्जिद से शाली स्टोर तक सी.आर.पी. की कतारों ने जैसे घेरा डाला है। उसी समय पुल पार से एक साइकिल सवार इस पार आया और यहां खड़े लोगों ने उसका रास्ता रोका। साइकिल से उतर कर उसने बताया कि चोटा बाज़ार, गुरु बाज़ार की गलियों में स्टैनगन लेकर फौजी गश्त लगा रहे हैं। इतनी सी खबर देकर "उफ खुदाया" की दुहाई दी और फिर से साइकिल पर सवार होकर अपने रास्ते चला गया। बशीर दौड़कर दुकान तक गया। उसने शटर पूरा गिराकर ताला लगा दिया और निश्चत होकर पुल के उस पार का नज़ारा देखने लगा।

एकाध घंटे में ही कुटक्वल नाले के किनारे बसे मुहल्लों से सी.आर.पी. की गश्त और घेराव की ख़बर व्यथ नदी के किनारे बसे मुहल्लों तक भी पहुंच गई। जिस प्रकार हिमशिखर से लुढ़का बर्फ का ढेला नीचे तलहटी तक आते-आते सैकड़ों गुना बड़ी शीत मानी-हिमानी में बदल जाता है, उसी प्रकार चोटा बाज़ार

गुरु बाज़ार में पुलिस घेराव की खबर दूसरे बाज़ारों और मुहल्लें में पहुंचते-पहुंचते कंकड़ी से पहाड़ और तिल से ताड़ बन गई– बेगैरत बेशरमों, यह घेराव और गश्त नहीं बल्कि बेचारे बेकसूर मुसलमानों के घरों में तलाशी के बहाने उनकी इज्ज़त और आबरू के साथ खेला जा रहा है। बहू बेटियों की बे-पर्दगी और बे-हुरयती हो रही है। सी.आर.पी अकेली नहीं, उसके साथ आर्मी भी है। उनके पास स्टेनगन ही नहीं और भी बहुत से गन राइफलें हथियार यहां तक कि एंटी एयर क्राफ्ट गन भी है। बहाना इलाके में आये दिन सी.आर.पी. पर होने वाले मुजाहिदों के हमले बताया जाता है। मगर असली मक़सद अमन पसंद कश्मीरियों में दहशत फैला कर उनके दिलो-दिमाग में आज़ादी के वलवले को कुचलना है और यह हुकूम नये गवर्नर जगमोहन ने रियासत की सरज़मीन पर पहला ही कदम रखते जारी किया। सी.आर.पी. की खबर अपने घर में बैठे रमज़ान तक भी पहुंची और इसके पहुंचने के कुछ देर बाद ही उसे यह खबर भी मिली कि पुलिस उसके बेटे को पकड़ कर ले गई। खबर असद नजार का बेटा "साहब" लाया था जिसे कादिर कबाड़ी ने भेजा था जो, साहब के कहने के मुताबिक, शहीदगंज थाने के पास रमज़ान का इंतजार कर रहा था।

रमज़ान जानता था कि फारूक की बदकारी उसके सिर पर मंडरा रही है। लेकिन उसने यह नहीं सोचा था कि मंडराती बला इतनी जल्दी झपट कर उसकी इज्जत और शराफत की पगड़ी को इस तरह चिथड़े करके छोड़ेगी।

रमज़ान ने जून से कुछ नहीं कहा और बदहवास सा थाने की ओर दौड़ा। थाने के पास पहुंचते ही उसे अपनी गलती का एहसास हुआ और विक्षोभ से धड़कता उसका दिल निराशा से जैसे अचानक बैठ गया। पुलिस तो घर की तलाशी करेगी ही और फारूक की निगोड़ी डायरी उनके हाथ लगेगी ही। अब तो सब कुछ अल्लाह के हाथ में है।

शहीदगंज थाने तक पहुंचने के लिए टेंकीकदल पुल पार करते ही उसकी टांगों की रही सही शक्ति भी जवाब दे गई। थाने से कुछ दूरी पर लोग इकट्ठे हो गए थे जिनमें उसे कादिर कबाड़ी भी नजर आया जो सूट-बूट पहने दो "हिन्दुस्तानियों" से बातें कर रहा था। रमज़ान को देखकर वह दूर से ही चिल्लाया..."रमज़ान चाचा, सी.आर.पी. तेरे बेटे बशीर को उठाकर ले गई।"

"बशीर को ले गए?" रमज़ान की चीख में आघात से अधिक आश्चर्य का स्वर था!

"हां। दुकान के सामने से उठाकर पता नहीं किस इन्टरॉगेशन सेंटर पर ले गए हैं? मेरा ख्याल था कि अपने इलाके के शहीद गंज थाने में ही होगा मगर वहां जाकर पता चला कि यह सारा काम सी.आर.पी.का है। कश्मीर पुलिस का इसमें

कोई हाथ नहीं है।'' कादिर कबाड़ी ने रमज़ान के कंधे पर हाथ रखकर उसे तसल्ली देते हुए कहा।

''मगर बशीर तो सीधा सादा बंदा है। इसका वास्ता बम और बंदूक से नहीं, दूध, दही और पुआल से है। जिहाद और जंग की बात तो दूर, उस गधे को दीन दुनियां की भी कोई खबर नहीं है। तू तो सब कुछ जानता है कादिर।''

''चाचा, मैं सब जानता हूं लेकिन दिल्ली बम्बई से आए ये अखबार वाले नहीं जानते हैं। ये यही लिखेंगे कि कश्मीरी नौजवान टेरोरिस्ट बन गए हैं। पुलिस और फौज पर छुपकर हमला करते हैं।''

रमज़ान भी समझ गया कि कादिर की बात में वज़न है। दीन-हीन भाव से अखबार वालों के पास जाकर वह गिडगिड़ाया...''जनाब आप की पहुंच दूर-दूर तक होगी। मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि बशीर बेवकूफी की हद तक सीधा सादा है। वह अगर चाहे भी तब भी कोई गलत काम नहीं कर सकता है।''

एक पत्रकार ने रमज़ान को ढाढ़स बंधाई—''देखिए, हमने आप की बात नोट की। रिपोर्ट तैयार करते वक़्त हम इसका ख्याल रखेंगे। अभी कश्मीर के डिविजनल कमिश्नर और श्रीनगर शहर के डिप्टी कमिश्नर से मिलेंगे और आपका मामला भी उनके सामने रखेंगे। वैसे आप पुलिस कंटरोल रूम से पता कीजिए। उन्हें मालूम होगा कि आपके लड़के को कहां रखा गया है।''

''आपका बहुत शुक्रिया जनाब। मैं। अल्लाह की क़सम खाकर यकीन से कह सकता हूं कि बशीर बेकसूर होगा। उसकी जगह अगर कोई और, मतलब उसका छोटा भाई भी होता, तब भी मैं इतना बाबेला नहीं करता। बशीर और उसके भाई मैं...''

कादिर कबाड़ी रमज़ान के कंधे पर हाथ रखकर उसे पुल के पार ले गया. ..''चाचा, तुम ज्यादा बकवास करने लगे। चलो, कंटरोल रूम से बशीर का अता-पता मालूम करें।'' रमज़ान को कंटरोल रूम में भी कुछ मालूम नहीं हो सका और वह थका हारा घर लौटा। फारूक की ''बहादुरी'' से उसकी रात की नींद उचट गई थी और बशीर की ''बेचारगी'' ने उसके दिन का करार छीन लिया। लेकिन जब वह कादिर के साथ अपने घर पहुंचा तो बशीर उससे पहले ही वहां आ गया था। दोनों एक दूसरे को हैरान होकर देखने लगे। रमज़ान चुप रहा। बशीर ने उसे बताया कि कनिकदल पुल के इस पार, जब उस पार का तमाशा देखने वालों की भीड़ बढ़ गई तब पुलिस ने लाठी चार्ज करके लोगों को वहां से हटाया। कोई आध दर्जन आदमियों को पुलिस गाड़ी में बैठाकर चांदमारी मैदान से आगे बेमिना कॉलेज के पास गाड़ी से उतार कर खुला छोड़ दिया गया जिन में बशीर भी एक था।

कादिर कबाड़ी को बशीर का बयान न सच्चा लगा और न ही अच्छा। उसने रमज़ान से कहा...''चाचा, तेरा यह ''फरजंदे अकबर'' या बकवास कर रहा है या होशो हवास खो बैठा है। या फिर अपना ईमान बेचकर सी.आर.पी. का मुखबिर बन गया।''

जून चाय लेकर आई। कादिर बिना चाय पिए उठकर चला गया। रमज़ान ने भी चाय की प्याली को वहीं डायरी को फिरन के भीतर छिपाकर अपने कमरे से माचिस ले आया और गुहाल के पिछवाड़े जाकर डायरी को तीली लगा दी। डायरी में पूरी तरह जलने और जले पन्नों-पुरजों के हवा में इधर-उधर बिखरने के बाद ही वह प्याली उठाकर ठंडी हो गई चाय की चुस्कियां लेने लगा।

(14)

हीरालाल अगले दिन के लिए सब्जी और दूसरी छोटी-मोटी चीजें खरीदकर पांच बजे ही घर लौटा। कपड़े बदलने और चाय पीने के बाद वह साढ़े पांच बजे मोहनकृष्ण के यहां गया और देर रात तक वहीं बैठा उसके साथ कुटक्वल नाले के पार हुई घटनाओं पर चर्चा करता रहा। हीरालाल के पास ताजा समाचार और उन समाचारों की मीमांसा...सब कुछ था। उसने मोहनकृष्ण को ''भीतर की बात'' से अवगत कराया कि चोटा बाजार ही असल में ''लिबरेशन फ्रंट'' का गढ़ है। फ्रंट का लीडर जावेद नलका वहीं रहता है। इसीलिए उसी इलाके में पिछले एक दो महीनों से सी.आर.पी. पर छिपकर हमले हो रहे थे। जावेद नलका असल में वाटर वर्क्स डिपार्टमेंट में चपरासी है और उन्हीं नकलसीज़ी के खानदान का है जिन्होंने तीन-चार साल पहले जगमोहन की पहली गवर्नरी में दिन रात एक करके इस सूखे इलाके में भी नलकों का पानी पहुंचाया था। जगमोहन की बात चली तो हीरालाल ने आज की पुलिस एक्शन के बारे में दिन भर दफ्तरों दुकानों में हुई चर्चा से निकले तीन निष्कर्ष मोहनकृष्ण के सामने रखे। पहला यह कि जगमोहन यह कसम खाकर दूसरी बार कश्मीर आया है कि वह दो-तीन महीनों में ही सब कुछ ठीक करेगा। दूसरा यह कि वी.पी. सिंह की नई सरकार ने फारूक अब्दुल्लाह से साफ-साफ कहा है कि वह पुरानी सरकार की तरह रियासत के दिनों दिन बिगड़ती हालत बरदाश्त नहीं करेगी। इसीलिए फारूक ने पुलिस अफसरों को हुक्म दिया है कि वे दो हफ्तों में पाकिस्तानी एजेंटों का सफाया करें। तीसरा हफ्ता सरकार का निष्कर्ष यह था कि असल में फारूक ही रियासत के नये गवर्नर और सेंटर की नई सरकार के लिए प्रोब्लम पैदा करके उन्हें यह मानने पर मजबूर करना चाहता है कि कश्मीर में अब्दुल्लाह खानदान के सिवा किसी और की चल नहीं सकती। अंत में हीरालाल ने मोहनकृष्ण के कान में चुपके से एक ''स्टाप प्रेस'' आइटम भी डाला कि जगमोहन को गवर्नर बनाकर भेजने पर नाराजगी दिखाते हुए फारूक ने इस्तीफा दिया है।

शांता हीरालाल के इस तरह से जमे रहने पर चिढ़ रही थी। उसे अपने पति मोहनकृष्ण के साथ घर गृहस्थी की बातें करनी थीं। आधा "चिलैक्ला" और पूरा "चिलेखुर्द" अभी बाकी है लेकिन घर में सिर्फ आधी बोरी काठ कोयला और एक बोरी पात कोयला बचा है। जाड़े की सुविधा के लिए अभी भी इंतजाम हो सकता है। बर्फ गिरने के बाद अगर कुछ मिलेगा तो वह कोयला नहीं, पानी में भीगी काली माटी होगी और फिर इस गप्पी हीरालाल के आने से कुछ देर पहले ही "कुलावती" किसी इंजीनियर लड़के का टीवा, उसकी कम्पनी का नाम और पता पूरी कुलावती लेकर आई थी। शांता ने मन में सोचा था कि अगर और सारी बातें ठीक-ठाक हों तो टीवा देखकर ग्रह, राशि और कुल मिलाने की ज़रूरत नहीं। वह लड़के-लड़की दोनों की जन्म पत्री गणपतयार जाकर महागणपति के चरणों में रखेगी जो स्वयं विघ्नहर्ता और सिद्धिदाता है। शांता इसी बारे में मोहनकृष्ण के साथ विस्तार से बात करना चाहती थी मगर हीरालाल जी महाराज उसका पिण्ड छोड़े तब ना!...पिंकी ने सोचा था कि सात बजे के बाद वह डैडी से मीर साहब को फोन करने के लिए कहेगी। क्या पता कि टीचरों की अपॉयमेंट का आर्डर निकल गया हो? काश हीरालाल अंकल तशरीफ का टोकरा अब उठाकर ले जाते!

नौ बजे के करीब हीरालाल को अचानक याद आया कि आज टीवी पर शांताराम की "तीन बत्ती चार रास्ता" फिल्म दिखाई जाएगी। उसने मोहनकृष्ण से कल फिर आने का वादा किया और उठकर चला गया। मोहनकृष्ण ने राहत की सांस ली और पत्नी के चेहरे को गौर से देखते हुए उसके मूंड को समझने की कोशिश करने लगा। बोला..."जोंक की तरह चिपके बकवासी से आखिर छुटकारा मिल ही गया। चलो, भात परोसो। तुझे कोई ज़रूरी बात करनी थी।" शान्ता को अब पति के साथ बेटी के लिए आए इंजीनियर जैसे वर के लिए बातचीत करने का उत्साह नहीं रहा था। उसने मोहनकृष्ण और पिंकी के लिए थालियों में भात-सब्जी परोसी और पिंकी से उसकी कांगड़ी मांगकर बिना कुछ खाए बिस्तर में घुस गई।

कढ़ाई ट्वीड फिरन को लेकर कुसुम और बसंती के मध्य रस्साकशी-सी चल रही थी। कुसुम कहती थी..."दीदी इसे तुम पहन लो। मेरे पास तुम्हारा ही बुना हुआ मोटा-सा ग्रे-एण्ड ह्वाइट स्वेटर है।" लेकिन दीदी अपना बड़प्पन दिखाती थी..." नहीं कुसुम, इसे तू रखेगी। मैंने जो कहा सो कहा। अब मैं कुछ और सुनना नहीं चाहती।"

रूपा दोनों का बहानापन देखकर प्रसन्न तो हो रही थी, लेकिन साथ ही उसके मन में टीस उठ रही थी। कुछ दिन पहले बसंती के साथ जो कुछ घटा था उससे वह अपनी उम्र से अचानक दस साल बड़ी हो गई थी... समझदार, गम्भीर और

खाने-पहनने की लालसा से मुक्त रूपा को अपनी गलती का एहसास हुआ। पता नहीं उसने नूरदीन से दूसरा फिरन भी क्यों नहीं खरीदा? डेढ़ सौ तो उसके पास थे ही तीन सौ का इंतजाम करना उसके लिए मुश्किल नहीं था। असल में उसने सोचा था कि नूरदीन एक फिरन के नकद पैसे लेकर दूसरा फिरन उधार में देगा। इससे पहले उसने दो रफल के और एक पश्मीना का शाल एक पैसा भी नकद लिए बिना उधार में दिए थे और रूपा ने उधार की यह रकम छः महीनों में चुकाई थी। लेकिन आज नूरदीन अड़ गया था कि हालात को देखते हुए उसने उधार देना बंद किया है। छः महीने की बात तो दूर, आज आदमी यह भी नहीं जानता कि कल क्या होने वाला है? कल की बात भी दूर की बात है, बंदा-बशर यह भी नहीं जानता है कि आज रात को क्या होगा?

जानकीनाथ के ऑफिस से लौटते ही दो बहनों की रस्साकशी में ठहराव आया। फिरन कुसुम के हिस्से और जीत बसंती के हिस्से में आई। रूपा ने पति के घर में कदम रखते ही उससे अमीराकदल लाल चौक इलाकों के हालात के बारे में पूछा। जानकीनाथ ने बताया कि वैसे तो सब कुछ नार्मल चल रहा है, अलबत्ता अकांउट ऑफिसर गुलाम हसन अफवाह फैला रहा था कि गोलबाग और शहीदगंज के इलाके को सी.आर.पी. और फौज के हवाले किया गया है। "यहां रैनावरी की सड़कों बाज़ारों का क्या हाल है? "रूपा ने पूछा।

"यहां भी सब कुछ ठीक था। हां, क्रालयार के तिराहे पर कुछ लड़के-लड़कियां रुपये-पैसे इक्ट्ठे कर रहे थे। शायद किसी "ससरस" मतलब भंडारे का इंतजाम हो रहा था।" इतना कहकर जानकीनाथ अपने कमरे में चला गया और कपड़े बदलकर, फिरन कनटोप पहनकर वापस बैठक में आया। बसंती ने फूंक-फूंक कर सुलगाई कांगड़ी उसके हवाले की। थोड़ी देर बाद रूपा चाय और कलमा लेकर आई। कुसुम ने टीवी आन किया।

"तो आज लाइट है?" जानकीनाथ ने सुखद आश्चर्य से पूछा।

"हां डैडी। आज कम से कम आधी रात तक लाइट रहेगी। आज फिल्म का दिन है ना। "कुसुम बोली।

"तो फिर कमरे के दोनों लैम्प और तीनों खिड़कियां बद करो। लगता है कि महादेव की चोटी से आने वाली कोल्डेवेव डल लेक पार करके हमारे घर में घुस रही है।" पिता की बात सुनकर बसंती ने खिड़कियों के पट बंद किए और कुसुम से पूछा—"आज कौन-सी फिल्म है?"

'शांता राम की तीन बत्ती चार रास्ता" कुसुम के पास टीवी प्रोग्रमों खासकर फिल्मी प्रोग्रामों के बारे में सौ फीसदी सही सूचना होती थी।

"क्या कहा?—तीन बत्ती चार रास्ता" जानकीनाथ हैरान हुआ..."यह फिल्म

का नाम है या क्रेडिट डेबिट का कोई स्टेटमेंट?" तीन हजार क्रेडिट और चार हजार डेबिट।"

कुसुम को ही नहीं, गुमसुम बैठी बसंती को भी हंसी आई। रूपा ने पति के मजाक का जवाब दिया.." देखो जी, यह तुम्हारा ऑडिट सेक्शन नहीं, हम सब का घर है...हम मां बेटियां फिल्म खत्म होने तक यहां से नहीं हटेंगी।

"मुझे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।" जानकीनाथ बोला... मैं भी आधी रात क्या, पूरी रात इसी कमरे में पड़ा रहूंगा। फिल्म देखूंगा या नहीं देखूंगा, वह मेरी मरजी है।"

जानकीनाथ की मरजी फिल्म देखने की ही थी। क्योंकि शांताराम आज का नहीं, उसकी जवानी के दिनों का डायरेक्टर था जिसकी उसने कम से कम आधा दर्जन फिल्में देखी थीं। हां, आज टेलिकास्ट होने वाली फिल्म उससे छूट गई थी। अब तो उसे यह कमी पूरी करने का अवसर मिला था। मगर अपनी बदकिस्मती से वह आज भी यह फिल्म देख नहीं पाया। टीवी पर अंतिम न्यूज बुलेटिन सुनने के बाद ही उसे नींद आई। वह ऊनी नमदे पर पड़ा-पड़ा ही ऊंघने लगा। रूपा ने समझदारी से और अहतियात से काम लेकर पति के फिरन के नीचे से सुलगती कांगड़ी निकालकर किनारे रख दी।

कोई एक डेढ़ घंटे के बाद जानकीनाथ की नींद खुली और वह लघुशंका से निर्वृत होने के लिए आंगन में उतरा। बंद कमरे से खुले आंगन में आकर वह तीखी चुभती सर्दी से नहीं, बल्कि आस-पास की गलियों के शोर शराबे से घबरा गया। ऊंचे बरामदे पर खड़े होकर उसने जब उचक कर सामने की गली और साथ वाले बाज़ार की ओर नज़र डाली, उसका पेशाब बंद हो गया। गली बाजार में बिजली के चमकते बल्बों और जलते लट्ठों से लपकते शोलों की रोशनी में बौखलाई भीड़ देखकर उसकी समझ में नहीं आया कि माजरा क्या है? आज शब-ए- बरात या शब-ए-कदर भी नहीं है। शायद अश्फाक मजीद वानी, हमीद शेख, जावेद नलका और यासीन मलिक की तरह ही टेरेरिस्ट की किसी और टोली को रिहा किया गया होगा और उनकी रिहाई का ही यह जश्न मनाया जा रहा होगा। दिमाग में यह ख्याल आते ही जानकीनाथ की जान में भी जान आई–"चलो अच्छा ही हुआ। ऐसे ही जश्न मनाकर पब्लिक ही नहीं टेरेरिस्टों भी ठंडे हो जाएंगे। निश्चिंत और लघुशंका से निर्वृत होकर वह वापस कमरे में आया और जो कुछ भी देखा था, रूपा को बताने लगा। रूपा ने उठकर धीरे से खिड़की खोली।

"मम्मी, खिड़की बंद करो। ठंड आ रही है।" कुसुम चिल्लाई। "ठंड की बच्ची टीवी बंद कर और देख बाहर क्या हो रहा है?" रूपा ने डरते-डरते फुसफुसाकर कहा।

"यह कोई नयी बात नहीं है। ऐसा होता रहा है और होता रहेगा। ठंड से बचो, खिड़की बंद करो और मुझे आराम से फिल्म देखने दो।" कुसुम ने टीवी से आंखें हटाए बिना मां से कहा।

रूपा ने खिड़की बदं की और किसी से कुछ कहे बिना तेजी से सीढ़ियां चढ़कर तीसरी मंजिल के बड़े कमरे में गई। उसने पहले पश्चिम दिशा की खिड़की खोली जहां से सूरटेंग मुहल्ले का तिराहा साफ नजर आता था। तिराहें के बीचों बीच जलते अलाव के गिर्द जैसे रैनवारी का पूरा इलाका जमा होकर नारे लगा रहा था। दूरी और शोर के कारण उसे साफ-साफ कुछ भी सुनाई नहीं दिया। लेकिन नारों की लय पहचान कर उसे उनका आशय समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उसने यह खिड़की बंद की और सोनमार्ग, बालतल, ज़ोजीला आने वाली कोल्ड वेव की परवाह किए बिना उत्तर की ओर खुलने वाली खिड़की खोली जहां से हजरतबल दरगाह जाने वाली सड़क का एक हिस्सा दिखाई देता था और जितना दिखाई देता था वह भी अपने घरों से बाहर आए लोगों से खचाखच भरा था। उसे अंदेशा नहीं यकीन हुआ कि यह जनधारा तेलबल की जलधारा की तरह यहां से दरगाह तक चली गई होगी। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। क्या पता दरगाह में वाज़ पढ़ने वाला मौलवी इंतजार करते हजूम को अचानक काफिरों को खत्म करने का फतवा सुनाए। वह हांफती हुई टीवी वाले कमरे में आई और बसंती और कुसुम की ओर टुकुर-टुकुर कर देखने लगी।

"मम्मी, मेरी तरफ इस तरह क्या देख रही हो? फिल्म क्यों नहीं देखती हो?" कुसुम बोली..."तीन बत्ती चार रास्ता" बहुत अच्छी फिल्म है।"

"टीवी बंद कर और बाहर हो रहे प्रलय को अपनी आंखों से देख। तीन बत्ती चार रास्ता देखने से क्या होगा? बाहर तीन नहीं, तीन हजार बत्तियां जल रही हैं। लेकिन फिर भी हमें भागने के लिए चार क्या, एक रास्ता भी नहीं मिलेगा।"

कुसुम की समझ में कुछ नहीं आया। वह भौंचक्की सी होकर रूपा की ओर देखने लगी। बसंती ने टीवी ऑफ किया और उठकर मां के पास आई। उसकी देखा-देखी में कुसुम भी मां से सटकर बैठ गई। रूपा दोनों लड़कियों को गले से लगाकर सुबुकने लगी। कर्त्तव्यविमूढ़ जानकीनाथ पत्नी और पुत्रियों की ओर गुमसुम देखता रहा।

(14)

मोहनकृष्ण कांगड़ी के बुझे कोयलों को फू फू कर सुलगाते हुए अपने सामने पड़े तीन मैगज़ीन के पन्ने पलट रहा था। अंग्रेजी की ये पत्रिकाएं शमीमा जी ने चपरासी के हाथ तीन बजे भेज दी थी। साथ ही एक परची भी दी थी कि भान

साहब को छोड़ स्कूल के पूरे स्टाफ और स्टूडेंटों में कोई ऐसा शख्स नहीं है जिसे अंग्रेजी के इन "रिसालों" से कोई दिलचस्पी हो। इन्हें खरीदने में स्कूल के पैसे फजूल में ज़ाया होते हैं। रद्दी में बेचने से पहले अगर भान साहब उन्हें पढ़ लें तो बहसीयत प्रिंसीपल शमीमा मीर को खुशी होगी कि स्कूल के रीड्रिंग रूम फंड का किसी ने कोई फायदा तो लिया।

तीनों मैगजीनों में पढ़ने के लिए बहुत मसाला था। फिर भी मोहनकृष्ण से कुछ भी पढ़ा नहीं गया। पढ़ने के लिए ज़रूरी चीज़ तो रोशनी है। अब अंधेरा होने वाला है और किसी वक़्त लाइट फिर चली जा सकती है। जब लाइट के चले जाने का अंदेशा डेमाक्लीज की तलवार की तरह सिर के ऊपर लटक रहा हो तो बंदे को वह शान्ति कहां से मिलेगी जो कुछ भी पढ़ने के लिए बहुत ज़रूरी है।

आंखों के सामने खुली पत्रिका होने के बावजूद मोहनकृष्ण का बनजारा मन जाने कहां-कहां भटक रहा था कि अचानक उसके कानों को गली बाज़ार से आता शोर सुनाई दिया और भटकता मन स्थिर हो गया। कहीं अड़ोस-पड़ोस में आग तो नहीं लगी है? वह कमरे से बाहर निकला। साथ वाले कमरे में शांता और पिंकी सोई पड़ी थीं। वह आंगन में और आंगन का दरवाज़ा खोलकर गली में आया। सामने सड़क पर जो शोर हो रहा था उससे उसके कान फटने लगे। वह गली से निकल कर सड़क पर आया। सामने सड़क पर जितने लोग जमा हुए थे उतने "मोये शरीफ" की अंजिटेशन के दिनों भी इक्ट्ठे नहीं होते थे और अजीब बात यह थी कि सड़क के किनारों के मकान वालों ने "चिल्ले कलां" की कड़ाके की सर्दी की परवाह किए बिना खिड़कियों के पल्ले खोल दिए थे और बिजली के जलते लैम्प खिड़कियों से बाहर निकाल कर सड़क को रोशनी करने के लिए लटका दिये थे। बिजली की इस रोशनी में मोहनकृष्ण ने अपने मुहल्ले वालों को पहचान लिया। लेकिन बहुत सारे ऐसे लोग भी थे जिन्हें वह पहचान नहीं पाया था। मगर सभी एक स्वर में "अल्लाह-उ-अकबर" और कुरान की कुछ आयतों को ऊंची आवाज में गुंज और गरज रहे थे। मोहनकृष्ण को कुछ जवानों के हाथों में प्लेकार्ड भी दिखाई दिए, जिनमें से कुछ उसने पढ़ भी लिये। एक प्लेकार्ड पर शेर लिखा था—"चीनो अरब हमारा हिन्दुस्तान हमारा, मुस्लिम है हम वतन है सारा जहां हमारा।" शेर के नीचे अलामा इकबाल लिखा था। दूसरे इश्तहार पर भी शेर ही था—"रूस पै जिल्लत तारी है, अब भारत की बारी है।"

मोहनकृष्ण तीसरा इश्तहार पढ़ना चाहता था कि अचानक एक नहीं, कई लाउड स्पीकर एक साथ गूंजने लगे और सड़क पर जमा लोग उनकी आवाज़ के साथ आवाज़ मिलाकर कुरान की आयतें दोहराने लगे। मोहनकृष्ण ध्यान देकर सुनने लगा। उसे महसूस हुआ कि अपने मुहल्ले की तरह ही आस-पास के मुहल्लों

से भी ऐसी ही लाउड-स्पीकर की आवाज़ आ रही थी। वह चुपके से घर लौटा। अपने आंगन में पहुंचते ही उसने देखा कि शांता और पिंकी त्रस्त होकर बरामदे में खड़ी है जैसे भूकम्प से अपनी जान बचाने के लिए ऊपर के कमरे से नीचे आंगन में आ गई हो। मोहनकृष्ण को महसूस हुआ कि अब व्यथ के उस पार के मुहल्लों से भी लाउडस्पीकर कहां से आये और उन्हें एक साथ चालू करना ऐसा कमाल का इंतजाम किस ने कब किया था? वह कान लगाकर सुनने लगा। अभी अरबी में आयतें नहीं पढ़ी जा रही थी। बल्कि खून खौलाने वाली जबरदस्त तकरीरे की जा रही थीं। खौलते खून की गर्मी के कारण ही सड़कों पर आये लोगों के लिए पोष की कंपकंपाती ठंडी रात भी ज्येष्ठ के दिन की धूप में बदल गई थी। जवानों की बात तो दूर, बच्चों और बूढ़ों को भी न चुभती ठिठुरानी ठंड की परवाह और न ही जुकाम या बुखार का ही डर था। मोहनकृष्ण को लगा कि किन्ही होशियार और तेज़-तर्रार मौलवियों की तक़रीरे सैकड़ों "कैसेटों" पर रिकार्ड की गई है और उन्हें एक साथ बजाया जा रहा है। नहीं, यह असम्भव है। शायद अपने मुहल्ले की मस्जिद के लाउडस्पीकरों की अनुगूंज ही चारों ओर से आ रही है या शायद उसके अपने कानों में ही कुछ खराबी हो...

मोहनकृष्ण इसी उधेड़बुन में था कि शांता ने उसे झंझोड़ कर सामने वाले मकान की ओर इशारा किया। मोहनकृष्ण ने देखा कि सामने वाले मकान में मदन जी और उसके दोनों बेटे एक ही खिड़की से तीनों सिर बाहर निकाले त्रस्त होकर सहायता के लिए पड़ोस के घरों को निहारते हैं और फिर असहाय होकर ऊपर आकाश के तारों की ओर ताकते हैं।

मदन जी के घर के पीछे ही हीरालाल का मकान था। मोहनकृष्ण को तुरन्त सूझा कि हीरालाल के घर में फोन है। उसने शांता से हीरालाल के घर पांच दस मिनट के लिए जाने का इरादा व्यक्त किया और ताकीद की कि मां बेटी बाहर और भीतर के दरवाजे अन्दर से बंद करके उसका इंतजार करें।

मोहनकृष्ण ने हीरालाल के घर का दरवाजा हल्के से खटखटाया। किसी ने दरवाज़ा नहीं खोला। लेकिन कुछ देर बाद ऊपर के कमरे की एक खिड़की थोड़ी-सी खुली और तुरन्त बंद हुई। मगर कुछ क्षण बाद ही मोहनकृष्ण के लिए दरवाज़ा खुला और वह हीरालाल के साथ उसकी दूसरी मंजिल के कमरे में जाकर बैठ गया।

"महाराज गंज, छताबल और रावलपुर से मेरे तीन रिश्तेदारों के फोन आए। हर जगह यही हाल है। लोग चीटियों की फौज की तरह सड़कों पर आ जुटे हैं और सभी छोटी बड़ी मस्जिदों से लाउडस्पीकर चिल्ला रहे हैं"—हीरालाल की बात सुनकर मोहनकृष्ण का संदेह दूर हो गया। वह समझ गया कि हर तरफ एक ही

लाउडस्पीकर की अनुगूंज नहीं सुनाई देती है बल्कि हर तरफ अलग-अलग लाउडस्पीकर एक ही आवाज में चिल्ला कर एक ही घोषणा करते हैं।

"असल में सारा कसूर टीवी का है।"

"टीवी का?" मोहनकृष्ण को हीरालाल की यह बात समझ में नहीं आई।

"जी हां। बल्कि मैं इसे कसूर नहीं कहूंगा। यह साफ साज़िश है। आप शायद नहीं जानते कि पिछले एक महीने से हर रोज़ आज़र्बयाजान और रोमानिया के सीन दिखाए जाते हैं कि जब सरकार के खिलाफ सारे लोग एक साफ सड़क पर आकर "आज़ान" दें तो सरकार का तख्ता अपने आप पलट जाएगा।" घर में टीवी न होने के कारण मोहनकृष्ण चुप रहा।

"मान लिया कि न्यूज़ कवरेज के हिसाब से ये बहुत अच्छे सीन थे लेकिन क्या श्रीनगर टेलिब्रिजन से यह टेलिकास्ट ज़रूरी था? यह भी हो सकता है कि टीवी वालों की अन्टीनेशन एलिमेंट के साथ कोई सांठ-गांठ हो और लोगों में अन्टी इंडिया जोश भरने के लिए उन्होंने इस "कवरेज" को रामबाण नुस्खा समझा हो!"

मोहनकृष्ण ने इस बात पर भी कोई टिप्पणी नहीं की। उसने हिम्मत जुटा कर हीरालाल से निवेदन किया—"मैं एक फोन करना चाहता हूं।"

"आप शायद नहीं जानते। हमारे फोन में एस-टी-डी सुविधा नहीं है।"

"आप ने शायद गलत समझा। मैंने अशोक को दिल्ली फोन नहीं करना है। बस एक आध-मिनट के लिए यहीं शहर में डल गेट बात करनी है।"

हीरालाल ने अनमने भाव से फोन मोहनकृष्ण की तरफ सरकाया। मोहनकृष्ण ने ढिठाई से चौंगा उठाकर नंबर डायल किया और बात करने लगा—"मैं भान, एम.के. भान बोल रहा हूं। शमीमा जी आदाब। क्या? ज़नान खाने में छिपे बैठे हैं? अरे आप तो हम से भी ज़्यादा हिम्मत हारे बैठे हैं। ठीक है। ठीक है फोन नम्बर नोट कीजिए 431578 ठीक है। मैं कुछ देर यहीं अपने दोस्त के यहां बैठूंगा। "ठीक है।"

मोहनकृष्ण के फोन नीचे रखते ही हीरालाल ने उत्सुकता से उसकी ओर देखा। मोहनकृष्ण बोला—"मैंने डिप्टी डायरेक्टर एजुकेशन मीर साहब के घर फोन किया था। उनकी मिसेज़ ही हमारे स्कूल की प्रिंसिपल हैं। कह रही थीं कि मीर साहब इस हंगामें को कलेक्टिव स्यूसाइड मतलब सामूहिक आत्महत्या मानते हैं। इसके पीछे कोई बड़ा मकसद नहीं बल्कि नारकोटिस और चरस की तिजारत है। पड़ोसियों के इसरार के बावजूद भी मीर साहब घर से बाहर नहीं निकले। भटके और कम अक्ल लोगों की ज़ोर जबरदस्ती से बचने के लिए वह ज़नान खाने में छिपे बैठे हैं। वह एक दो मिनट बाद मुझे यहीं आपके घर फोन करेंगे।"

हीरालाल को आश्वासन देकर कि अगले फोन का चार्ज इधर से नहीं, उधर

से ही देना होगा—मोहनकृष्ण ने बात आगे बढ़ाई—"उस कम्यूनिटी में भी कुछ समझदार और उसूल वाले लोग हैं।"

"हां हां, अपनी कुर्सी बचाने के लिए जिन्हें समझदारी का दिखावा ज़रूरी है।"

मोहनकृष्ण ने घड़ी देखने के लिए फिरन से हाथ बाहर निकाला। हीरालाल को गलतफहमी हुई कि अनचाहा मेहमान हाथ सैंकने के लिए कांगड़ी मांगता है। उसने बेदिली से अपनी कांगड़ी मोहनकृष्ण के हवाले की। मोहनकृष्ण ने अभी अपने हाथ कांगड़ी पर रखे भी न थे कि फोन की घंटी बजी। हीरालाल ने फोन उठाया। "हैलो" कह कर मोहनकृष्ण के हाथों में दिया और कांगड़ी को फिर से अपनी दो टांगों के बीच रखा।

फोन मीर साहब ने नहीं, शमीमा जी न किया था। इस बार उसकी हालत और बुरी थी। वह सचमुच रो रही थी कि मीर साहब अपने उसूलों पर डटे रहकर भीड़ में शामिल नहीं हो रहे हैं और सारा हजूम उनका दुश्मन हो गया है। वह रो रो कर कह रही कि किसी भी वक़्त उनके साथ कुछ भी हो सकता है।

शमीमा जी की घुटी गिड़गिड़ाती आवाज़ सुनकर मोहनकृष्ण ने अंदाजा लगाया कि वह भी इस समय शांता और पिंकी की तरह ही आतंकित होकर कमरे के किसी कोने में दुबकी बैठी होगी। शांता और पिंकी की याद आते ही उसे पत्नी और पुत्री के प्रति अपनी लापरवाही और गैर ज़िम्मेदारी का अहसास भीतर से कचोटने लगा। वह कमरे से निकल कर बाहर रखे जूते पहनने लगा कि उसकी नज़र अनायास साथ वाले कमरे की ओर गई जहां हीरालाल की बहू टी.वी. पर आवाज़ बहुत कम करके फिल्म देख रही थी। लेकिन हीरालाल की बीवी टी.वी. पर फिल्म नहीं बल्कि अधखुली खिड़की के चौखट के निचले हिस्से पर ठुड्डी टिकाए गलियों में उत्तेजित भीड़ का दौड़ना-भागना और चीखना-चिल्लाना देख-सुन रही थी।

मोहनकृष्ण ने सीढ़ियां उतरने के लिए क़दम उठाया ही था कि हीरालाल के कमरे से टेलिफोन की आवाज़ आई। उसके क़दम रुक गए। हां, टेलिफोन उसी के लिए था। हीरालाल के पुकारने पर उसने जूता उतारा और वापस कमरे में जाकर फोन उठाया। इस बार भी फोन मीर साहब का नहीं, शमीमा जी का ही था। मगर वह पहले की तरह भयातुर नहीं, निश्चिंत लगती थी। लगती नहीं, बल्कि वह सचमुच बेफिक्र थी। फोन पर वही बोल रही थीं। मोहनकृष्ण बीच-बीच में मुंह से "हां" हां "हूं" करता था मगर असल में शांता और पिंकी के लिए परेशान था। जैसे-तैसे अपनी प्रिंसिपल की बातों से छुटकारा पाकर उसने फिर से जूता पहना और अपने घर की ओर चल पड़ा।

चलते-चलते मोहनकृष्ण सोचने लगा कि कुछ मिनटों में ही शमीमा जी की ऐसी कायापलट कैसे हुई? हालांकि शमीमा ने कायापलट का कारण खुद बताया था। वह मीर साहब के लिए परेशान थी जो अपनी ज़िद पर अड़ा था कि वह किसी भी सूरत में बहके भटके बेवकूफों के पागलपन में शामिल नहीं होगा। जिनका इस बार भी वही हश्र होने वाला है जो सैंतालिस या पैंसठ या इकत्तहर में हुआ था। लेकिन इस बार दो "मोज़ज़ शख्स" उनसे मिलने आये। एक नैशनल कान्फ्रेंस का एम.एल.ए था और दूसरा इलाके का "कांग्रेसी खड़पंच"। उन्होंने मीर साहब को समझाया ही नहीं बल्कि क़ायल भी किया कि कुछ दिनों में सब कुछ बदलने वाला है और हमें फौरन से पेश्तर बदलते हालात का साथ देना चाहिए। नहीं तो हालात "देर आय दुरूस्त आय" नहीं बल्कि "देर आय क़यामत आय" हो जाएंगे। मीर साहब "कनविन्स" होकर ज़नानखाने से बाहर आए और हजूम में शामिल होकर वह भी "हम क्या चाहते आज़ादी, आज़ादी का मतलब क्या? ला इल्लाह इल्लाह" का नारा लगाने लगे।... शमीमा आश्वस्त थी कि अब उनकी कोठी को न कोई जलाएगा और न ही कोई लूटमार करेगा। शमीमा ने "रिक्वैस्ट" लफ्ज़ का इस्तेमाल करके मोहनकृष्ण को "आर्डर" दिया कि वह इसी हफ्ते किसी दिन एकाध घंटा ऑफिस में बैठकर कागज़ात तैयार करे ताकि पंजाब नेशनल बैंक और सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया के अकाउंटों में स्कूल की जो भी बैलेंस हो, उसे वहां से निकाल कर जम्मू एण्ड कश्मीर बैंक के किसी ब्रांच में डिपाज़िट किया जाये।

शान्ता और पिंकी दूसरी मंजिल में आंगन की ओर खुलने वाली खिड़की से हीरालाल के घर तक ले जाने वाले कूचे पर आंखें गड़ाए मोहनकृष्ण की राह देख रही थीं। उस पर अचानक नज़र पड़ते ही पिंकी आंगन के दरवाजे की सांकल खोलने उठी लेकिन शान्ता ने उसे नीचे आंगन में जाने नहीं दिया। क्या पता, पठान दौर का ज़माना फिर आया हो जब जवान लड़कियों को घरों में बंद करके तपेदिक की बलि चढ़ाया जाता था। मोहनकृष्ण का दरवाजा खोलने शांता खुद आई।

— 0 —

पिछले दो तीन हफ्तों से रमज़ान जू साढ़े आठ बजे ही रात का खाना खाकर फारिग हो जाता था और "खुफतन" की निमाज़ अदा करने के बाद नौ बजे तक बिस्तर में घुस जाता था। अक्सर आधी रात को ही उसकी नींद खुल जाती थी और फिर फारूक़ के बारे में अजीब-अजीब ख्याल उसके दिमाग में घूमने लगते थे जिससे उसकी नींद उचट जाती थी। शायद इसीलिए वह जल्दी सो जाता था ताकि कम से कम चार साढ़े चार घंटे आराम से सो सके।

आज भी वह अपने ही वक़्त पर सोया था। लेकिन रात के दो बजे जब उसकी नींद खुली, वह जून को कमरे में न पाकर हैरान हुआ। जून ने अपने बिस्तर को समेट कर ताकचे पर रखा था। या हो सकता है कि आज उसने अपने लिए बिस्तर बिछाया ही न हो। कड़ाके की सर्दी को रोकने के लिए खिड़कियों के जो पल्ले रोज़ रात को बंद किए जाते थे वे इस समय भी बंद थे। बंद पल्ले सर्दी को तो रोक रहे थे लेकिन बाहर हो रहे अज्ञात अकल्पित शोर रोक नहीं पा रहे थें। रमज़ान जू ने बिस्तर से निकल कर फिरन पहना और बशीर से इस हंगामें का मतलब और कमसद जानने के लिए उसके कमरे का दरवाज़ा खटखटाने गया। दरवाजे पर बाहर से सांकल चढ़ी थी। शायद बशीर भी जून की तरह ही घर से निकल कर हंगामें में शामिल हुआ था। रमज़ान जू ने सिर और चेहरे को मफलर से ढका और खिड़की खोल कर बाहर झांकने लगा। लउडस्पीकरों और नारों की गुंजन से वह समझ गया कि एक मुद्दत से कश्मीर में हो रहे तमाशे जैसा की यह एक और तमाशा होगा। मगर पागलपन का ऐसा नंगा नाच इससे पहले उसने कभी देखा नहीं था। वह समझ गया कि जून भी इसी तमाशे में शामिल हुई होगी। उसने खिड़की बंद की। नीचे गुस्लखाने से हाथ मुंह धोकर आया और आलमारी से कुरान-ए-शरीफ निकाल कर उसके पन्ने पलटने लगा। शुरू में ही 'सूरा अल-बकरा' पर नज़र पड़ते ही वह रुका और हिड़फ़ की हुई अरबी आयते मुंह से जैसे फुसफुसाते हुए पढ़ने और मन ही मन उनके माने दोहराने लगा। थोड़ी देर बाद उसे महसूस हुआ कि कोई घर का बाहरी दरवाजा खोल कर अन्दर आ गया। शायद जून ही थक कर घर लौटी होगी। उसने कुरान-ए-शरीफ को चूमकर वापस आलमारी में रखा और जून का इंतजार करने लगा। लेकिन आने वाला शख्स जून नहीं, उसका अपना भाई और बशीर का होने वाला ससुर मुहम्मद सिद्दीक था। कमरे के अन्दर पैर रखते ही वह रमज़ान पर बरस पड़ा—"तुम्हें इस बंद कमरे में बैठे शर्म नहीं आती? पता नहीं सर्दी से डरते हो या बी.एस.एफ और सी.आर.पी. की गोलियों से? इससे बेहतर था चुल्लू भर पानी में डूब मरते। भाई, अल्लाह और रसूल के राज में जान-माल की हीं नहीं, अवलाद की कुर्बानी भी देनी पड़ती है। तुम हो कि अपनी जहन्नुमी नींद के लिए गरम कमरे और नर्म बिस्तर के आराम को छोड़ नहीं सकते। उठो, आजादी सिर्फ हमें ही नहीं तुम्हें भी मिलेगी।"

भाई के तेवर देखकर रमज़ान जू से इन्कार करते नहीं बना। वह उठकर भाई के साथ घर से बाहर आया।

"मैं ताला चाबी लेकर आता हूं। घर को इस तरह अल्लाह के भरोसे छोड़ा नहीं जा सकता।"

"क्या वे बात की बात कर रहे हो? घर जायदाद की बात छोड़ो अपनी और

अपने बाल बच्चों की जिन्दगी, उनकी खुशियां, उनके मसले, मरग से पहले ही नहीं मरग के बाद भी उनका हश्र अल्लाह के भरोसे नहीं छोड़ोगे तो क्या शैतान, भारत सरकार या बी.एस.एफ. के भरोसे छोड़ोंगे? चलो ताला लगाने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"तुम्हारा फरमाना बजा है। मगर मुझे पता नहीं बशीर कहां है।"

"बशीर भी वहीं है जहां सारे मुसलमान हैं, जहां तेरी बीवी मेरी बीवी है, मेरी बेटी और तेरे बेटे की मंगेतर है।"

"फिर फारूक भी वहीं होगा?"

"ज़रूर होगा। मगर मुझे वह कहीं नज़र नहीं आया।"

रमज़ान ने घर के बाहरी दरवाज़े पर सांकल चढ़ाई और अपने बड़े भाई के पीछे-पीछे चलकर ईमान, इस्लाम और जिहाद की फतह के लिए उमड़ पड़े सैलाब का एक क़तरा बन गया। नारों का जवाब देने के लिए औरों की तरह ही उसके होंठ भी हिलते थे। लेकिन औरों से भिन्न उसकी दायें बायें घूमती बेकरार आंखें भीड़ के हर भाग की टोह ले रही थी। उसे बशीर दिखाई दिया, जून दिखाई दी—यहां तक कि सुन्दरी और उसका नया खसम भी दिखाई दिया। लेकिन फारूक उसे कहीं नज़र नहीं आया।

— 0 —

कुसुम, बसंती रूपा और जानकीनाथ चारों गुपचुप टी.वी. वाले कमरे में गुमसुम बैठे थे। टी.वी. ही नहीं, उन्होंने कमरे की ट्यूब लाइट भी बंद की थी। टी. वी. सेट के ऊपर रखे टेबल लैम्प की धुंधली रोशनी से ही उन्हें एक दूसरे के जिन्दा होने का एहसास होता था। कमरे की खिड़कियों के बाहर की तरफ खिलने वाले शीशे के मुरमुरे दरीचे ही नहीं, अन्दर की ओर खुलने वाले कॉनिफर के मजबूत पल्ले भी बंद किए गए थे। इस हिफ़ाजत के बावजूद बाहर का शोर अस्पष्ट आवाज़ों के रूप में भीतर आ ही रहा था।

कुसुम सोच रही थी कि कई दिन के बाद आज टी.वी. पर मूवी के दिन भी बिज़ली चालू रही और आज ही यह हंगामा हो गया। दूसरे कोने में बसंती क्रोध से तिलमिला रही थी कि काश अशोक आज यहां होता तो उसे पता चलता कि आदमी "क्लास" नहीं, "कास्ट" और "कम्यूनिटी" के आधार पर ही बंटे हैं। आज़ादी कश्मीरियों के लिए नहीं कश्मीरी मुसलमानों के लिए मांगी जा रही है। पाकिस्तान से इसलिए मुहब्बत और दोस्ती है क्योंकि वह इस्लामी मुल्क है। हिन्दुस्तान से इसलिए नफ़रत और दुश्मनी है क्योंकि वह हिन्दुस्तानी मतलब हिन्दुओं का मुल्क है।

रूपा खामोश जानकीनाथ की ओर खुली आंखों से घूर रही थी। यदि बसंती

और कुसुम की शादी हो चुकी होती तो वह तब भी परेशान होती लेकिन बिल्कुल परेशान नहीं। उसे पूरा यक़ीन था कि रात ढल जाने के साथ ही यह तमाशा भी खत्म होगा। कश्मीरी मुसलमान मूर्ख नहीं है। वे जानते हैं कि आज इनके पास जो दौलत है वह हिन्दुस्तान के साथ "इल्हाक" की बदौलत ही है। अगर कश्मीर आज़ाद हो गया—मतलब पाकिस्तान के साथ मिल गया तो वहां के पंजाबी और पठान उन्हें फिर से "हातो" का काम लेंगे—जैसे सैंतालिस से पहले लाहौर, पिंडी और पेशावर में किया करते थे और उनकी बहू बेटियों के साथ—खैर वह खुद दो बेटियों वाले हैं। उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए। रही इन हंगामों तमाशों की बात! यह हिन्दुस्तान को ब्लैकमेल करने की चालाकी है—ताकि वह वहां की ग़रीब जनता का पेट काट कर यहां करोड़ों अरबों रुपये भेजते रहे।

वह इसी सोच में थी कि उसने सहसा महसूस किया कि आंगन का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है। उसने उठकर धीरे-धीरे खिड़की खोली। हां, सचमुच कोई बाहर से आंगन का दरवाजा खटखटा रहा था और दरवाज़े की चिटकनी खंजडी की तरफ बजा रहा था। खिड़की को खुलते देखकर उस आदमी ने डरते-डरते आवाज़ दी—"जानकीनाथ जी, मैं रमेश हूं, रमेश राज़दान। दरवाज़ा जल्दी खोलिए।"

रूपा ने जानकीनाथ की ओर देखा। उसने चुपके से उठकर रमेश के लिए दरवाजा खोला। रमेश अकेला नहीं था। उसके साथ उसका सात आठ साल का बेटा भी था। दोनों को पहचानने में जानकीनाथ को थोड़ा समय लगा। अपने घुंघराले बालों पर इतराने वाले रमेश ने सिर को फटी पुरानी क़राकुली से ढका था। उसके बेटे ने मोटे कनटोप से अपने सिर और कानों को ही नहीं, दो आंखों को छोड़ पूरे चेहरे को ढांप लिया था। उसने स्वेटर के ऊपर एक नहीं, दो "फिरन" पहने रखे थे। बाप ने भी कोट पतलून के ऊपर मोटी बांडीपोरी लोई ओढ़ रखी थी।

ऊपर कमरे में क़दम रखते ही रमेश ने जानकीनाथ के हाथ में अपने घर की चाबी देते हुए कहा कि उसने सुबह होने से पहले ही पत्नी और दोनों बेटों सहित यहां से स्थापन का फैसला किया है। रूपा अपने इस पड़ोसी से आज की कालरात्रि के बारे में बहुत कुछ पूछना चाहती थी। मगर उसके मुख से उसका इरादा सुनकर वह अवाक् रह गई। जानकीनाथ और उसकी बेटियां भी चुपचाप सब कुछ सुनती रहीं। रमेश ने बताया कि यहां आने से पहले ही अपनी पत्नी गिरिजा और बड़े लड़के वीनू को रवाना कर चुका है। गिरजा को हिदायत भी दी है कि नावपुर तिराहें पर पहुंच कर खुद ही फैसला करें कि वह ख्याम सिनेमा और बाबा धर्मदास मन्दिर के रास्ते टूरिस्ट सेन्टर के बस अड्डे पर पहुंचे या डलगेट द्रुगजन के रास्ते जैसे भी जब भी वहां पहुंचे किसी भी बस में बैठकर जम्मू चले

आएं जहां तिलो तालाब में उसके भाई का घर ही उन दोनों के लिए ठिकाना होगा। अगर ईश्वर ने चाहा तो रमेश और छोटू भी जम्मू पहुंच कर किसी ठिकाने की तलाश करेंगे।

'मगर इस प्रलयकाल की कालरात्रि में गिरजा को घर से बाहर कैसे निकलने दिया?" डर से कांपती रूपा ने रमेश से पूछा।

"वह धोती साड़ी नहीं, सलवार क़साब पहनकर निकली है। माथे पर बिंदी टीका कुछ नहीं। वेनू ने भी सलवार खान ड्रेस के ऊपर बिना "लाद" "पोछे" का फिरन पहन रखा।"

"तुम लोगों ने इतना खतरनाक और जबरदस्त फैसला कैसे लिया? क्या हालात का ताप और "मिलिटेन्सी" का 'पारा' चढ़ गया है?" जानकीनाथ ने पूछा।

"पारा अभी सौ से नीचे है या एक सौ पांच डिगरी पार कर गया है, मैं नहीं जानता। लेकिन मैं जानता हूं कि मेरा फैसला सही है।"

"लेकिन मैंने ऐसा कोई फैसला नहीं लिया। न ही मेरे सामने वाले पुष्कर नाथ या मोतीलाल या तुम्हारे आस-पास रहने वाले सर्वानन्द, अमरनाथ, तेजकिशन ने लिया होगा।"

"हो सकता है नहीं लिया होगा और शायद ठीक ही किया होगा। लेकिन मेरी बात दूसरी है।"

"मैं समझा नहीं।"

"अब मैं क्या कहूं। कल रात को ही हमारे दरवाजे पर एक पर्चा चिपकाया गया था जिस में मुझे इनफार्म किया गया था कि मुहल्ले के "हिट लिज़्ट" में मेरा नाम सब से ऊपर है क्योंकि मुझे आर.एस.एस. का मेम्बर माना जाता है।" इतना कह कर रमेश और उसका बेटा उठकर चले गए। जानकीनाथ और उसके परिवार ने उन्हें विदा किया। जानकीनाथ बस उनके पीछे-पीछे गया और उनके चले जाने पर अपने घर के दरवाजे और आंगन के फाटक को सांकल चिटकनी चढ़ा अपने परिवार के साथ चुप-चाप बैठ गया।

कुछ देर बाद रूपा ने खामोशी तोड़ी—"रमेश जी और गिरजा के तब भी दो छोटे-छोटे लड़के हैं। मेरी दो जवान बेटियां हैं। मैं क्या करूंगी।" वह रोने लगी। "रमेश सचमुच आर.एस.एस. वाला होगा इसीलिए उसके दरवाज़े पर पर्ची चस्प की गई होगी।"

"ऐसी ही पर्ची कल तुम्हारे दरवाजे पर भी लगाई जा सकती है।" रूपा ने आसूं पोंछ कर जानकीनाथ को अपनी लाल आंखे से घूरते हुए कहा।

"मैंने यूं ही मज़ाक किया। जानकीनाथ का तना माथा नर्म पड़ गया। वह

मुस्कुराया। लेकिन रूपा का लहजा और भी गरमाया—"क्या सन् इक्तीस की विचार नाग की लूटमार भी मज़ाक थी? सन् सैंतालिस में बारामुल्ला सोपोर पर क़बाइली हमला भी मज़ाक था? और अभी तीन साल पहले अन्नत नाग, वन पूह, लोक भवन का अत्याचार और सर्वनाश भी मज़ाक था?"

"इतना उबाल अच्छा नहीं। दिमाग़ की रग फट जायेगी।"

"तेरी बला से।"

"फिर बक-बक।"

अब बसंती से रहा नहीं गया। उसने मां बाप दोनों को आड़े हाथों लिया—"कम से कम आज यह चिड़चिड़ बंद कीजिए। क्या पता रमेश जी जैसे और भी बहुत से लोग अपने घरबार छोड़कर अनजानी अनदेखी जगह की ओर चल पड़े हों।"

रूपा ने एक बार फिर बसंती और कुसुम को छाती के साथ भींच लिया और फिर से रोना शुरू किया—"मैं अभी किचन में जाकर चाकू से अपना गला काटती मगर तुम दोनों बहनों को कहां रखूं?"

अचानक उसे जाने क्या सूझा। उसने बोलना बंद किया और झट खड़ी होकर दरवाजे की ओर जाने लगी। बसंती ने तुरन्त उसकी बाहे कर पूछा—कहां जा रही हो?"

"ऊपर अटारी में दो बड़े ड्रम रखे हैं।" रूपा रोने लगी "तेरी शादी में खर्च होने वाले तीन चार मन चावल रखने के लिए ले आई थी।"

"इस वक़्त चावल का ख्याल कैसे आया?" बसंती ने क्रोध से कहा। क्रुद्ध बेटी को गले से लगा कर रूपा रोने लगी—

"वहां चावल कहां है? मैं यह देखूंगी कि उन ड्रमों में तुम बहनों को सभी को छिपा सकूंगी या नहीं। अगर छिपा सकी तो फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं होगी। सड़को बाज़ारों में चिल्ला रही भीड़ भले ही मेरा सारा सामान लूटे, मुझे मार दें। मगर तुम दोनों बहनों की इज्ज़त आबरू तो बच जाएगी।"

बसंती डर गई कि कहीं मां के दिमाग़ का संतुलन तो नहीं बिगड़ा है? लेकिन तभी उसे एजुकेशन ऑफिस में नज़ीर की हरकते याद आई। वह फिर भी शालीन थी या शालीन होने का स्वांग रचना था। जबकि ये लोग गलियों बाज़ारों में दिल दहलाने वाले हंगामें करते हैं। मां का भय ग़लत नहीं है। यह वहशी कुछ भी कर सकते हैं। हमारी मां की सोच ग़लत नहीं थी लेकिन फिर भी उससे ग़लती हो ही गई उसे कहीं से तीन साइनाइड की तीन गोलियां हासिल करनी चाहिए थीं। एक अपने लिए और बाकी दो कुसुम और मेरे लिए।

(0)

फोन की बेल बजी और बज़ती ही रही लेकिन हीरालाल ने स्पीकर उठाना ठीक नहीं समझा। क्या पता किस का फोन होगा, किसके घर क्या संदेश पहुंचना होगा? लेकिन फोन की घंटी जब अपने आप शांत हुई तब हीरालाल को सूझा कि फोन कश्मीर से बाहर उसके अपने बेटे का भी हो सकता है। किसी ने फोन नहीं उठाया इससे वह ज़्यादा परेशान हुआ होगा क्या पता कौन-कौन से बुरे ख्याल उसके दिमाग में आये होंगे?

फोन की घंटी एक बार बजी। हीरालाल ने तुरन्त स्पीकर उठाया। लेकिन बोलने वाला कोई बाहरी व्यक्ति नहीं बल्कि यही महाराज गंज से उसके दफ्तर का सहयोगी बद्रीनाथ था। उसने हीरालाल को सूचित किया कि कुछ लोग फोन पर जम्मू के राजभवन में जगमोहन को "कनटेक्ट" करने में सफल हो गए। उन्होंने जगमोहन से साफ-साफ कहा कि आज की रात हमारी आखिरी रात होगी और कल सुबह तक सारे कश्मीरी पंडितों का "कत्ले आम" हुआ होगा। हमारी मां बहनों, बहू-बेटियों को अगवा किया जाएगा और सभी मर्द कुत्तों की मौत मारे जाएंगे। बस जगमोहन ही कुछ कर सकेगा। भगवान के बाद अब हमें केवल उसी का सहारा है। हीरालाल ने फोन रख दिया और बेटे की फोन की प्रतिक्षा करने लगा। तीन-चार मिनट के बाद ही एक और फोन आया जो रावलपुर से उसके परिचित विजय शर्मा बैंक मैनेजर का था जिसने दिल्ली के एक मित्र को साफ-साफ बताया था कि आज की रात कश्मीरी हिन्दुओं के लिए अन्तिम रात्रि हो सकती है।

हीरालाल ने सोचा कि काश मोहनकृष्ण पड़ोसी यहीं उसके घर में ही होता। वह इस नई स्थिति पर अपने ढंग से "कॉमेंटरि" करता। लेकिन नहीं, उसका यहां आना ठीक नहीं होता। उसने जाने कितने फोन बिल एक घंटे में मेरे सिर पर चढ़ाए होते। मोहनकृष्ण के साथ गपशप करना बहुत अच्छा है। लेकिन इसके लिए उसके घर चलना ही अच्छा रहेगा।

हीरालाल ने धीरे से खिड़की खोली। खिड़की खुलते ही लाउडस्पीकरों से आती अरबी की "आयतों" और उर्दू तक़रीरों की आवाज़ तूफानों के तेज़ झंकारों की तरफ उसका दिल दहलाने लगी। उसने दृष्टि उठाकर देखा कि मोहनकृष्ण के घर तक जाने वाली गली खाली है। फिर भी उसे मोहनकृष्ण के घर तक जाने की हिम्मत नहीं हुई। उसे डर हुआ कि लाउडस्पीकरों की गरजती आवाज़ें खुली गली में और भी ज़्यादा गूंजेगी जिससे उसके कानों के पर्दे ही नहीं, दिमाग की रगें भी फट जाएंगी। उसका दिल दहलने लगा। उसने मोहनकृष्ण के घर जाने का इरादा छोड़ दिया और खिड़की फिर बंद करने लगा। तभी लाउडस्पीकरों का शोर एकदम रुक गया और एक दो मिनट के बाद उर्दू और कश्मीरी की ऊंची आवाज़ में हमदर्दी से भरे बोल सुनाई दिएः—

"हम अपने कश्मीरी पंडित भाइयों को इतमिनान और यक़ीन दिलाना चाहते

हैं कि हमारी उनके साथ कोई दुश्मनी नहीं है। लेकिन उनका फर्ज़ बनता है कि वह हमारा साथ दें।

हीरालाल को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने खिड़की के पल्ले पूरी तरह खोल दिए और स्पीकरों से निकलती आवाज़े ध्यान से सुनने लगा। हां, उसने अभी-अभी जो शब्द सुने थे वही दोहराए जा रहे थे।

(0)

मीर साहब और शमीमा जी ने मोहनकृष्ण से ताक़ीद की थी कि वह घर से बाहर निकल कर इधर उधर न फिरा करे। स्कूल की एडमिनिस्ट्रेशन के लिए भी स्कूल जाने की कोई ज़रूरत नहीं। चपरासी सारे कागज़ उनके घर ही पहुंचाया करेगा। ऑपरेशन से गोली निकाले यद्यपि लगभग दो महीने हो गए फिर भी उनकी टांगे अभी कमजोर हैं और फिर हालात भी ठीक नहीं है। लेकिन आज मोहनकृष्ण उसी शुभचिन्तक मीर दम्पति की दी गई हिदायतों को भूलकर अपने घर से निकल कर उनके ही घर की ओर चल पड़ा। जो भी हो, जैसी भी उसकी टांगों और शहर के अमनो-अमान की हालत हों, मोहनकृष्ण के लिए उनसे मिलना बहुत ज़रूरी था अगर उसे ऑटो न मिलता तो वह पैदल ही चला गया होता।

आज कई दिनों के बाद दिन का कर्फ्यू हटा दिया गया था। मगर सड़कों बाज़ारों, उन्हें जोड़ने वाले चौराहों और पुलों, पुलों के नीचे बहने वाले नदी-नालों सबके ऊपर अभी तक उस रात्रि की कालिमा छाई थी। बड़शाह पुल को पार करते-करते मोहनकृष्ण ने देखा कि पुल के नीचे बहने वाली "व्यथ" का पानी इतना कम नहीं हुआ था। जाड़ों में ही इस व्यथ-वितस्ता का पानी पीला मटमैला न होकर गहरा नीला होता था। लेकिन आज यही वितस्ता लज्जा से बहुत नीचे चली गई है और ऊपर से कोहरे के धुंधले मैले "फिरन" से सिर छिपा कर किसी को न दिखाने के लायक रहा अपना चेहरा ढक लिया है।—कई दिनों तक लगातार लगा कर्फ्यू फिर कुछ दिन के लिए सुबह-शाम एक-एक घंटे की छूट। फिर हत्याएं, फिर "क्रैक डॉउन" फिर "मुज़हिरें, जुलूस, हड़ताल, सिविल कर्फ्यू। लाठी चार्ज और फाइरिंग। ईदगाह के नये "मज़ारे शौहदा" तक उत्तेजित जुलूस। फिर वही कर्फ्यू और वह सन्नाटा!

...1994 के जाड़े में भी कुछ ऐसी ही हुआ था। तब भी व्यथ का पानी उतर कर कम हो गया था। लेकिन व्यथ के आर-पार रहने वालों की आंखों का पानी उतर नहीं गया था। हज़रत बल में पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहब के पवित्र बालों (मोये शरीफ) का अनादर हुआ था। लोगों के हजूम सड़कों पर आकर रोने और छाती पीटने लगे थे। जब आक्रोश का समुद्र उमड़ आया था मगर मज़हबी जोश की उस आंधी में भी कश्मीरी मुसलमानों का होश अपनी जगह क़ायम रहा कि

कश्मीर के मुट्ठी भर भट्टों पंडितों में दहशत फैले। जुलूस के हजूम में भी पंडितों, पंडिताइनों के लिए रास्ता छोड़कर उन्हें किसी कठिनाई और परेशानी के बिना सड़कों गलियों में गुजरने दिया जाता था। व्यथ में जाने कितनी बार बाढ़ आई होगी और जाने कितने गांव घर, खेत खलिहान डूब गए होंगे। कश्मीर में जाने कितनी बार उथल-पुथल हुई होगी और जाने किस-किस हिन्दू या सुन्नी का खून बहा होगा। लेकिन पठान शासन के बाद शायद पहली बार इस कम समय में इतने भट्टों की केवल हिन्दू होने के अपराध के लिए हत्या हुई होगी—टीकालाल टपिलू, नीलकंठ गंजू, प्रेमनाथ भट्ट, डा. वांचू और जाने किस-किस की? हत्या केवल हाडमांस की ही नहीं, आपसी सौहार्द और परस्पर विश्वास की भी हुई है।

आतंक और अविश्वास की बाढ़ से बचने के लिए जब खाली चुप्पी काम नहीं आई थी तो चुपके से खिसकना और भागना शुरू हुआ। डा. वांचू की हत्या के तीसरे दिन ही न केवल उसका परिवार बल्कि उसके पड़ोसी भी अपने घरबार छोड़कर जाने कहां चले गए। सब से ज्यादा कमाल तो हीरालाल ने दिखाया। वांचू की हत्या के दो दिन बाद ही हीरालाल के घर पर मोहनकृष्ण के लिए अशोक का फोन आया था। हीरालाल ने गली से गुजरते एक बच्चे को भेजकर मोहनकृष्ण को घर बुलाया था मगर मोहनकृष्ण ने महसूस किया कि उसके घर छोड़कर चले जाने से घर वालों को असुविधा होगी। लेकिन दो-तीन मिनट के बाद उसने अपने अहसास को लात मारी और चादर से अपना सिर और मुख छिपाकर हीरालाल के घर में घुसा। अशोक का फोन दस मिनट के बाद फिर आया। उसने पिता से रोते-रोते अनुनय-विनय किया कि वह ममी और पिंकी के साथ तुरन्त दिल्ली आ जाएं। दो तीन दिन तो उसके होस्टल के कमरे में ही गुजारने होंगे। लेकिन प्रॉवस्ट डा. कुलकर्णी ने उसे आश्वासन दिया है कि वह उसे नॉन टीचिंग स्टाफ के ब्लाक में दो बैडरूम का कोटा अलॉट करेगा। लेकिन मोहनकृष्ण का बेटे को जवाब था कि हालात इतने खराब नहीं है कि हमें अपना घर छोड़कर भागना पड़े। हीरालाल ने भी फोन पर अशोक को सांत्वना दी कि वह अपने घर वालों के लिए परेशान न हो जाए। वह पहले अपनी जान देगा और फिर किसी को मास्टर जी या उसके घर या घरवालों की तरफ नजर उठाने देगा। यह दूसरी बात है कि अगली सुबह मोहनकृष्ण को मालूम हुआ कि हीरालाल परिवार सहित रात को ही जलंधर चला गया—अपने घर का लगभग सारा कीमती सामान लेकर। तीन दिन के बाद जब स्कूल का चपरासी डाक देने आया तो उसने मोहनकृष्ण को चिट्ठियों के साथ यह खबर भी दी कि बरबर शाह में रहने वाले उसके बहनोई घर वालों के साथ जम्मू चले गए हैं और उनके घर पर ही नहीं, आंगन के बाहरी दरवाजें पर भी मोटा ताला लगा है।

यही चपरासी अगले दिन शाम को भी आया। इस बार वह कोई स्कूली चिट्ठी नहीं, मीर साहब के घर से ही मिस नीरजा भान, डॉटर ऑफ पंडित मोहनकृष्ण भान के नाम नौकरी का ऑर्डर लेकर आया था। ऑर्डर देखकर नीरजा, शांता और मोहनकृष्ण को खुशी से ज्यादा परेशानी हुई। नीरजा को सरकार के एजुकेशन डिपार्टमेंट में टीचर का पोस्ट मिल गया था और उसकी पोस्टिंग काकपूर पुलवामा के गवर्मेंट गर्ल्ज़ मिडल स्कूल में की गई थी और एक हफ्ते के अन्दर ज्वाइन करने का निर्देश दिया गया था। नौकरी वह भी सरकारी और फिर उस कश्मीरी पंडित लड़की के लिए जो अभी ट्रेंड ग्रेजुएट भी नहीं मानी जा सकती है—इस से बढ़कर और क्या खुशी हो सकती है? मगर आज के हालात में औरतों की बात ही नहीं, पंडित मर्द भी घर से बाहर कदम रखने का साहस नहीं करते। एक शहरी लड़की के लिए घर से दूर गांव में रहने नौकरी करने जाना अगर नामुमकिन नहीं तो आसान भी नहीं होगा। रात भर विचार करने पर मोहनकृष्ण ने यही उचित समझा कि इस मामले में मीर साहब के साथ ही मश्वरा किया जाए।

मोहनकृष्ण सही सलामत मीर साहब के घर पहंच गया। रास्ते में लोगों का आना-जाना जारी था। बी.एस.एफ., सी.आर.पी. और के.पी. की गाड़ियां भी आ जा रही थी। न कहीं कोई गड़बड़ हुई और न ही शहर के किसी दूसरे हिस्से में गड़बड़ होने की कोई खबर आई। मीर साहब और उससे ज्यादा शमीमा जी मोहनकृष्ण को देखकर खुश हुई। दोनों ने उसे नीरजा की नियुक्ति पर "मुबारकबाद" दी। मोहनकृष्ण ने मीर साहब का शुक्रिया अदा किया। मीर साहब ने उससे उसकी सेहत के बारे में पूछा। इतने में नौकर चाय और नाश्ता लेकर आया और जैसा कि स्वाभाविक ही था, चाय के साथ असली मामले पर भी चर्चा होने लगी। मीर साहब ने मोहनकृष्ण को समझाया कि उसने सोच समझ कर ही नीरजा बेटी की पोस्टिंग काकपुरा पुलवामा में करवाई। श्रीनगर डिस्ट्रिक में "पोस्टिंग" तो नामुमकिन थी। जो टीचर चार-चार, पांच-पांच साल से दूर दराज़ इलाकों में ड्यूटी दे रहे हैं वह श्रीनगर, अनन्तनाग, सोपोर आना चाहते हैं। दूसरे डिस्ट्रिक में पुलवामा ही सबसे नज़दीक है और इस ज़िले में भी काकपूर ही श्रीनगर के सबसे ज़्यादा क़रीब है। बस पांपुर पुल को पार किया और आप काकपुर पहुंच गए। श्रीनगर से वहां पहुंचने तक पौन घंटे से कम वक़्त लगता है। एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर ज्वाइन करने की शर्त जानबूझकर नये टीचरों के फायदे के लिए रखी गई है। आजकल "विन्टर वकैशन" चल रही है। सारे स्कूल बंद हैं और पहली मार्च तक बंद ही रहेंगे। नीरजा को काकपुर जाकर टी.ई.ओ के ऑफिस में अपनी "ज्वाइनिंग रिपोर्ट" देनी है और बस। फिर मार्च तक उसे बिना कोई काम किए घर बैठे तनख़्वाह मिलती रहेगी।

क्रीसेंट पब्लिक स्कूल का "एडमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर" होने के बावजूद मोहनकृष्ण ने मामले के इस पहलू पर गौर नहीं किया था। अब उसकी सारी शंकाएं और परेशानियां दूर हो गई। वह खुश और तुष्ट होकर घर लौटा। पति के मुंह से मीर साहब की सूझबूझ की बातें सुनकर शांता की आशंकाओं का समाधान हो गया। उसने मोहनकृष्ण से कहा कि वह जन्तरी देखकर नीरजा के "जॉयिन" करने के लिए कोई शुभ मुर्हत ढूंढ़ ले। सैद्धान्तिक दृष्टि से मुहूर्त, ग्रह, नक्षत्र आदि अंधविश्वासों के कट्टर विरोधी मोहनकृष्ण ने सोचा कि शान्ता की बात मानने में कोई हर्ज नहीं है। उसने रैक से जन्तरी निकाली और कुछ क्षण तक उसके पन्ने पलट कर शांता से कहा परसों, मतलब आने वाला बुधवार का दिन ही शुभ है।

मंगलवार की शाम को ही काले घने बादलों ने सारे आकाश को ढक लिया था। मगर बर्फ बारी शायद देर रात को शुरू हुई होगी और ज़्यादा देर तक नहीं रही होगी। सुबह उठकर लोगों ने देखा कि आंगन और आंगन की दीवारों, गलियों और सड़कों मकानों की छतों और दुकानों के छज्जों पर एक दो इंच से ज़्यादा बर्फ जमा नहीं हुई है। मोहनकृष्ण बेटी सहित जल्द से जल्द काकपुर पहुचंना चाहता था और पिंकी की "ज़्वाइनिंग रिपोर्ट" खुद पिंकी के हाथ टी.ई.ओ. ऑफिसर के हवाले करवा कर जितनी जल्दी हो सके, उसे लेकर घर लौटना चाहता था। नाश्ते और दोपहर के खाने को एक कर बाप बेटी ने शांति जताई और "हैवी ब्रेक फास्ट" जल्दी खाया। कपड़े दोनों ने पहले ही बदले थे। पिंकी ने सैंडल के स्थान पर "लेडीज़ शू" पहना और मोहनकृष्ण ने पिछले साल दिसम्बर में खरीदा "गर्म बूट" पहना जिसका इंतजार वह इस साल के दिसम्बर के शुरू होने से ही कर रहा था। ज़रूरत के समय काम में लाने के लिए दोनों के हाथों में बंद छाते भी थे।

मोहनकृष्ण को बटभालू जाकर वहां से पुलवामा की बस लेना न सुविधाजनक लगा और न ही सुरक्षित। उसने अपनी बुद्धिमता से काम लिया और पिंकी को लेकर लालचौक से पाम्पोर मैटाडोर में जा बैठा। वहां पहुंच कर पुलवामा शुपयन रोड को नेशनल हाई वे से जोड़ने वाले पुल पर पैदल चलकर सांप की तरह बल खाती व्यथ को पार किया। पुल पार करके वे पुलिस बूथ के निकट खड़े रहकर काफी देर तक श्रीनगर या त्राल से आने वाली बस का इंतजार करने लगे। आधे घंटे में कुल दो बसें आई और वे भी उनके हाथ के इशारे के बावजूद रुकी नहीं, सीधे चली गई। बारह मिनट गुज़रने के बाद आने वाला आटो रिक्शा कैरियर ही पहला वाहन था जो उनके लिए रुका। रिक्शा वाला मस्त बंदा था। उसने उन्हें पन्द्रह मिनट में ही काकपुर पहुंचा कर रिक्शा से उतारा और किराए का एक पैसा भी नहीं लिया।

काकपुर कसबे के शुरू में ही सड़क किनारे एक नानवाई की दुकान थी।

मोहनकृष्ण ने जाकर दुकानदार से पूछा कि टी.ई.ओ का ऑफिस कहां है। नानवाई की समझ में जब बात नहीं आई तो मोहनकृष्ण ने उसे विस्तार से समझाया कि उन्हें स्कूल के मास्टरों और मास्टरनियों के अफसर के दफ्तर में जाना है। बात समझकर नानबाई ने उन्हें तुरंत रास्ता बताया कि वह साथ वाली कच्ची सड़क में सीधे चले जाएं। कुछ दूर चलने पर चिनार का ऊंचा और फैला पेड़ मिलेगा। चिनार के पास ही दाहिनी तरफ की खुली जगह ही तहसील के तालीमी अफसर का ही दफ्तर है जिसके दरवाज़े पर अंग्रेजी और उर्दू में लिखा बोर्ड भी है।

नानबाई की दुकान के सामने छः सात कुत्ते ज़मीन पर जमा हो रही बर्फ को पांव से खुरच-खुरच कर दूसरे पर गुर्रा रहे थे।

"पता नहीं यह कुत्ते बर्फ से अपने पंजे साफ कर रहे हैं या अपने पंजों से सड़क की बर्फ साफ कर रहे हैं?" नीरजा ने मुस्कुराते हुए मोहनकृष्ण से कहा।

"कश्मीरी में कहावत है कि बर्फ कुत्तों का मामा है। इसीलिए बर्फ देखते ही कुत्ते उछलने कूदने लगते हैं।" मोहनकृष्ण भी मुस्कुराया।

"मैं नहीं मानती।" जो नीरजा अभी मुस्कुरा रही थी वह अचानक गम्भीर हो गई। उसकी गम्भीरता में छिपी सादगी मोहनकृष्ण के दिल को कुरेदने लगी। उसे अनायास याद आया कि नीरजा और अशोक के एक नहीं, दो मामें थे और दोनों शांता से बड़े थे। लेकिन बाप के मरने पर दोनों ने मिलकर सारी दौलत और जायदाद हड़प ली थी और बहन की शादी मोहनकृष्ण जैसे प्राईवेट स्कूलों में मास्टरी करने वाले कंगाल से की थी जहां वह रोल्ड गोल्ड के एक दो जेवरों और तीन-चार मामूली साड़ियों में ही स्वीकार की गई थी। अगर उन भाईयों के नाम के साथ "दर"जैसी ऊंची ज़ात का बिल्ला न लगा होता तो शान्ता को बेचकर तीनों भाईयों ने पैसे आपस में बराबर बांटे होते।

मोहनकृष्ण को अपना बीता इतिहास याद आया तो उसने सिर को झटक कर सड़क पर थूका और नानवाई के पांच रुपये की रोटियां खरीदी। एक रोटी के चार-चार टुकड़े करके उसने कुत्तों के आगे डाल दिये। इस इरादे से कि आज से ही पिंकी के कैरियर का शुभारम्भ हो रहा है। उस की सारी बलाएं इन कुत्तों के सिर पर सवार होंगी। रोटी के टुकड़े देखकर ही कुत्ते उन पर टूट पड़े और फिर एक-दूसरे पर पिल पड़े। हर कुत्ता दूसरे कुत्ते का बैरी बना—यानी अपना असली रंग दिखाया। एक काले कमज़ोर कुत्ते को छोड़कर बाकी सब एक हो गए और भौंक कर ललकारने से बेचारे को भागने के लिए मजबूर किया। बेकरा बेचारा नानवाई के दुकान की साथ वाली कच्ची सड़क पर दुम दबा कर भागा। कुछ दूर जाकर वह रुका। दुम को पिछली टांगों के बीच दबाकर रखते हुए भी अपना सिर छुपाया और बाकी कुत्तों की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखते हुए ज़ोर-ज़ोर से

भौंककर भट्टों की तरह ही मिनस्कमूल माइनॉरिटी अर्थात् छोटे अक्षर जैसे अल्पसंख्यक गर्व की तरह "प्रोटेस्ट" करने लगा। मोहनकृष्ण उस कुत्ते की या अपनी दुर्गति पर मुस्कुराने लगा। अलबत्ता नीरजा को बेचारे पर दया आई। उसने नानवाई से एक ओर रोटी खरीदी और पूरी रोटी काले कुत्ते के आगे डाल दी कुत्ता रोटी को दांतों में दबा कर सामने वाली चिनार तक दौड़ते-दौड़ते गया और चिनार के तने की ओट में रोटी काट-काट कर खाने लगा। जब तक मोहनकृष्ण और नीरजा चिनार के पास पहुंचे कुत्ता पूरी रोटी चट कर गया था। बर्फ का गिरना कुछ थम गया था। मोहनकृष्ण को चिनार से थोड़ी दुर पर दुमंजिला मकान के दरवाज़े पर लगा हरे रंग का बोर्ड दिखाई दिया जिस पर सफेद रंग में अंग्रेजी और उर्दू के तहत "तहसील एजुकेशन ऑफिसर, काकपुरा" लिखा था। वह समझ गया कि हरे रंग की सरदारी सिर्फ शहर के दुकानों स्कूलों पर ही नहीं, इस इलाके के सरकारी दफ्तरों पर भी हावी हो गई है। नीरजा का हाथ अपने हाथ में लेकर उसने दफ्तर की ओर क़दम बढ़ाए। काला कुत्ता दफ्तर के दरवाजे तक उनके पीछे चला। बाप बेटी जब सरकारी दफ्तर के भीतर चले गए तो काला कुत्ता दरवाज़े के बाहर एक ओर बैठ गया और दाहिने पंजे से अपनी थूथनी खुजलाने लगा।

टी.ई.ओ. अर्थात् एजुकेशन ऑफिसर मैडम आमिना शफी उस समय तक ऑफिस में नहीं आई थी। हालांकि बारह बज गए थे और बर्फ बारिश का बरसना भी थम गया था। दफ्तर में सिर्फ एक क्लर्क बैठा था। मोहनकृष्ण और नीरजा दोनों ने उसे "आदाब अर्ज़"किया। क्लर्क ने दाहिना हाथ माथे तक ले जाकर उनका आदाब कबूल किया।

क्लर्क से यह सुनकर कि टी.ई.ओ. साहिबा आने वाली ही है, नीरजा ने क्लर्क के मेज के सामने खड़े होकर उससे कागज़ की शीट मांगी और जैसा कि मोहनकृष्ण ने कल उसमें "निव अप्पॉइटमेंट" का ऑर्डर लिस्ट देख और नीरजा के नाम के आगे "टिक" मार्क लगाकर मोहनकृष्ण से पूछा—"आप डिग्री, हायर सैकंड्री और परमानेंट रेज़िडेंट मतलब स्टेट सॅबजेक्ट की "सर्टिफिकेट इन ऑरीजिनल साथ लाए हैं?"

"जी हां। इनके अलावा मार्क्स सर्टिफिकेट भी लाए हैं। ऑरीजिनल और फोटोस्टेट दोनों।" कहकर मोहनकृष्ण साथ लाए बैग को खोलकर उसमें से कुछ कागज़ निकालने लगा। तभी चपरासी लगने वाले एक शख्स ने आकर खबर दी की बेगम साहिबा आ गई और अपने कमरे में तशरीफ ले गई। क्लर्क ने नीरजा से कहा कि साथ वाले कमरे में जाकर मैडम को अपना जॉइनिंग रिपोर्ट पेश करे और मोहनकृष्ण से सर्टिफिकेट मांगा। मोहनकृष्ण बैग से निकाल कर एक-एक कागज़ क्लर्क की मेज़ पर रखने लगा। नीरजा शंकर पार्वती का नाम लेकर

मैडम के कमरे में जाने लगी। चपरासी भी कमरे से निकल के उसके पीछे-पीछे चलने लगा। चपरासी के बाहर जाते ही चेहरे को मफलर से छिपाए एक आदमी कमरे में दाखिल हुआ और उसके दाखिल होते ही कमरे का दरवाजा पीछे से अपने आप बंद हुआ। मफलर सें मुंह छिपाए आदमी ने फिरन में छिपाई क्लाशन कोफ बंदूक निकाली, मोहनकृष्ण की तरफ निशाना साधा और उसे "हैंड्स अप" का हुकुम देकर हवा में गोली चलाई। क्लर्क ने मोहनकृष्ण की रक्षा के लिए उसे मेज़ के नीचे छिपाया मगर उसी समय उसने नीरजा की चींखें सुनी। फिर किसी वाहन के चालू होने की आवाज और फिर कुछ देर तक कुत्ते के भौंखलाने का शोर। मफलर पोश ने बंदूक फिर फिरन के भीतर छिपाई और कमरे की खिड़की से कूदा क्षण भर बाद वाहन के चलने और कुत्ते के भौंकने की आवाज़ एक साथ आई। वाहन की आवाज़ धीमी पड़कर लुप्त हो गई, मगर कुत्ते का रोना-चिल्लाना बराबर जारी रहा।

क्लर्क ने मोहन को मेज़ के नीचे से निकाला और ख़ालिक-ख़ालिक की हांक लगा कर कमरे का बंद दरवाजा खटखटाने लगा। लेकिन न दरवाजा खुला और न ही ख़ालिक चपरासी उसे खोलने आया। मोहनकृष्ण ने पागल की तरह कमरे में पड़ी एक बेंत उठाकर दरवाज़े पर ज़ोर से वार किया जिससे उसके दोनों पट एकदम खुल गए और मोहनकृष्ण के मुंह से चीख निकली—"मेरी पिंकी। मेरी नीरजा।" और फिर उसकी गर्दन लुढ़क कर एक ओर झुक गई। कमरे और कमरे के बाहर सन्नाटा छाया था, सिवाय कुत्ते के चीखने की आवाज़ जो सन्नाटे को और भी भयानक बना रही थी। क्लर्क सिर को दोनों हाथों से पकड़ कर कुछ देर तक सोचता रहा और फिर मोहनकृष्ण को उसके हाल पर छोड़कर खुद पुलिस चौकी को वारदात की खबर देने चला गया।

मोहनकृष्ण होश आने पर चारों ओर गूंगे पागल की तरह देखने लगा। कुछ क्षण के लिए उसकी समझ में ही नहीं आया कि वह कहां और क्यों आया है? लेकिन पूरी तरह होश में आते ही वह ज़ोर से "पिंकी" "पिंकी" पुकारते दौड़ता-दौड़ता सीढ़ियां उतरा। दफ्तर के बाहर आकर उसने चारों ओर नज़र दौड़ाई। उसे कहीं कोई आदमी दिखाई नहीं दिया। वह दृष्टि उठाकर आस-पास के घरों की टोह लेने लगा। जाड़े के कारण आस-पास के घरों की खिड़कियां बंद थीं—बगैर उन खिड़कियों के जिनके पट नहीं थे। उन में भी मोहनकृष्ण को कोई मर्द या औरत बैठी या झांकती दिखाई नहीं दी। उसने दृष्टि और ऊपर उठाई मानो निराश आंखों से सूने आकाश में अपनी खोई बेटी को खोज रहा हो। सहसा उसे लगा कि गमबूट में छिपा उसका बायां पांव कोई दबा रहा है और कोई उसकी पतलून के दाहिने पांयचे को खींच रहा है। उसने दाहिनी टांग पीछे खींच ली और नीचे की ओर

देखा। वह कमज़ोर काला कुत्ता उसकी टांगों से लिपट कर उसकी ओर अजीब दृष्टि से देख रहा था। मोहनकृष्ण अपने को छुड़ाकर चिनार की ओर भागा और वहां पहुंच कर बावैला करते हुए ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा—"अरे ओ गांव वालों, मुझ बदनसीब की फरियाद सुनो! मैं परदेसी हूं। शहर से आया हूं। अपनी बेटी को लेकर आया था। लेकिन वह मुझे नहीं मिल रही हैं। मैं तुम्हें अल्लाह और तुम्हारे रसूल का वास्ता देता हूं, मुझे मेरी बेटी दिला दो।" कुत्ता भी उसके पीछे-पीछे चिनार तक आया था। मोहनकृष्ण चिल्लाते-चिल्लाते थक गया और चिनार के साथ टेक लगाकर सिसकने लगा। कुत्ते ने जैसे उसका चार्ज लिया और थुथनी ऊंची करके ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा। लेकिन उसका भौंकना भी मोहनकृष्ण के चिल्लाने की तरह व्यर्थ हुआ—न कोई बंदा घर से बाहर आया और न किसी घर की कोई खिड़की खुली। मोहनकृष्ण उठा और अपना टूटा शरीर और बैठा दिल जैसे तैसे घसीट कर बड़ी सड़क तक ले गया। हां, बेचारा कुत्ता ज़रूर उसके पीछे-पीछे चला आया था। नानवाई की दुकान के पास इस समय भी दो कुत्ते खड़े थे। उन पर नज़र पड़ते ही बेचारा कमजोर काला कुत्ता दुम दबाकर भागा और जाने किस संकरी गली या किस अंधेरे कोने में छिप गया।

मोहनकृष्ण ने नानवाई की दुकान पर बैठी औरत के पास जाकर उससे रोते-रोते पुलिस चौबी का पता पूछा। एक अधेड़ पढ़ा-लिखा दिखने वाले पंडित को इस तरह रोते देखकर दुकान पर बैठी औरत डर गई और "सुला-सुला" आवाज़ देकर दुकान के पिछवाड़े में किसी मर्द को पुकारने लगी। जब तक वह मर्द बाहर आता, मोहनकृष्ण की नज़र पुलवामा की तरफ से आती हुई सी.आर.पी. की डाक गाड़ी पर पड़ी। वह पागलों की तरह दौड़कर सड़क तक गया और लाश की तरह सड़क के बीच में लेटकर आने वाली गाड़ी का रास्ता रोकने लगा।

सी.आर.पी. गाड़ी मोहनकृष्ण को पाम्पोर में स्थित उनके कैम्प में ले गई और वहां उसे कैम्प के ऑफिसर के आगे पेश किया। ऑफिसर ने मोहनकृष्ण की सारी कहानी सुनकर "वाकी-टाकी" (वायर लेस) पर काकपुर के स्टेट पुलिस के एस. एच.ओ. से बात की। एस.एच.ओ ने उसे बताया कि काकपुर के टी.ई.ओ. के दफ्तर के क्लर्क गुलाम नबी डार डेढ़ दो घंटे पहले उनके पास वारदात की रिपोर्ट लेकर आया और उन्होंने उसी वक्त एफ.एच.ओ. दर्ज किया। ऑफिस के चपरासी अब्दुल खालिक परे अपने ही घर में छिपा बैठा था। इस वक्त वह थाने में ही, हिरासत में है। उसका बयान है कि वह दफ्तर के दोनों कमरों के बाहर बरामदे में स्टूल पर बैठा अपनी ड्यूटी दे रहा था कि फिरन पहने दो नकाबपोश उसके पास आये और बंदूक नली उसके सीने पर रखी कि वह कुछ देर पहले एक बूढ़े के साथ कमरे में अन्दर चली गई पंडित लड़की को किसी तरह बाहर ले आये। वह जानता

था कि लड़की बेगम साहिबा का इंतजार कर रही थी। अपनी जान बचाने के लिए उसने लड़की से झूठ कहा कि बेगम साहिबा आ गई। लड़की के बाहर आते ही उन में से एक डार साहब के कमरे में घुसा और फिर वापस निकल कर कमरे को बाहर से बंद किया और उस चपरासी को जान से मार डालने की धमकी देकर लड़की को उठाकर ले गया, उसके बाद क्या हुआ वह ठीक-ठीक बता नहीं पा रहा है। क्लर्क डार से टी.ई.ओ. आमिना शफी के घर का फोन नम्बर लेकर उससे भी राबता कायम किया गया। उसने बताया कि वह पहले ही वर्बल रिक्वेस्ट पर डिस्ट्रिक्ट एजुकेशन ऑफिसर पुलवामा से दो दिन के लिए "लीव" ले चुकी। .. .वैसे डिस्ट्रिक्ट की सभी पुलिस चौकियों और थानों को सिग्नल भेजे गए हैं।...

मोहनकृष्ण ने सी.आर.पी. ऑफिस को रोते-रोते बताया कि वह सी.आर.पी. स्टेट पुलिस, क्राइम ब्रांच, बी.एस.एफ., आरमी, सी.आई.डी., किसी भी ऑथौरिटी के सामने बयान दे सकता है, मगर अपनी बेटी को अपने साथ वापस घर लाए बिना वह अपनी बीवी, अपने बच्चों, दोस्तों और दुश्मनों, किसी का भी सामना नहीं कर सकता है।

मोहनकृष्ण की बेचारगी और सादगी देख-सुनकर अफसर ने गंभीरता से कहा कि उसके सामने कागज़ पर अपने हाथ से अपनी पत्नी के नाम अपना "मैसेज" लिखे और फिर उसे फोल्ड कर बाहर से अपना पूरा पता लिखे। वह किसी जवान को सिविल ड्रेस में भेजकर उसकी पत्नी के पास आज ही यह संदेश पहुंचा देंगे।

मोहनकृष्ण ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया। अफसर कागज़ हाथ में लेकर कमरे के बाहर चला गया। उसके असिस्टेंट ने अपने और मोहनकृष्ण के लिए चाय मंगवाई। मोहनकृष्ण की भूख मिट गई थी लेकिन उसके ठिठुरते शरीर को चाय की सख़्त ज़रूरत थी। उसने चाय की प्याली उठाकर होंठों से लगाई और असिस्टेंट ऑफिसर की ओर गौर से देखा। जाने क्यों उसे उसमें अशोक की छवि दिखाई दी। वह अशोक की उम्र के बराबर तो लगता था मगर उस की शक्ल सूरत अशोक से नहीं मिलती थी फिर भी मोहनकृष्ण होंठों तक पहुंची प्याली से चाय की चुस्की लेना भूल गया और सामने बैठे असिस्टेंट ऑफिसर को एक टक देखता रहा। शायद उसके अचेतन मन में इस विकट स्थिति में उसका बे-सहारा अकेलापन तड़प कर अशोक को पुकार रहा था।

"आपकी चाय ठंडी हो रही है।" असिस्टेंट ऑफिसर ने मुस्कुराते हुए कहा।

मोहनकृष्ण की जैसे चोरी पकड़ी गई हो। वह जल्दी-जल्दी चाय के घूंट निगलने लगा।

"अच्छा पंडित जी, मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूं।" असिस्टेंट ऑफिसर ने उसकी ओर गौर से देखा—"आपने घर से निकलने से पहले या

घर से निकल कर रास्ते में किसी को बताया तो नहीं कि आप काकपुर में कहां जा रहे हैं?''

''जी नहीं। जब किसी ने पूछा ही नहीं तो मैं किसी को कैसे बताता।'' मोहनकृष्ण ने तो कहा लेकिन उसे याद आया कि पाम्पोर पुल के पार एक थ्री व्हीलर कैरियर के चालक ने बाप-बेटी को काकपुरा तक ले जाने की पेशकश की थी और उसने खुद ही उस ड्राइवर को बताया था कि उन्हें कहां किस जगह जाना है। मोहनकृष्ण ने यह छोटी-सी गैर ज़रूरी बात छिपाना भी उचित नहीं समझा और साथ ही यह भी बताया कि कैरियर पर दोनों तरफ ''बैली मस्टर्ड ऑयल रजिस्टर्ड'' लिखा था।

असिस्टेंट ऑफिसर उनके कमरे के बाहर चला गया। उसके जाते ही मोहनकृष्ण अपने को फिर अकेला पाकर सिसकने और अपने भाग्य को कोसने लगा कि मफलर से मुंह ढांपे उस आदमी की हवा में चलाई गोली उसे ही क्यों नहीं लगी?

असिस्टेंट ऑफिसर जल्द ही वापस आया लेकिन बैठा नहीं। दरवाज़े के पास ही खड़ें होकर उसने मोहनकृष्ण से कहा—''अरे! आपने कुछ खाया नहीं?''

''मुझे भूख नहीं है।''

''नहीं, कम से कम एक बिस्कुट तो खाईए। पता नहीं आपने लंच किया भी है या नहीं।''

''हम दोनों घर से खाना खाकर ही निकले थे।''

''तो चलिए।''

''कहां?''

बैरेक से बाहर आकर मोहनकृष्ण ने देखा कि बर्फ ज़ोरों से गिर रही है। बैरेक के साथ ही एक जीप खड़ी थी जिसके पिछले हिस्से में बंदूक लिए तीन सिपाही बैठे थे। असिस्टेंट ऑफिसर ने खुद ''वील'' पर बैठकर मोहनकृष्ण को अपनी बगल में बैठाया। कैम्प से निकल कर जीप थोड़ी दूर तक नैशनल हाईवे पर चलती रही। कुछ क्षण के बाद ''लेफ्ट टर्न'' करके व्यथ के पुल को पार किया और पुलिस बूथ के सामने रुकी। बूथ में ड्यूटी देता सिपाही बर्फबारी की परवाह किए बगेर दौड़ता हुआ आया और जीप के पास आकर ''अटेन्शन'' में असिस्टेंट साहब को ''सैलूट'' किया।

''इन्हें पहचानते हो?'' असिस्टेंट ऑफिसर ने मोहनकृष्ण की ओर इशारा करते हुए सिपाही से पूछा।

''नो सर।'' सिपाही ने इन्कार से सिर हिलाते हुए कहा।

''सुबह से ड्यूटी दे रही हो?''

''यस सर। ''ड्यूटी'' सुबह से ड्यूटी दे रहे हो तो यह नहीं देखा कि सुबह

से ही काफी देर तक इस बूथ के पास ही यह साहब और इनके साथ एक लड़की बस का इंतजार करते रहे?''

सिपाही ने एक बार फिर मोहनकृष्ण को ग़ौर से देखा और फिर पूरे विश्वास से ऑफिसर से कहा—''यस सर। देखा। ज़रूर देखा। इन्होंने एक दो बसों को हाथ दिखाया। मगर बसें नहीं रुकीं। एक थ्री-व्हीलर कैरियर वाले से भी बात की लेकिन उसके साथ बात नहीं बनी। फिर एक मैटाडोर आया और उसमें बाप बेटी दोनों को सीट मिल गई।''

''तुम उस कैरियर वाले को पहचान सकते हो?''

''नो सर। मगर कैरियर को पहचान सकता हूं।''

''कैसे?''

''यह कैरियर अक्सर यहां से आता-जाता रहता है। यह भी सुना है सर कि यहां बायीं तरफ सामने वाले ब्रांच रोड पर कोई पांच-सात किलोमीटर पर कोई ऑयल मिल है। वह कैरियर उसी मिल का होगा। आज मैंने उसे दो बार देखा।''

''इस बर्फ बारी, ऐसी धुंधली रोशनी और इतने ट्रैफिक में उस कैरियर का दूसरी बार गुज़रना तुम्हें कैसे याद रहा?''

''सर, जब वह पश्चिम की तरफ से आया तो पुल पार करने के लिए सीधा आगे चला गया। लेकिन कुछ दूर पहुंचते ही उसने इरादा बदला, मुड़कर वापस आया और सामने वाली रॉइट साइड की सड़क पर भागने लगा।''

''और वही सड़क ऑयल मिल तक जाती है, क्यों?''

''यस सर। अगर मौसम साफ होता तो मिल की चिमनी यहीं से दिखाई देती।''

''ठीक है।'' असिस्टेंट ऑफिसर ने कहा और अपनी जीप आगे ले जाकर बायें तरफ की ब्रांच सड़क की ओर मोड़ दी। सड़क सुनसान थी। कहीं कोई वाहन या पैदल चालक, यहां तक कि कोई पशु भी नज़र नहीं आ रहा था। लेकिन कुछ किलोमीटर जाने के बाद जब बर्फ ज़रा थम गई, उन्हें सड़क पर चलता एक आदमी नज़र नहीं आया। ऑफिसर ने उसके पास पहुंचते ही जीप रोक कर हॉरन बजाया। उस आदमी ने पीछे मुड़कर सी.आर.पी. की जीप देखी तो वह भागने लगा। जीप में बैठे तीनों शख्स उसके पीछे दौड़े और उसे पकड़ कर लाए।

''जनाब, मैं गरीब आदमी हूं। शरीफ आदमी हूं। पाकिस्तान हिमायती नहीं, हिन्दुस्तान का वफादार हूं।'' एक ही सांस में यह सब कहकर वह देहाती फिसलन की परवाह किए बिना बर्फ को रौंदता हुआ भागने लगा। जीप का एक सिपाही जब उसका पीछा करने लगा तो ऑफिसर ने उसे रोका—''धर्मपाल। क्यों पेरशान कर रहे हो बेचारे को? कम बैक-वापस आ।''

सिपाही लौट आया। असिस्टेंट ऑफिसर ने जीप को गियर में लाते हुए बगल की सीट पर बैठे मोहनकृष्ण पर नज़र डाली जो सिर झुकाए कुछ सोच रहा था।

"सो तो नहीं रहे हो?"

मोहनकृष्ण ने सिर उठाकर ऑफिसर की ओर देखा। उसकी आंखों से बह रही आंसू की धारा देखकर पुलिस अफसर को अपने मुंह से निकली बे-रहमी और बदतमीजी पर अफसोस हुआ। "ऑय ऐम सॉरी" कहकर उसने एक्सलेटर दबाया और जीप ताज़ी नर्म बर्फ को चीरती, पीसती और धुनती बुरे मौसम में अच्छी स्पीड से आगे बढ़ने लगी। ऑयल मिल के पास पहुंचकर ऑफिसर और उसके सिपाहियों ने देखा कि मिल के साथ बैंड सा यानी पटी आरा भी है और दोनों के ईर्द-गिर्द साझा जंगल है। आस-पास कोई मकान या दुकान नहीं है अफसर ने मोहनकृष्ण को अपनी जगह बैठे रहने के लिए कहा और खुद सिपाहियों के साथ जंगल के फाटक को लांघ कर भीतर चला गया। भीतर न तो कोई गाड़ी ट्रक ही थी और न ही वह कैरियर जिसकी उन्हें तलाश थी। ऑयल मिल के निकट पहुंच कर उन्होंने देखा कि मिल के फाटक के ऊपर अर्द्धचन्द्र आकार में कश्मीर वैली, ऑयल मिल, नारवाव, डिस्ट्रिक पुलवामा लिखा है और मिल के पिछवाड़े नदी के किनारे बैंड सा भी है और दोनों के गिर्द साझा जंगल है। फाटक पर ताला लगा था। ऑफिसर और उसके सिपाही जंगलों को फांद कर मिल के अहाते में दाखिल हुए। भीतर न कोई ट्रक या कार ही थी और न ही वह कैरियर जिसकी उन्हें तलाश थी। मिल के सामने वाले दरवाज़े पर ताला लगा था और पिछवाड़े के दरवाज़े अन्दर से बंद थे। अफसर ने सिपाहियों को अहाते के हर हिस्से हर कोने में हर तरफ से जायजा लेने का आदेश दिया और खुद अपनी गलती पर पछताने लगा। एक मामूली संकेत, संकेत नहीं संदेह, संदेह नहीं अनुमान, अनुमान भी नहीं अटकल के अधार पर वह इस बर्फबारों में अपहरण के इस पेचीदा केस को चुटकी बजा कर हल करने का दुस्साहस किया। पुलिस की नौकरी में ऐसी बेवकूफियां तो होती हैं। लेकिन उसने अपने साथ खोई हुई लड़की के दुःखी बाप को भी परेशान किया और फिर स्टेट पुलिस ने एफ.आई.आर दर्ज किया और खोज की कार्रवाई शुरू हो गई—उस लड़की, उसके बाप और इस असिस्टेंट ऑफिसर की बदक़िस्मती से ?

मोहनकृष्ण से अधिक समय तक जीप में बैठा नहीं गया। वह भी जंगलों के उखड़े हुए फटों के बीच से अपना रास्ता बना कर मिल के अहाते में दाखिल हुआ और सीधा असिस्टेंट ऑफिसर के पास जाकर खड़ा हो गया—चुपचाप। ऑफिसर ने भी उसे देखा लेकिन वह भी चुप रहा। दोनों ओर की इस खामोशी को जल्द ही धर्मपाल नाम के सिपाही ने तोड़ा जो तेज़-तेज़ कदमों से चलकर असिस्टेंट ऑफिसर के पास आया।

"सर, बैंड सा के सामने नदी किनारे लट्ठ खींचने वाली "पुली" मशीन के साथ ही बर्फ से ढके दो बड़े लट्ठों के बीच एक छोटा लट्ठा भी है जो ग़ौर से देखने पर लट्ठा नहीं बर्फ से ढकी लाश मालूम पड़ती है।" धर्मपाल की रिपोर्ट पर ऑफिसर ने कुछ क्षण के लिए सोचा और उसके साथ उसकी बताई जगह गया। वहां दो बड़े लट्ठों के बीच पड़े छोटे लट्ठे के नीचे की बर्फ में फैली लाली देखकर उसे यकीन हो गया कि धर्मपाल का शक-शक नहीं, उसकी पैनी दृष्टि है। मृतक की बेदर्दी से हत्या की गई थी। ऑफिसर के इशारे पर धर्मपाल ने और दो तीन जगह बर्फ हटाई। बर्फ के नीचे एक नंग धड़ंग जवान औरत की लाश थी। असिस्टेंट ऑफिसर की आयु अधिक नहीं थी। फिर भी अपनी छोटी आयु और कार्य अवधि में उसने जाने कितने मुर्दा शरीर देखें होंगे। लेकिन आज वह पहली बार ऐसा दृश्य देख रहा था कि एक जवान लड़की का जिस्म टांगों के बीच से गर्दन तक चीरा गया था—शायद "बैंड-सा" पर।

मोहनकृष्ण ऑफिसर के पीछे-पीछे लाश के पास पहुंच गया था उसे देखकर अफसर के इशारे से लाश के चेहरे से सारी बर्फ हटाई गई और मोहनकृष्ण को निकट बुलाया गया। निकट पहुंच कर और लाश का चेहरा देखकर उसने उस मुख पर अपना मुख रखा और ढाड़ मार कर रोने लगा। अफसर और तीनों सिपाही निश्चेष्ट मुद्रा में खामोश रहकर उसका विलाप देखने लगे। एक सिपाही बैंड-सा के छप्पर के नीचे जाकर कुछ खोजने लगा और थोड़ी देर बाद एक फटा पूरा कंबल लेकर आया। ज्योंही वह यह कंबल लाश के ऊपर डालने लगा मोहनकृष्ण ने भयानक रूप धारण कर उससे यह कंबल छीन लिया और गर्जने लगा—"पापियों, पतितों, मेरी जिस पाक और पवित्र पुत्री की लाश और लावण्य को प्रकृति ने बर्फ के स्वच्छ, शुद्ध और श्वेत कफन में ढका उस पर यह फटा, पुराना, मैला और नापाक कंबल डालने की हिम्मत तुम्हें कैसे हो रही हैं? अरे ओ, पाक स्थान समझने वाले पाकिस्तान का गुण-गान करने वाले यहां के नापाक लोगों, आज चारों तरफ जाड़े और उसकी चुभती ठंड से आदमी, जानवर, नदी-नाले सभी फीके और सूखे हो रहे हैं। अगर बहार या गर्मी का मौसम होता तो कश्मीर के आदिवासी हम कश्मीरी पंडितों को पालने-पोसने वाली हमारी व्यथ माता अपनी सारी व्यथा भूलकर अपनी बेटी पिंकी को अपनी गोद में रखकर अपने साथ प्रवाह में ले गई होती।" यह सब बोलकर मोहनकृष्ण ने सिपाही को धक्का देकर लाश को गोद में उठाया और उसका माथा, उसके चेहरे को, उसके हाथ चूमने लगा।

असिस्टेंट ऑफिसर ने मोहनकृष्ण के कंधे पर हाथ रखा और फिर अपनी वाकी-टाकी से पाम्पोर में अपने हेड ऑफिस को मामले की रिपोर्ट देने लगा।

कश्मीर से दिल्ली आया मोहनकृष्ण का सुपुत्र अशोक शीतकाल की हल्की

गर्मी में दिल्ली को स्वर्ग और कश्मीर की कड़कड़ाती ठंड में थरथर्राने वाले कश्मीरियों को स्वर्गवासी मानता था। अब वह पेरशान था कि उस स्वर्ग को भुगतने वाले उसके घरवाले दिल्ली के इस नर्क में क्यों नहीं आते हैं।

आज चौथी बार अशोक रात के दस बजे कैम्प से निकला और मित्र महापात्र के स्कूटर के पीछे बैठकर मुनीरका में रामप्रसाद सिंह के एस. टी. डी. बूथ पर श्रीनगर फोन करने आया। रामप्रसाद दोनों को देखकर मुस्कुराया। उसे श्रीनगर का वह नम्बर याद था जिसपर फोन करने अशोक पहले भी आया था और कई बार कोशिश करने पर भी कनेक्शन नहीं मिला था। आज उसने अशोक से नम्बर नहीं पूछा बल्कि फोन खाली होते ही पहले कोड़ नम्बर और फिर हीरालाल के घर का नम्बर डॉयल किया। कुछ क्षण बाद ही उसकी आंखें चमक उठीं। उसने हतोत्साह से अशोक को फोन दिया। फोन की बार-बार घंटी सुनकर अशोक का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। तभी दूसरी ओर से किसी ने सुनने वाले अशोक को 'हैलो' कहा।

"हैलो, श्री हीरालाल जी से बात करनी है।" अशोक ने घबराहट से पूछा। जिस आदमी ने फोन उठाया था उसने अशोक की बात का जवाब नहीं दिया बल्कि कश्मीरी में किसी दूसरे शख्स से कहा कि किसी हीरा का फोन है। फिर दोनों की कश्मीरी में आपसी बातें हुई जिन्हें अशोक ठीक तरह सुन नहीं पाया। क्षण भर की चुपी के बाद उस पार वालों ने फोन का चोंगा वापस रखा और इसपार का कनेक्शन कट गया।

अशोक ने रामप्रसाद सिंह को एक बार फिर फोन चालू करने को कहा। उसने वैसा ही किया और नम्बर मिल गया। अशोक ने फिर हीरालाल के बारे में पूछा। मगर दूसरी ओर से जाने क्या जवाब मिला कि अशोक ने फोन रख दिया।

"क्या कहा?" महापात्र ने उत्सुकता से पूछा।

"कहा कि यहां कोई हीरालाल, पन्नालाल, मोतीलाल या जवाहरलाल नहीं है और फोन रख दिया।" रामप्रसाद ने कागज़ के पुर्जे पर "पैंसठ रुपये' लिखकर पुर्जा अशोक के सामने रखा। अशोक चुपचाप बटवा निकालने लगा। लेकिन महापात्र से रहा नहीं गया। वह रामप्रसाद से बोल उठा—"पैंसठ रुपये तो बहुत ज्यादा होते हैं।"

"ज़रूर होते हैं" रामप्रसाद ने मुस्कुराकर कहा—"मगर मीटर पर न मेरा बस चलेगा और न आपका"

"आपके मीटर में गड़बड तो नहीं?

इस तीखी बात से रामप्रसाद के चेहरे पर उभर आई उत्तेजना महापात्र से छिपी नहीं रही और इसे कम करने के लिए उसने अपने लहजे को दीन भाव की चाश्नी में डाला—सिंह जी, मेरा मतलब है कि हर जगह गड़बड़ है और सरकार

बदलने के साथ-साथ यह गड़बड़ी बढ़ती ही जाती है। मेरे इस बिचारे कश्मीरी मित्र को ही लीजिए। इतने बर्ष बीत जाने के बाद भी हम कश्मीर की समस्या को सुलझा नहीं सके। पहले कबाइली पठान आए थे, फिर घुसपैठी पाकिस्तानी फौजी आ पड़े और अब बाहर भीतर टेररिस्टों ने कत्ल खून का ऐसा तूफान बरपा किया कि बेचारे कश्मीरी अपने घरबार छोड़कर भागने के लिए मजबूर हो गए।"

"मुसलमान तो वहां मौज मना रहे हैं। भागते तो बस कश्मीरी हिन्दू हैं जो हिन्दूत्व पर कलंक हैं।" रामप्रसाद ने मुस्कुराकर कहा।

"कलंक!" आश्चर्य और आघात से महापात्र का मुंह खुला रह गया।

"जी हां। भागने के बदले उन्हें वहीं टिके और डटे रहना चाहिए था। बहादुरी से लड़ना चाहिए था।"

बात को इस तरह बढ़ते देखकर अशोक की बेकरारी भी बढ़ने लगी। उसने बटवा खोलकर पैंसठ रुपये रामप्रसाद सिंह के सामने रखे। रुपये जेब में डालते उसने समाजदारी की आवाज़ में कहा—"असल में सारी तबाही का जिम्मेदार पंडित जवाहलाल नेहरू है जो खुद भी कश्मीरी था। उसी ने जम्मू कश्मीर राज्य को भारत देश के साथ पूरी तरह मिलने नहीं दिया..."

अशोक इस से आगे और कुछ भी सुन नहीं सका। उसने रामप्रसाद सिंह को दुत्कारा—"सिंह जी, आप ने ठीक कहा कि जवाहरलाल कश्मीरी पंडित था। इसलिए तो कश्मीर आज़ादी के बाद भी भारत के साथ ही रहा—पाकिस्तान का हिस्सा नहीं बना, मुस्लिक मैजरिटी के बावजूद।

"किस से बात करते हो? ये बनिये बस बातें करेंगे—देश की क्या दशा हो रही है उसकी ओर ध्यान नहीं देंगे।—" महापात्र ने अशोक की बांह पकड़कर उसे अपने स्कूटर के पीछे बिठाया। कोई तीन-चार मिनट के बाद जब स्कूटर कैम्पस गेट के अन्दर जाने लगा तो गेट कीपर ने उसे रोका। महापात्र को उसकी बदतमीज़ी पर गुस्सा आने लगी। मगर असल में वह अशोक के हाथ एक टेलिग्राम देना चाहता था जो कुछ देर पहले ही डाकिया उसके लिए ही छोड़ गया था। टेलिग्राम उसके पिता का था जो डाकिया कुछ देर पहले उसके लिए छोड़ गया था। लेकिन हैरानी तो इस बात की थी कि तार भेजने वाले की तार कश्मीर से नहीं, जम्मू से आई थी और उसकी अंग्रेजी इबारत अनपेक्षित थी जिसका अर्थ कुछ इस प्रकार था—नीरजा की आपात में क्षति हुई, जम्मू का पता एक-दो दिन में मिलेगा।

अशोक ने टेलिग्राम देखकर महापात्र के हाथ में दिया। तार पर उड़ती दृष्टि डालते ही उसने घबराकर अशोक से पूछा—"तुम्हारे किस रिश्तेदार की तार है?"

"मेरे पिताजी की।"

"यह नीरजा कौन थी?"

"मेरी छोटी बहन।"

महापात्र ने अशोक की ओर देखा जिस की आंखों में आंसू के कतरे चमक रहे थे।

"रोते क्यों हो? सब ठीक हो जायेगा। तू आज शाम को ही जम्मू मेल से चला जाएगा। मैं ओल्ड देहली स्टेशन तक तेरे साथ चलूंगा।"

"आज शाम को कैसे जा सकूंगा? बैंक तो बंद हुआ होगा।"

"मेरे पास तीन-चार हजार रुपये हैं जिस से तुम्हारे जाने की परेशानी नहीं होगी।" महापात्र ने अशोक को गले से लगाया और अपनी जेब से रूमाल निकाल कर उसके आसूं पोछने लगा।

(+)

गाड़ी की अक्सर देरी और अशोक की अक्सर निराशा के बावजूद जम्मू मेल ठीक समय पर जम्मू पहुंची। अशोक को रेलवे स्टेशन से बाहर सामने ही तीन मैटाडोर नज़र आए जिनके लौंडे जानीपुर, सुभाषनगर, पंचतिर्थी, तिलू तालाब आदि की हांक लगा रहे थे। अशोक की समझ में नहीं आया कि वह किस मैटाडोर में बैठे। उसे कहां मालूम था कि जहां उसे जाना है वहां के लिए कौन-सा मैटाडोर उसके लिए ठीक रहेगा। उसके सामने एक नौजवान खड़ा था जिसने उसकी परेशानी पहचानी। वह शायद कुछ दूरी पर लगे आटो रिक्शाओं का एजेंट था। उसने अशोक के निकट आकर उससे पूछा—"आप कश्मीरी पंडित लगते हैं। आप के लिए आटो रिक्शा ही ठीक रहेगा। मेरे साथ चलिए। मैं आपको सही आटो में बैठाऊंगा। आप सिर्फ यह बताइए कि आपको किस कैम्प में जाना है।"

"कैम्प? मैं समझा नहीं।" अशोक सचमुच हैरान हुआ।

"मेरा मतलब है कश्मीर से निकले पंडितों के कैम्प जो जम्मू शहर में नहीं—नगरोटा, उधमपुरा, जड़ी अख्नूर, मुट्ठी और दूसरी जगह रहते हैं।"

एजेंट के इतने नाम? हैरान अशोक को धक्का लगा। वह सोच नहीं सका कि हालात ऐसा हो सकता है। उसने टीवी रेडियो पर ऐसा कुछ भी देखा सुना नहीं था। एजेंट अशोक को अपने साथ एक आटो रिक्शा के पास ले गया और गीत गाया 'दिल्ली से आया मेरा दोस्त—दोस्त को सलाम करो।' रिक्शा वाले ने अशोक से उसके गन्तव्य स्थान का पता पूछा। अशोक ने एक बार फिर तार जेब से निकाला। लेकिन उसमें घरवालों के जम्मू में रहने का कोई पता नहीं था। उसने क्षण भर के लिए सोचा और फिर रिक्शा वाले से जम्मू सिटी के सेंटर तक जाने का किराया पूछा।

"देखिये साहब, सिटी सेंटर जाने तक हम तीस-पैंतीस से कम नहीं लेते। लेकिन आप कश्मीरी पंडित हैं और वह भी आज के हालात में।"

"अच्छा यह बताइए कि अपना कश्मीर छोड़कर आए पंडितों के रहने के लिए कहीं कोई इंतजाम हुआ?"

"इंतजाम कौन करता है? हां, जम्मू में शिव मंदिर के आस-पास कुछ सज्जनों ने कश्मीरी पंडितों के रहने के लिए कुछ कमरों का इंतजाम किया है।"

रिक्शा मालिक के शब्दों ने अशोक को जैसे जीवित किया। वह आनन्द से जैसे गाड़ी में बैठा और ड्राइवर से बोला—"ठीक है। मुझे शिव मंदिर के पास ही छोड़ दो।"

रिक्शा के चलने पर अशोक ने तसल्ली से दायें बायें नज़र डाली। उसे जम्मू शहर वैसा ही लगा जैसा उसने पिछली बार आने के समय देखा था। लेकिन तवी पुल पार करने पर उसने जो दृश्य देखा उसकी उसने कल्पना ही नहीं की थी। वैसे सड़कें वही थीं। दुकान और मकान भी वैसे ही थे। लोग भी वही थे। लेकिन वैसे नहीं जैसे पहले नज़र आते थे। जम्मू वालों से कश्मीरियों की संख्या कुछ कम नज़र नहीं आती थी। कायदे के मुताबिक जाड़े में सरकारी दफ्तरों के श्रीनगर से जम्मू आने के कारण यहां कश्मीरी मुसलमानों का समूह अपेक्षित ही था। लेकिन पंडितों की भीड़-भाड़ भी कम नहीं थी—बूढ़े और बच्चे, मर्द और औरतें, शहरी और ग्रामीण। इनकी बातचीत से ही नहीं, उनके चेहरे से भी भय, आशंका और परदेशी होने का क्षोभ प्रकट होता था। कुछ दुकानों के सामने लाइन लगाकर वे शायद सस्ते में आटा, दाल, चावल पाने की आशा करते थे। सड़कों की साथ वाली गलियों में साग-सब्जी बेचने वालों के सामने गिड़गिड़ा कर कम कीमत पर सौदा पाना चाहते थे। अशोक को अजीब दृश्य नजर आए। जान पहचान के लोग आपस में एक दूसरे के गले लगते थे और फिर दोनों की आंखों से आंसू बहते थे।

रिक्शा वाले ने अशोक को जब शिव मन्दिर के निकट उतारा तो शिव के बदले शम्भूनाथ भट्ट ने उसे दर्शन दिया जो उसका हमवतन था। उसने अशोक को यह कहकर रिश्तेदारी दिखाई कि मोहनकृष्ण मन्दिर के साथ वाली पाठशाला की पहली मंजिल में नहीं, दूसरी मंजिल में रह रहा है। वह या उसका परिवार सही सलामत है या नहीं, इस बारे में कुछ न कहकर वह तुरन्त कहीं चला गया।

— 0 —

विस्थापितों की हमदर्दी के लिए काम में लाई गई पाठशाला के दूसरे तल्ले के तीसरे कमरे का नम्बर वहीं था जिसकी अशोक को तलाश थी। वह कमरे के ठीक सामने पहुंच कर दरवाज़ा खटखटाने की सोच रहा था कि उसकी नज़र कमरे के अधखुले दरवाज़े पर पड़ी। फिर भी वह खटखट और थोड़ी सी हिचकिचाहट के बाद ही कमरे में घुसा जहां सिर्फ एक खिड़की खुली थी और एक कोने में केवल एक औरत बैठी थी जो उसकी मां शांता थी। अशोक को देखने और एक आध

मिनट में पहचानने पर वह अपना माथा पीटकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी अशोक भी उसके गले से गले लगकर आंसू बहाने लगा।

"अशोक बेटे, दिल्ली से अपनी बहन पिंकी से मिलने आए हो ना? वह हमें छोड़कर चली गई।"

"क्या कहती हो मम्मी?" अशोक शांता की तरह ही ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। दोनों का रोना सुनकर साथ वाले कमरे से एक औरत भीतर आकर शांता के आंसू पोंछकर उसे तसल्ली देने लगी—"शांता बहन, जो होना था हो चुका! दिल्ली से शायद तुम्हारा बेटा आया होगा—तुम्हारे सामने अपनी छाती फाड़ने के लिए।"

अशोक को अपनी बुद्धि दिखाने वह उसके पास जाकर बैठी—"आप मोहनकृष्ण भान साहब के बेटे ही है ना?"

"जी हां। यह बताइए कि भान साहब कहां हैं?"

"मिटिंग में गए होंगे।। महीने में दो-तीन बार मयग्रेंट्स की मिटिंग लगती है। अब आते ही होंगे।" दूसरे लड़के ने आकर कहा।

अशोक लड़के के निकट गया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उस से पूछने लगा—"नीरजा यहां किस हॉस्पिटल में थी और उसकी डेथ कब हुई?"

लड़के ने अशोक और फिर अपनी साथी की ओर देखा। लेकिन अशोक को न उसने और न उसके साथी ने कोई जवाब दिया। उसने भी दूसरी बार किसी से कुछ नहीं पूछा और चुपचाप उठकर मां के पास जाकर रोने लगा। शांता ने उसे गले से लगाया और अपने हाथों से उसके बालों को सहलाते हुए उसे असलियत बताने लगी—"अशोक बेटे, पिंकी यहां किसी अस्पताल में नहीं मरी। वह श्रीनगर में व्यथ नदी के किनारे मारी गई।"

शांता की बात सुनकर चुप बैठे लड़कों ने एक दूसरे की ओर देखा और दोनों उठकर चले गए। उनके चले जाने के कुछ मिनट बाद ही मोहनकृष्ण दो साथी, एक कश्मीरी पंडित और दूसरा जम्मू का कोई डोगरा लेकर आ गया। अशोक पिता के गले लगकर बच्चे की तरह रोने लगा। मोहनकृष्ण बेटे के सिर और चेहरे पर हाथ फेरकर उसे तसल्ली देने लगा।

"यह सब कैसे हुआ?" अशोक ने मोहनकृष्ण की ओर दीनता से देखकर पूछा।

"दिल्ली से अभी-अभी आए हो। बेताब न बनो। सारी बातें अपने आप जान जाओगे। कल शाम से ही भूखे तो नहीं हो? नाश्ता किया है?"

"हां, पठानकोट पहुंचकर चाय और ब्रेड से पेट भरा था। अच्छा यह तो बताइए कि व्यथ का किनारा क्या होता है? मम्मी ने कुछ ऐसा ही कहा जो मैं समझ नहीं सका।"

मोहनकृष्ण ने समझ लिया कि शांता ने क्या कहा होगा। फिर भी उसने बात को मोड़ देना ही बेहतर समझा और अशोक के कंधे पर हाथ रखा—"व्यथ कश्मीर की सब से बड़ी नदी है जो वेरीनाग से निकलकर कश्मीर के गांव शहरों के बीच बहकर और वुल्लर झील से होकर पाकिस्तान के हवाले हो जाती है। इसे लेहलिम भी कहते हैं।"

"डैडी, मैं भी इतना जानता हैं लेकिन मम्मी ने जो व्यथ की बात की..."

मोहनकृष्ण डोगरा साहब के आगे असली बात को हड़पने के लिए भुलक्कड़पन का सहारा लेकर अपनी कहानी को और लम्बा करने लगा—"व्यथ की बात जानना चाहते हो? व्यथ का असली नाम वितस्ता है जो संस्कृत शब्द है। लेकिन हम कश्मीरियों के लिए अपनी लोक भाषा ही प्यारी है। जब अपना कश्मीर भी हमारे लिए (कश्मीर) हो सकता है तो वितस्ता के लिए 'व्यथ' नाम ही ठीक नहीं होगा? वितस्ता की भी अपनी कहानी है। नीलमत पुराण का नाम तुमने सुना होगा जिसमें कश्मीर की प्राचीन संस्कृति की पृष्ठभूमि और पौराणिक लोक कथाओं के साथ कल्हण की राजतरंगिणी में प्राचीन राजाओं के नाम और कार्य भी लिखे गये हैं। लेकिन मूलतः पुराण होने के कारण इस नीलमत पुराण में पौराणिकता ही अधिक है जिसके अनुसार जलोद्भव के नाश के लिए आए शिव ने नौबंध शिखर पर अपना डेरा डाला था। वहीं कश्यप ऋषि की प्रार्थना पर शिव ने सती से अनुरोध किया तो सती वितस्ता नदी का रूप धारण कर कश्मीर की जनता को पवित्र करने लगी। यह तो नीलमत है लेकिन जब पश्चिमोतर से हमलों और हुकमों का धावा बोला गया तो वितस्ता के किनारे देवी देवताओं के जितने स्थान और निशान थे उनका नाश हुआ। नीलमत विनाश मत हो गया और वितस्ता व्यथ नाम धारण कर कश्मीर की व्यथा का आईना हो गई।" इतना कहकर मोहनकृष्ण ने मुस्कुरा कर जम्मू के डौगरा मित्र की ओर देखा।

"और इसीलिए शायद आपने कश्मीर से जम्मू विस्थापन किया।" डौगरा साहब ने मोहनकृष्ण के मजाक का मजाक में ही जवाब दिया।

"डौगरा साहब, हम लोग अपने घरों को छोड़कर आप की शरण में आने को विस्थापन नहीं कह सकते। विस्थापन एक घर और स्थान को छोड़कर दूसरे घर और स्थान में स्थापित हो जाने को कहते हैं। सन् सैंतालिस में पाकिस्तान बनने पर जो सिंधी, पंजाबी अपनी मजबूरी से भारत आकर रहने लगे उन्हें ही विस्थापति कहा जा सकता है। उन्होंने जो कुछ किया हो उसे ही विस्थापन या डिस्पलेसमेंट कहेंगे। हम कश्मीरी पंडित सिर्फ अपनी जान और इज्ज़त बचाने के लिए अपने घर, अपने खेत, बाग और जमीन, अपनी बिजनेस या नौकरी छोड़कर कश्मीर से बाहर शहरों, गावों, रिश्तेदारों दोस्तों के घरों में या मन्दिरों धर्मशालाओं में घुसकर

या बेकार नाकारा सड़को और वीरान अहातों में टेंट लगाकर रहने लगे हैं। उनके दुख को डिस्पलेसमेंट या विस्थापना नहीं अगौनी अंगचुइ या व्यथा कहेंगे।

डोगरा साहब कश्मीरी माइगरन्ट्स की पीड़ा से अधिक मोहनकृष्ण की कुशाग्रबुद्धि से प्रभावित हुआ। उसने मुस्कुराकर कहा—"पंडित जी, सब कुछ छिन जाने के बाद भी आपके पास जो दौलत रहेगी वह आपकी बुद्धि होगी। हमारा यह जम्मू आपका भी है, क्योंकि भारत देश हम सब का है। आप बुरा न मानें, आपने घरबार ही नहीं छोड़ा अपना नगर भी छोड़ रहे हैं। लेकिन हम अपना कश्मीर छोड़ने वाले नहीं क्योंकि यह सारा देश हमारा है और हमारा ही रहेगा। पंडित जी, आप पंडित हैं। मैं ने जो कहा उस पर तथास्तु कहिए। अब मैं चलता हूं।"

मोहनकृष्ण ने मुस्कुराकर तथास्तु कहा और हाथ मिलाकर दरवाजे तक डोगरा साहब के साथ चला। उसके जाते ही शांता मोहनकृष्ण से बोली—"अब खाना खाएंगे। अशोक जी को भी बहुत भूख लगी होगी।"

"ठीक है। परोसूंगा मैं। तुम अपनी हथेली का खयाल रखना।"

"गम्भीर की हथेली को क्या हुआ है?" अशोक को धक्का सा लगा।

"नहीं, वैसी कोई बात नहीं है। मामूली फ्रैक्चर हुआ था। दो-तीन दिन में ठीक हो जायेगा।"

"उसने कहा था कि वह सिर्फ खाना ही नहीं बनाती, उसे परोसती भी है। मेरी बदकिस्मती से उसे कहीं कुछ तो नहीं हुआ?" शांता ने परेशानी से मोहनकृष्ण की ओर देखा।

"क्या कोई नौकरानी रखी थी?" अशोक हैरान होकर पूछने लगा कि मोहनकृष्ण ने उसके मुंह पर हाथ रखा और अपने मुंह पर उंगली रखकर उसे चुप रहने का इशारा किया।

"वह अपनी बेटी है।" मोहनकृष्ण ने गुस्से से अशोक की बात का जवाब देकर शांता से कहा कि यह श्रीनगर का फतेकदल मुहल्ला नहीं, जम्मू के शिव मन्दिर का मुहल्ला है। यहां आस-पास कई भोजनालय हैं। हम वहीं जाकर कुछ खाएंगे।"

"ठीक है वह अपनी बेटी है, मगर है कौन?" अशोक ने मोहनकृष्ण से फिर पूछा।

"तुम भी उसे जानते हो। मुझे वह पिंकी सी प्यारी लगती है। मेरे लिए पिंकी की खाली जगह वही पूरी करे यही मेरी इच्छा है।"

अशोक आश्चर्यचकित होकर पिता की ओर देखने लगा जो खुद व्यग्रता से खिड़की के बाहर देख रहा था।

"कौन है यह लड़की?" अशोक ने बेताबी से पूछा। लेकिन मोहनकृष्ण चुपचाप वैसे ही आंखे फैलाए आने वाले की प्रतीक्षा करता रहा।

यह लो, वह आ गई!" मोहनकृष्ण ने कमरे का दरवाज़ा खोला और मुस्कुराकर शांता के पास बैठ गया। शांता ने अशोक की और प्रेम दृष्टि डाली जो परेशान होकर दरवाज़े की ओर देख रहा था। एक दो मिनट के बाद जब उस लड़की ने कमरे में प्रवेश किया तो अशोक के पांव तले जैसे जमीन खिसक गई। वह लड़की कोई और नहीं, रैनावारी निवासी के एक परिचित पंडित की बेटी बसंती थी जो अपने साथ अच्छा सा खान-पान भी लाई थी। उसे देखकर अशोक को आश्चर्य हुआ। वह कुछ कहता लेकिन शांता ने ही सबसे पहले बात छेड़ी—"यह तुम अपने साथ क्या लाई हो? हम तुम्हारे न आने से ही परेशान हुए थे।"

बसंती ने शांता के पांव छूकर खान-पान का सामान अस्थाई बनाए काम चालू किचन में रखा और हाथ जोड़कर मोहनकृष्ण से बोली—"अंकल, कल शाम को मेरे मामा आये थे। रात भर यहीं रहे और सुबह मम्मी के साथ वापस चले गये।"

"तुम पंडित सालिग्राम भट्ट की बात तो नहीं कर रही हो? वह कश्मीर के कुलग्राम तहसील के हानंद चोवल गांव में रहते थे। तुम्हारी मां को लेकर वहीं वापस चले गए?"

"नहीं अंकल। वह भी अपना घर छोड़कर अधमपूर आ गये हैं, परिवार के साथ बुधवार को। पिछले सप्ताह उनके पड़ोस के एक गांव पर हमला कर तीन पंडित जवानों को मारा गया था।"

"सुना है वहां उनके पास काफी ज़मीन जायदाद हैं।"

"हां थी—खेत खलिहान, बाग बगीचे। सब कुछ वहीं रहेगा और वे खुद उधमपुर की किसी कुटियां में ईश्वर का नाम लेते रहेंगे। खैर जाने दीजिए, आप खाना खाइए।"

अशोक ने कुछ खाने से इनकार किया। बसंती ने विनती की कि वह जो थोड़ा बहुत लाई है उसे वह वापस कैसे ले जायेगी? मोहनकृष्ण ने सोचा कि बसंती की श्रद्धा का इनकार उसका अपमान होगा। शांता ने पति का समर्थन किया। बसंती ने खाना परोसा और जब मोहनकृष्ण ने जोर किया तो उसने भी अपने सामने प्लेट में एक चपाती और थोड़ी सब्जी रखी और धीरे-धीरे चपाती के छोटे-छोटे टुकड़े सब्जी के साथ अपने मुंह में डालने लगी। जब अंकल, आंटी और अशोक ने उसकी बांह पकड़ी—"बसंती जी, आप ने सेवा करके हमारी जो पदवी दिखाई उसके लिये हम आप के आभारी हैं। अब हमें और ज़लील मत कीजिए।"

शब्द बोलते अशोक की आंखे लाल हो गई। उसने बसंती के हाथों से थालियां छीन लीं और उन्हें धोने के लिए जैसे ही वह नीचे आंगन में उतरने लगा तो मोहनकृष्ण ने उसे रोका—"अशोक, यह बरतन वहां कोने में रखो। आश्रम में कमरों, बरतनों को साफ करने की व्यवस्था कमीटी का काम है।"

अशोक ने खामोशी से बरतन कोने में रखे। मोहनकृष्ण ने उसके कंधे पर हाथ रखकर उससे कहा—"मैं बसंती को थोड़े ही बरतन धोने देता? यह मेरी बेटी है। पहले भी बेटी थी। मगर पिंकी के जाने के बाद यह मेरी अकेली बेटी है। इसने अपने मां-बाप के साथ यहां आकर और हमारी तरह किसी कुटिया में रहकर भी हमें जीवित रखा। पिंकी चली गई। अब मैं इसे अपने से अलग नहीं करूंगा। मैं खुद जानकीनाथ जी के पास जाकर उनसे बात करूंगा। मैं उनके सामने हाथ जोड़कर उनसे उनकी बेटी मांगूगा। केवल हाथ ही नहीं जोडूंगा, उनके पांव पकडूंगा।"

अशोक को पिता की बातें अजीब सी लगी। उसने परेशान होकर बसन्ती की ओर देखा। बसंती शांता के पास जाकर उसे "अंकल" को शांत करने का अनुरोध करने लगी। वह कुछ और भी बोलती कि दरवाजे पर खट-खट हुई। दरवाजे में कोई चिटकनी नहीं लगी थी। एक ओर वह खुला नज़र आता था। अशोक ने उसे खोला। जानकीनाथ खामोशी से भीतर आया और मोहनकृष्ण को हाथ जोड़ा, शांता को नमस्कार कहा और अशोक के कंधे को थपथपाकर बहन की दयनीय मृत्यु पर उसे हमदर्दी दिखाई और तसल्ली दी। अशोक ने उसे हाथ जोड़ा। जानकीनाथ ने उसे गले लगाया और कहा—"बेटे, मैं तुम्हें आज पहली बार देख रहा हूं। आज से बहुत पहले भी एक बार देखा था जिसे देखना नहीं कह सकता।"

"आप खड़े क्यों हैं? तशरीफ रखिए।" मोहनकृष्ण ने खड़े होकर शिष्टाचार बरता।

"नहीं भान साहब, बैठने से पहले मैं आप से क्षमा मांगूगा। आते समय जब मैं दरवाज़े के पीछे खड़ा था मैंने आपकी एक दो बातें सुनी जो मुझे नहीं सुननी चाहिए थीं—और आप को कहनी भी नहीं। आपकी बेटी नहीं रही और उसके न रहने पर आपकी जो दशा हुई होगी उसे मैं समझ सकता हूं। मेरा भी कोई बेटा नहीं है। मैं आप से निवेदन करता हूं कि आप अपना बेटा मुझे भी दीजिए। वह आपके घर में ही रहेगा। आपका ही जो बेटा है। मगर वह मेरा बेटा भी होगा जिस तरह मेरी बेटी बसंती आप की भी बेटी होगी। मुझे पूरा विश्वास है कि आप मेरी बात मान लेगें। इसीलिए मैं इसी समय अशोक जी को गले से लगाऊंगा।"

जानकीनाथ ने अशोक का माथा चूमा और मोहनकृष्ण को गले से लगाया। मोहनकृष्ण ने मुस्कुराकर जानकीनाथ को हाथ जोड़े। बसंती की आंखों में पहले चमक दिखाई दी और फिर आंसू के कतरे गिरने लगे। वह शांता के पांव पकड़ कर रोने लगी।

□□□

Author Copy
लेखक की प्रति